हरियाणा

सांस्कृतिक दिग्दर्शन

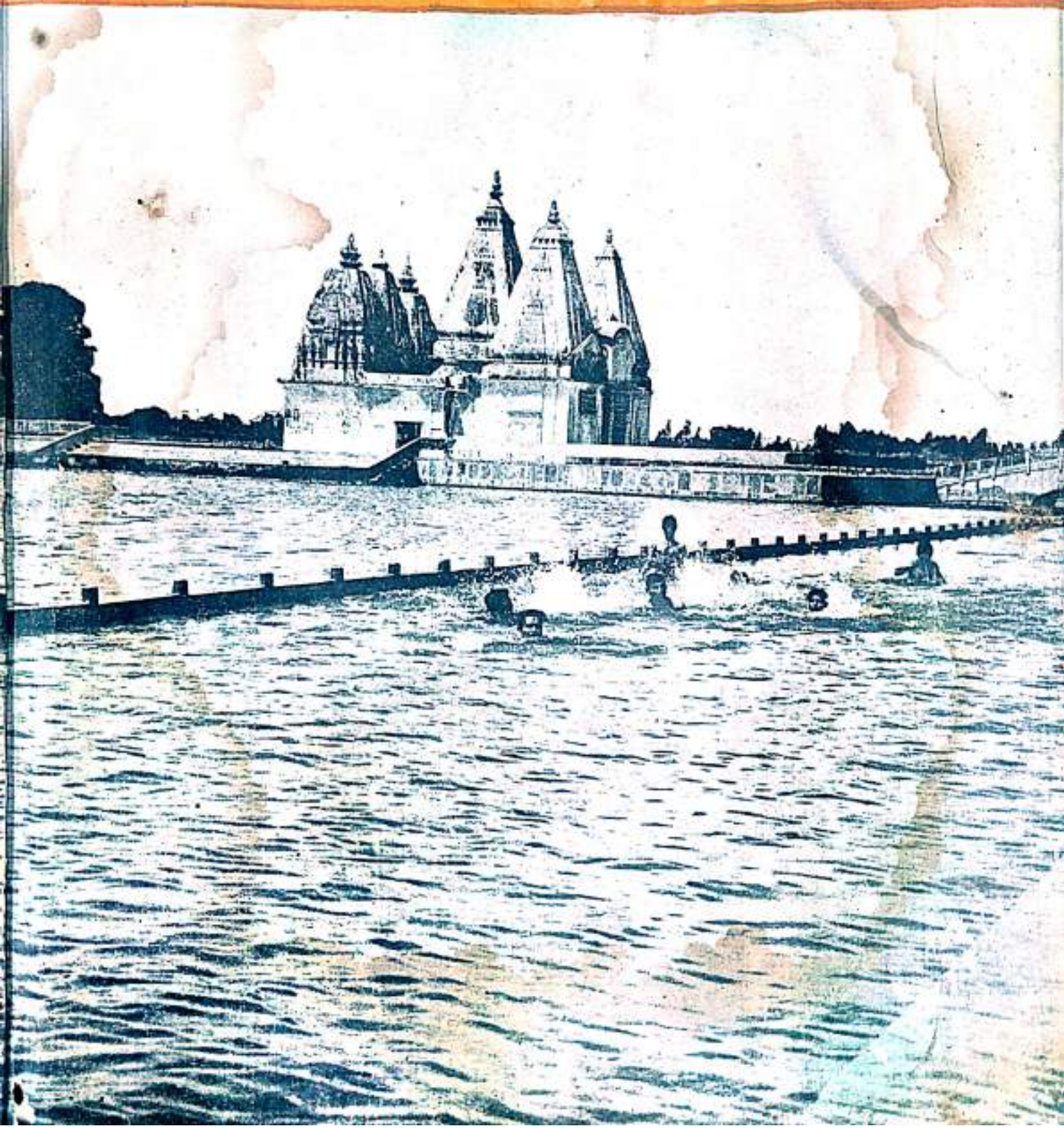

हरियाणा

[सांस्कृतिक दिग्दर्शन]

हरियाणा के इतिहास, संस्कृति, जन
जीवन, लोक धारा और साहित्य
का दिग्दर्शक एक संदर्भ ग्रंथ

हरियाणा लोक-सम्पर्क प्रकाशन

प्रकाशक :

एस० वाई० कुरेशी
निदेशक,
लोक सम्पर्क एवं सांस्कृतिक कार्य
हरियाणा, चण्डीगढ़

संकलन :

पुष्पा जैन एवं
सत्य पाल गुप्त

सहयोगी :

श्रुतिप्रकाश वाशिष्ठ एवं
तुलसी राम जरयाल

कला :

सोहन लाल दीवान

छाया चित्र :

विभागीय फोटो अनुभाग

मुद्रण :

राजकीय प्रेस
संघीय क्षेत्र
चण्डीगढ़

प्रथम आवृत्ति 1978 :

[2000 प्रतियां]

मूल्य :

निःशुल्क वितरणार्थ

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ
1. एक प्रयास एस० वाई० कुरैशी	..	7
अभिनन्दन गीत :		
2. देस्सां मां देस हरियाणा —डॉ० प्रभाकर माचवे	..	11
3. हरियाणे की लली —डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'	..	12
4. ज्योति सर —डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'	..	13
5. देव-भूमि —उदय भानु 'हंस'	..	14
6. ऋषि मुनियों की तपोभूमि —खुशी राम शर्मा वाशिष्ठ	..	15
7. हरे-भरे हरियाणा का.... —विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक'	..	16
8. तेरा वन्दन, तेरा पूजन —देवी शंकर प्रभाकर	..	17
इतिहास :		
9. हरियाणा : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण —डॉ० बुद्ध प्रकाश	..	37
10. जय हरियाणा —डॉ० वृन्दावन शर्मा	..	49
11. हरियाणा का पुरातत्व —जगन्नाथ अग्रवाल	..	55
12. हरियाणा का अतीत और भविष्य की सम्भावनाएं —मौलि चन्द्र शर्मा	..	69
13. भारत के स्वाधीनता संग्राम में हरियाणा का योगदान —डॉ० राम प्रकाश	..	71

	विषय		पृष्ठ
14.	वीर भूमि हरियाणा —डॉ० जय भगवान गोयल	..	79

संस्कृति :

15.	हरियाणा की संस्कृति —स्वामी ओउमानन्द सरस्वती	..	97
16.	हरियाणा का जन-जीवन : बेशुमार यादें —विष्णु प्रभाकर	..	112
17.	हरियाणा का सांस्कृतिक विरसा —सेठ गोबिन्द दास	..	115
18.	पं० लखमी चंद —कृष्ण चन्द्र शर्मा	..	119
19.	हरियाणा के तीज-त्यौहार —राजेन्द्र	..	133

साहित्य :

20.	संस्कृत साहित्य को हरियाणा का योगदान —डॉ० राम गोपाल	..	147
21.	हरियाणा का प्राचीन हिन्दी साहित्य —डॉ० देवेन्द्र सिंह 'विद्यार्थी'	..	151
22.	हिन्दी साहित्य को हरियाणा की देन —क्षेम चन्द्र 'सुमन'	..	182
23.	हरियाणा के पंथ-प्रवर्तक संत —डॉ० रणजीत सिंह	..	187
24.	हाली—एक अज़ीम शायर : अज़ीम इन्सान —एस० वाई० कुरैशी	..	190
25.	हरियाणा की नाट्य परम्परा —डॉ० शंकर लाल यादव	..	195
26.	हरियाणवी का संक्षिप्त विवरण —डॉ० जगदेव सिंह	..	206
27.	नाट्य-कला की जन्म-भूमि —चिरंजीत	..	232
28.	हरियाणा के लोक गीत : एक विशिष्ट अध्ययन —डॉ० भीम सिंह	..	235
29.	हरियाणा की साहित्यिक परम्परा —कश्मीरी लाल ज़ाकिर	..	263
30.	लेखक परिचय	..	289

ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसने वाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। जीवन के विकास की युक्ति ही संस्कृति के रूप में प्रकट होती है। ...जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। ..संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है।... यदि भूमि और जन अपनी संस्कृति से विरहित कर दिए जाएं तो राष्ट्र का लोप समझना चाहिए।

—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

हरियाणा की संस्कृति

—स्वामी ओउमानन्द सरस्वती—

हरियाणा प्रदेश भारत का एक अंग है। अतः भारत और हरियाणा की संस्कृति सर्वथा एक ही है, इस में कोई भिन्नता व पृथकता नहीं। मनु महाराज ने कहा है :—

तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते । (मनु० 21 : 7)

यह देवताओं का बसाया देश आर्य जनों के निवास से आर्यावर्त्त कहलाया। आर्यावर्त्त की संस्कृति ही हरियाणा की संस्कृति है। इस देश की संस्कृति आदि-सृष्टि से महाभारत पर्यन्त वैदिक संस्कृति ही रही है। कई सहस्र वर्ष तक अनेक प्रकार की उथल-पुथल और परिवर्तन होते रहे; इतने पर भी आज भी भारत में वैदिक संस्कृति का बोलबाला है। यह सत्य है कि लम्बी विदेशी दासता के कारण इसमें अनेक प्रकार के विकार आये और इसका विशुद्ध, अक्षुण्ण रूप नहीं रहा तथापि भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसमें सारे संसार से अधिक प्राचीन वैदिक संस्कृति के दर्शन होते हैं और भारत में हरियाणा प्रदेश सब प्रदेशों से अधिक वैदिक संस्कृति का केन्द्र है। हरियाणा का नाम ऋग्वेद **ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरियाणे। रथं युक्तमसनाम सुवामणि** (8:25:22) के अनुसार वैदिक नाम है। जो सब दुःखों के हरने वाला हरियाणा है। हरियाणा का यह वैदिक नाम यथा नाम तथा गुण है। जो संस्कृति भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में वेदज्ञान के द्वारा मानव के कल्याणार्थ ऋषियों के हृदय में प्रकाशित की, जिसका प्रचार-प्रसार ऋषि-महर्षि लोग, देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में सदैव से करते चले आये हैं। इसके प्रचारार्थ भारत के इस हरियाणा प्रदेश में जिसका एक प्राचीन नाम ब्रह्म देश भी है—ऋषि-महर्षियों के बहुत आश्रम और गुरुकुल थे, जहां पर धर्म चरित्र और संस्कृति की शिक्षा लेने के लिये सारे संसार के लोग सदैव आते रहे हैं। इसका प्रमाण मनुस्मृति में इस प्रकार मिलता है :—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनुः 2:20)

यह ब्रह्मर्षि देश (हरियाणा) सारे संसार को चरित्र और वैदिक संस्कृति की क्रियात्मक शिक्षा देने वाला प्रमुख केन्द्र था। इसी लिये इसे महर्षि व्यास ने धर्मक्षेत्र और पुण्यक्षेत्र लिख कर अपनी लेखनी को चार चांद लगाए। कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में ही योगिराज श्रीकृष्ण महाराज ने वीर अर्जन को गीता का उपदेश देकर वैदिक संस्कृति की एक झलक का दर्शन कराया। महर्षि व्यास ने महाभारत की रचना हरियाणा की पवित्र भूमि में की। महर्षि च्यवन, भृगु, भरद्वाज, पिप्पलाद, जैमिनि, सांख्यदर्शन के रचयिता कपिल मुनि और उद्दालक मुनि आदि ऋषियों के आश्रम इस ब्रह्मर्षि देश हरियाणा में ही थे। यह ब्रह्मज्ञान आदि का केन्द्र था इसी लिये संसार के सभी लोगों को आकर्षित करने वाला था। हरियाणा का एक वैदिकार्थ आकर्षणकर्त्ता, इस में पूर्णरूप से घटता था। अतः यह ब्रह्मर्षि देश विद्या के केन्द्र, धन-धान्य से परिपूर्ण होने से आकर्षण का कारण बनकर सबके मन का हरण करने वाला बना और इसका नाम हरियाणा रखना सार्थक होगा। उपरिलिखित सभी गुणों को देख कर पूर्वजों ने हरियाणा यह वैदिक नाम "यथागुण तथा नाम" इस प्रदेश को दे दिया।

ऐतिहासिक नाम :—शिवजी महाराज के महाभारत में एक सहस्र नाम आये हैं उनमें हर भी उनका एक नाम है :

गणकर्त्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम एव च ।
मन्यवित् परमो मन्त्र सर्वभाव करो हरः ॥
नन्दिविरश्च नन्दं च नन्दिनो नन्दिवर्धनः ।
भगहारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहः ॥

(महा० अनुशासन पर्व प० 16, श्लोक 42,46)

इस प्रकार शिवजी के हर, रुद्र, गणपति, गणकर्त्ता, मन्यवित्, नन्द, नन्दीश्वर, कुमार पितर, भीमस्थाणु, वृषभध्वज, भव और नन्दीध्वज आदि एक सहस्र नाम दिये हैं ।

जिस प्रकार सर्वहितकारी शिवजी महाराज सबके कष्टों को हरने वाले थे अतः हर नाम "यथा नाम तथा गुण" के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ और इसी कारण सारी आर्य जाति तथा सम्पूर्ण भारत देश के युद्ध का जय घोष "हर हर महादेव" बना जिससे कश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक, अटक से लेकर कटक तक, सारा आर्यावर्त्त ही इस जयघोष से लाखों वर्ष गूंजता रहा । 1965 ईसवी और 1971 ईसवी में भारत पाक युद्धों में भी "हर हर महादेव" का नारा प्रत्येक मोर्चे पर सुनाई देता था । फिर ऐसे प्रिय नाम 'हर' को हरियाणा वाले कैसे अपनाने से चूक सकते थे । क्योंकि 'हर' तो इनके पूर्वज थे, नेता थे, निर्माता थे, गणराज्य के आदि कर्त्ता थे, इस लिये सर्वस्व थे । अतः अपने इस वीर पुरुष के नाम को हरियाणा का पुट देकर सोने पर सुहागे के समान कार्य कर दिखाया । इसमें इतिहास साक्षी है । शिवजी के शिव नाम के कारण महाभारत में 'शिवे देशे' आया है ।

जिस प्रकार शिवजी महाराज के 'हर' नाम के कारण इस प्रदेश का हरियाणा नाम बहुत पुराना है, इसी प्रकार शिव नाम के कारण शिवदेश इस प्रदेश का नाम महाभारत युद्ध के समय था । इस प्रकार हरियाणा प्रदेश हर के पुत्रों गणेश तथा स्वामी कार्त्तिकेय और भगवती पार्वती के साथ सृष्टि के आदि से लेकर आज तक विशेष सम्बन्ध रखता है । इस लिये हरस्य स्थानम्-हरयाणम, मानस् स्थानम् । यह प्रदेश हर, शिव का, शिव के पुत्रादि परिवार का निवास स्थान भी रहा है । इस लिये इसको 'हरयाणा' कहते हैं । हरियाणा की अति प्राचीन राजधानी रोहतक में 'कार्त्तिकेयस्य दयित (भवनं) रोहितकम्' देवताओं के महासेनापति कार्त्तिकेय का भवन—रहने का स्थान था । रोहतक नगर स्वामी कार्त्तिकेय का अति प्रिय नगर था ।

हरस्य यानानि विमानानि गच्छन्ति यस्मिन प्रदेशे स हरयानः हरयाणाः, जिस प्रदेश में हर के यान, वाहन, विमान चलते हों वह प्रदेश 'हरयाणा' कहलाता है ।

त्रिविष्टप् से मिला हुआ स्थान ही कैलाश पर्वत है जो आज तक शिवजी महाराज का निवास स्थान माना जाता है । शिवजी को आज भी कैलाश-वासी कहते हैं । उनकी महारानी गौरी को पर्वत पर रहने के कारण पार्वती कहते हैं । यह यथार्थता है कि प्रारम्भ में कैलाश पर्वत पर ही शिवजी महाराज का राज्य था । शिव और पार्वती ने हिमालय की सबसे ऊंची चोटी पर अनेकों वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए घोर तपस्या की थी । अतः आज पर्यन्त उस चोटी का नाम गौरी शंकर है । हिमालय से निकलने वाली एक नदी का नाम आज तक गौरी है । उसी क्षेत्र में महर्षि कण्व का आश्रम था जहां पर भरत की माता शकुन्तला की शिक्षा-दीक्षा हुई थी । उसी आश्रम में भारत के प्रसिद्ध राजा हरियाणा के वीर सम्राट् भरत ने जन्म लिया जिस की राजधानी प्राचीन नगर हस्तिनापुर में थी ।

हरद्वार नाम इसका पुष्ट प्रमाण है कि हर शिवजी के राज्य का कभी यह द्वार रहा है । और इसके समीप जो हिमालय की पर्वतमाला है उसमें होती हुई गंगा समतल भूमि—मैदान—में उतरती है । वे शिवालक के नाम से प्रसिद्ध हैं । शिवालक का अर्थ शिवजी की जटाएं हैं । क्योंकि शिवजी के गणराज्य की जटाएं (गण प्रजा) गंगा द्वार तक फैल गईं । हरद्वार नाम भी इसी कारण पड़ा । शिव व हर की जटाओं से गंगा निकलने की कथा का यही ऐतिहासिक आशय व सारांश है । शिवजी के राज्य की सीमा प्रारम्भ में इसी पर्वत माला तक ही थी । यह शिवालक पठानकोट को पार कर जम्मू तक फैला हुआ है । आज भी इनका नाम शिवालक ही है । यही शिवजी की जटाओं से गंगा निकलने का सार है । आगे चलकर शिवजी का स्थापित किया हुआ यह गणराज्य उनके दोनों वीर पुत्रों स्वामी कार्त्तिकेय और गणेश के सतत प्रयत्नों से सारे उत्तर भारत में अर्थात् काशी तक फैल गया था । हरियाणा के प्रसिद्ध कवि दादा बस्तीराम जी ने लिखा था.....

काशी शिवजी को प्यारी थी ।
काशी तीन लोक से न्यारी थी ।।

इससे यही सिद्ध होता है कि काशी नगरी से शिवजी को जैसे विशेष प्रेम था वैसे ही कार्त्तिकेय का रोहतक प्रिय नगर था। वे वहीं पर निवास करते थे। स्कन्द स्वामी ने एक नगर अपने वाहन (ध्वज) मयूर के नाम से मयूरपुर बसाया था जहां आज कनखल बसता है। उसके खण्डहर आज भी पड़े हैं। वह न जाने कितनी बार उजड़ा और बसा होगा। इन खण्डहरों वाले स्थान को आज तक माया पुर कहते हैं। इसी प्रकार शिवजी महाराज तथा उन के पुत्रों ने बहुत से नगर बसाये। हरद्वार, मयूरपुर प्राचीन हरियाणा की सीमा के अन्तर्गत ही हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि हरियाणा का प्रारम्भ से अन्त तक विशेष सम्बन्ध चला आ रहा है। हरियाणा में पौराणिक गायक निम्न मंगलाचरण से अपना गाना आरम्भ करते हैं।

सदा भवानी दाहिने गौरी पुत्र गणेश।
पांच देव रक्षा करें ब्रह्मा, विष्णु महेश ॥

इसमें भवानी भव-शिव की रानी पार्वती गौरी पुत्र गणेश और स्वयं महेश शिव व हर का ही नाम है। सारे प्रान्त हरियाणा में शिव के शिवालय हैं। शिव तथा देवी के मेले भरते हैं। पौराणिक काल से विघ्न निवारक देवता गणेश को मानकर यहां के लोग प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में इसकी पूजा करते चले आ रहे हैं। कुरुक्षेत्र की खुदाई में 'स्थानेश्वरस्य' लेख वाली तीन मोहरें मिली हैं। सिंघोल का नाम 'नन्दिपुरस्य' नन्दिपुर था, इस लेख की मोहरें ने सिद्ध कर दिया। यह होना भी इसके लिये पुष्ट प्रमाण हैं। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि हर के नाम के कारण ही इस प्रदेश का हरियाणा नाम पड़ा जो इसका ऐतिहासिक नाम है।

जो नाम वेद के आधार पर रखा हो उस प्रान्त की संस्कृति वैदिक संस्कृति के अतिरिक्त क्या हो सकती है। और शिवजी महाराज का एक नाम मन्त्रवित है जिसने वेद ज्ञान के द्वारा अविद्या-अन्धकार को दूर भगाया हो। जिससे उसका नाम अन्धकार रिपु पड़ा। उस वेद के प्रकाण्ड पंडित महाविद्वान महादेव ने प्रजा के कष्टों का हरण किया। उसी वैदिक संस्कृति के उपासकों ने अपने पूर्वज हर के नाम पर अपने प्रान्त का नाम हरियाणा रख कर अपनी वैदिक संस्कृति के प्रति श्रद्धा को प्रत्यक्ष कर दिखाया और प्रमाणित कर दिया कि हरियाणा वैदिक संस्कृति का सदैव उपासक रहा है। वह संस्कृति क्या है उसका थोड़ा सा दिग्दर्शन निम्न पंक्तियों में कीजिये।

हरियाणा की संस्कृति :–संस्कृति शब्द का अर्थ शुद्ध आचरण, शुद्ध कार्य, शुद्ध नीति अथवा श्रेष्ठ कार्य ही है। सम का अर्थ शुद्ध-श्रेष्ठ ही है। कृति का अर्थ कार्य, कर्म वा आचरण ही है। श्रेष्ठ, शुद्ध आचरण का नाम संस्कृति है। श्रेष्ठ आचार की शिक्षा विद्वान्, धर्मात्मा, सदाचारी गुरु ही दे सकते हैं। वैदिक संस्कृति क्या है इसकी शिक्षा किस प्रकार की जाती है, इसका वेद भगवान् ने इस प्रकार वर्णन किया है।

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोग्निः ॥यजु॥ 7–14]

अर्थ–हे (देव) योग विद्या चाहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य। हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये (सुवीर्यस्य) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े, उसके समान (अच्छिन्नस्य) अखण्ड (रायः) योग विद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोषस्य) दृढ़ पुष्टि के (ददितारः) देने वाले (स्याम) हो जो यह प्रथमा (पहली) (विश्ववारा) सभी सुखों को स्वीकार कराने योग्य (संस्कृति) विद्या सुशिक्षा-जनित नीति है (स) वह तेरे लिये इस जगत में सुखदायक हों और हम लोगों में जो (वरुणः) श्रेष्ठ अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक हैं (स) वह (प्रथमः) सबसे प्रथम तेरा (मित्रः) मित्र हो इस वेदमन्त्र का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द जी महाराज ने संस्कृति का अर्थ 'विद्या सुशिक्षा जनित नीतिः' किया है। बड़े-बड़े विद्वान बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिख कर भी संस्कृति का अर्थ स्पष्ट नहीं कर पाते। यहां महर्षि जी ने गागर में सागर बन्द कर दिया। गुरुजन जिस नीति की व्यावहारिक व क्रियात्मक शिक्षा अपने शिष्यों को विद्या और सुशिक्षा द्वारा देते हैं वह संस्कृति कहलाती है। वही संस्कृति प्रथमा (प्रथम कोटि की) सर्वश्रेष्ठ है और वही विश्व का कल्याण करने वाली, विश्व को सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त कराने वाली होने से विश्ववारा कहलाती है। क्योंकि यह सारे विश्व के लिये सुखदायक होती है। अतः सभी विश्व के वासी इसका वरण करने के लिये यत्नशील होते हैं। यही संस्कृति 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषोवेद' माता, पिता

और आचार्य, इन तीन शिक्षकों द्वारा अपनी सन्तान व शिष्यों को विद्या सुशिक्षा द्वारा सिखाई वा पढ़ाई जाती है। 16 (सोलह) संस्कारों का आविष्कार इसी संस्कृति के प्रशिक्षणार्थ किया गया था। विद्या, सुशिक्षा अथवा, वैदिक संस्कारों द्वारा शिक्षित व्यक्ति ही संस्कृत वा श्रेष्ठ व्यक्ति कहलाता था, उसी को आर्य कहते थे। इस प्रकार श्रेष्ठ व्यक्तियों के आचार-व्यवहार को संस्कृति कहते थे व कहते हैं। इसी से सुशील ब्रह्मचारी देव (दिव्य गुणों को धारण करने वाला विद्वान) बनता था और वह अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ होकर बलवान्, महापराक्रमी, विद्या आदि अखण्ड, दृढ़, पुष्टि-कारक ऐश्वर्य को प्राप्त करता था। जिस से वह अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि करता था, उसके दोनों लोक बन जाते थे। इस संस्कृति की शिक्षा श्रेष्ठ, अग्नि के समान सब विद्याओं के प्रकाशक विद्वान देते थे जो अपने शिष्यों के मित्र के समान परमहितैषी होते थे।

इससे यही सिद्ध हुआ कि ब्रह्मचर्य आश्रम में माता-पिता और आचार्य तीनों शिक्षक वेद की पवित्र विद्या तथा सुशिक्षा द्वारा राष्ट्र के बालक-बालिकाओं को वेद की सर्वश्रेष्ठ (प्रथमा) और विश्वबारा सबको यथार्थ सुख प्राप्त कराने वाली लोक और परलोक दोनों को उन्नत करने वाली संस्कृति-सुनीति का क्रियात्मक पाठ पढ़ाते थे। इसी का नाम वैदिक संस्कृति था। इसी संस्कृति का प्रचार सारे संसार में आदि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त, ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक अट्ठासी सहस्र ऋषि, महर्षि करते रहे। यही सार्वभौमिक संस्कृति थी। यही आर्य संस्कृति और भारतीय संस्कृति आदि नामों से विख्यात हुई। इसी संस्कृति को हरियाणा के वीरों ने अपनाया, यही हरियाणा की संस्कृति थी। महाभारत से एक सहस्र वर्ष पूर्व इस वैदिक संस्कृति का प्रचारक भारत देश स्वयं पतनोन्मुख हो चला था। धन, ऐश्वर्य के अधिक बढ़ जाने से क्षत्रिय लोग अभिमानी हो चले थे। वैदिक संस्कृति की मर्यादा का उल्लंघन करने लगे थे। ऋषि, महर्षियों की आज्ञानुसार चलने में शिथिलता आ गई थी। परोपकार के स्थान पर स्वार्थ की मात्रा बढ़ने लग गई थी। उसी के परिणामस्वरूप महाभारत का विनाशकारी भयंकर विश्वयुद्ध इस हरियाणा की पवित्र भूमि कुरुक्षेत्र-धर्मक्षेत्र में हुआ, जिससे भारत का सर्वनाश हो गया। भारतीय संस्कृति की जड़ें हिल गईं। ऋषि, महर्षियों का युग समाप्त हो गया। जब वैदिक संस्कृति के प्रचारक ही नहीं रहे तो इसका प्रचार कौन करता। वेद की मर्यादायें ढीली हो गईं, अविद्या का अंधकार फैलने लगा, ब्राह्मण, क्षत्रिय स्वार्थ में अपने कर्त्तव्य को तिलांजलि दे बैठे। यह संस्कृति अनेक विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा अधिक विकृत की गई, बिगाड़ी गई। जिससे वैदिक वर्णाश्रम मर्यादा भंग हो गई और भारत देश आज की दुर्दशा को प्राप्त हो गया फिर हरियाणा प्रान्त भी भारत का एक भाग होने से इससे कैसे बच सकता था। हरियाणा में वैदिक काल में कैसी संस्कृति थी और वह आज तक किस विकृत रूप को धारण करती आई है, इसका ऐतिहासिक खोज के आधार पर थोड़ा सा दिग्दर्शन कराता हूं।

हरियाणा की वैदिक संस्कृति :—हरियाणा को प्राचीन काल में कुरु-जांगल कहते थे, उसी के कारण आज भी इसका नाम बांगरदेश है, इसकी भाषा को बांगर भाषा कहते हैं। इसके एक भाग का नाम आज भी उसी कारण कुरुक्षेत्र है जहां योगीराज कृष्ण ने अपनी पवित्र गीता का उपदेश वीर अर्जुन को दिया था। महाराज कुरु ने इस प्रदेश के बड़े-बड़े जंगलों को कटवाकर भूमि को कृषि योग्य बनाया था और बस्तियों को बसाया था। अतः इसका नाम कुरु-जांगल पड़ा। इसी प्रदेश को अथवा इसके कुछ भाग को ब्रह्मर्षि देश भी कहते हैं क्योंकि यहां ऋषि-महर्षियों के बहुत आश्रम थे। मनु जी ने लिखा है :—

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै आर्यावर्त्तादनन्तरः॥ [मनुः अध्याः श्लोक 19]

आधुनिक हरियाणा का कुछ भाग, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, अलवर और कुछ जयपुर का भाग, पांचाल (गंगापार बरेली के आस-पास का क्षेत्र जहां की अहिच्छत्र पांचालों की उजड़ी हुई राजधानी के खण्डहर पड़े हैं) शूर सैनिक (भरतपुर, धौलपुर के आसपास का क्षेत्र) ये चारों मिलकर ब्रह्मर्षि देश कहलाता था। ये सभी प्रदेश हरियाणा के अन्तर्गत ही थे। इनमें से बहुत सा भाग तो 1857 के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने हरियाणा के टुकड़े-टुकड़े कर के विलग कर डाला। हरियाणा तो बहुत विशाल प्रदेश था, इसके अन्तर्गत ही ब्रह्मर्षि देश आ जाता था। हरियाणा प्रान्त में आज भी सैकड़ों ऋषियों के उजड़े हुए आश्रमों के खण्डहर विद्यमान हैं, जिन की मैंने खोज की हैं। इन्हीं ऋषियों के आश्रमों में जो सरस्वती आदि नदियों के तट पर विद्यमान थे, किसानों के नेता हलधर बलराम अपने वीर भतीजे

प्रद्युम्न आदि के साथ महाभारत युद्ध के समय सत्संगार्थ चले गये थे। ये आश्रम सैंकड़ों की संख्या में हरियाणा में उस समय विद्यमान थे। इन्हीं आश्रमों को गुरुकुल भी कहते थे। इनमें सदैव वेदादि शास्त्रों का पठन-पाठन तथा धार्मिक सत्संग, कथा-वार्ता तथा यज्ञ के सत्र चलते रहते थे।

हरियाणा में ऋषि आश्रम ढौंसी:—जिला महेन्द्रगढ़ में नारनौल से तीन मील दूर ढौंसी नदी के तट पर ढौंसी पर्वत पर महर्षि भृगु के पुत्र महर्षि च्यवन का आश्रम था। इसी वंश में इतिहास प्रसिद्ध जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी हुए हैं। भृगु वंशी भार्गव, महर्षि च्यवन को ही अपना आदि पुरुष मानते हैं। हरियाणा में भार्गव को ढौसेर भी कहते हैं। जमदग्नि का आश्रम जिला हिसार में हांसी तहसील में राखीगढ़ी के आस-पास था। राखीगढ़ी का उजड़ा हुआ खेड़ा सहस्रबीर्य अर्जुन की राजधानी थी, आज तक ऐसी जन-श्रुति है। वहां पर आज भी बड़ा भारी थेह खण्डहरों के बीच विद्यमान है जिसमें सिन्धु सभ्यता के अवशेष भी मिलते हैं। यहीं परशुराम के पिता जमदग्नि का वध सहस्रबीर्य अर्जुन ने किया। इससे कुपित होकर परशुराम ने उसका और अन्य क्षत्रियों का विध्वंस करके बदला लिया। तत्पश्चात् अपना फरसा रामराय के तालाब में धोया जो आज भी रामह्रद कहलाता है। यह हरियाणा का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है जो कुरुक्षेत्र भूमि के अन्तर्गत है। यहां प्रतिवर्ष मेला भी लगता है।

इसी प्रकार महर्षि उद्दालक ऋषि के आश्रम, जो महेन्द्रगढ़ जिले के स्याना ग्राम के एक मील की दूरी पर था, के खण्डहर विद्यमान हैं, पुराने कुओं के अवशेष भी हैं व एक सुन्दर तालाब भी है। उसके तटों पर चारों ओर कदम्ब वृक्षों के बाहुल्य से आज भी ऋषियों का बहुत रमणीक आश्रम प्रतीत होता है। यहां यज्ञोपवीत (जनेऊ) बनाने के सुपारी के से मिट्टी के छिद्र वाले लट्टू मिलते हैं जो ईसा से पूर्व के हैं जो इस खण्डहर की प्राचीनता के साक्षी हैं। संभव है यही महर्षि उद्दालक थे जो केकय देश के राजा अश्वपति की परीक्षार्थ गये थे। उस राजा का भोजनादि (आतिथ्य) न स्वीकार करने पर राजा ने छाती तानकर ऋषियों को यह विश्वास दिलाया था, "मेरे राज्य में सब कर्म वैदिक धर्मानुसार होता है, फिर आप भोजन क्यों नहीं स्वीकार करते।" उसने अपने राज्य का इस प्रकार चित्रण किया—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

मेरे जनपद में चोर नहीं है और कोई कृपण (कंजूस मक्खीचूस) धनी नहीं है। कोई शराब आदि नशे वाले पदार्थों के सेवन करने वाला नहीं है। सुरापानादि मदकारी द्रव्यों का सेवन मेरे राज्य में नहीं होता। कोई ऐसा व्यक्ति भी नहीं है जो प्रतिदिन अग्निहोत्र (सन्ध्यादि) नित्य कर्म न करता हो। कोई अनपढ़, अशिक्षित व्यक्ति राज्य भर में नहीं है। सभी विद्या सुशिक्षा जनित वैदिक संस्कृति से सुशिक्षित आचारवान् हैं। कोई आचाराहीन पुरुष सारे जनपद में ढूंढने से नहीं मिल सकता फिर व्यभिचारिणी, चरित्रहीन स्त्री कैसे हो सकती है। श्रेष्ठों का यथायोग्य सत्कार और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड मिलने से अश्वपति का केकय जनपद स्वर्ग के सदृश था। उद्दालक मुनि का हरियाणा के साथ विशेष सम्बन्ध था। हरियाणा के गाने वाले सभी भजनोपदेशक उपर्युक्त गाथाओं को आज भी खूब झूम-झूम कर गाते हैं। हरदत्त कवि की यह कविता है :—

भजन उद्दालक मुनि का

एजी एजी यहां के कैसे थे महीपाल।

छान्दोग्य उपनिषद् में पढ़ लो अश्वपति का हाल॥
उद्दालक आदि ऋषि आये, राजा ने कर सत्कार टिकाये।
बिष्टर, पाद्य, अर्घ पहुंचाये, हाथ जोड़कर करी नमस्ते
भोजन का किया सवाल।1।

ब्रह्मर्षि ऐसे फरमाते, राजा का भोजन नहीं खाते।
भ्रष्ट अन्न से मन गिर जाते, इसलिये राजन् भोजन म्हारे का—
मत करो ख्याल।2।

राजा का उत्तर—मेरे राज्य में चोर नहीं हैं, दुराचार का जोर नहीं है।
कृपणधनी धनजोड़ नहीं हैं, शराब, सुल्फा, गांजा—
पीने वाला नहीं दयाल ।3।

सन्ध्या हवन जो नित्य नहीं करता, मेरे राज्य में पग नहीं धरता।
विद्याहीन दण्ड नित्यभरता, इल्म हुनर से राज मेरे का—
है बुलन्द इकबाल ।4।

मेरे राज्य में जार नहीं है, दुराचारिणी नार नहीं है ।
क्यों भोजन स्वीकार नहीं है, पापी राज का हरगिज नहीं—
खाना चाहिए माल ।5।

इस प्रकार था राष्ट्र हमारा, सब दुनिया की आंखों का तारा ।
आज धर्म से किया किनारा, कहे हरदत्त यह देश हमारा
फंसा भ्रम के जाल ।6। एजी एजी—

इस भजन को मैं अपने बाल्य-काल से सुनता आ रहा हूं। हरियाणा के प्रसिद्ध भजनी त्यागी-तपस्वी सन्यासी श्री स्वामी नित्यानन्द जी के सौजन्य से प्राप्त कर के यहां उद्धृत कर दिया।

महर्षि उद्दालक के आश्रम से 4-5 मील की दूरी पर एक शुद्ध जलाशय (तालाब) के तट पर बाघोत ग्राम में महर्षि पिप्पलाद का आश्रम था। यह ग्राम भी जिला महेन्द्रगढ़ में है। यहां पर प्रतिवर्ष शिवजी का मेला भरता है। श्रावण मास में शिवजी के हजारों भक्त हरद्वार से गंगाजल लेकर कांवर उठाकर पैदल यात्रा करते हैं और बाघोत शिवजी के मन्दिर में प्रतिवर्ष जल चढ़ाते हैं। ऋषि के आश्रम के स्थान पर शिवजी का मन्दिर बना है।

जिला रोहतक में बेरी से 5–6 मील की दूरी पर दूबलधन ग्राम में महर्षि दुर्वासा रहते थे जहां उन्होंने एक बृहद् यज्ञ अनेक वर्षों तक किया था इस स्थान पर उन्हीं के नाम पर लोगों ने दुर्वासाश्रम बना रखा है। यहां के ग्रामीण लोग जब आश्रम के लिये कुआं खोदने लगे तो 35 हाथ नीचे तक हवन की भस्म-राख निकलती चली गई ।

जिला जीन्द में किलायत नाम का स्थल, जो उजड़े हुए खेड़े पर बसा हुआ है, कपिल मुनि का आश्रम था जो सांख्य दर्शन के रचयिता थे। किलायत को कपिलायत का विकृतरूप मानते हैं। यह स्थान कपिलमुनि की जन्मभूमि व तपोभूमि थी।

इसी प्रकार महर्षि वेदव्यास का आश्रम भी हरियाणा में कुरुक्षेत्र में था जहां पर बैठकर उन्होंने महाभारत ग्रन्थ की रचना की थी। इसी प्रकार हरियाणा प्रान्त में सैंकड़ों ऋषियों के आश्रम व गुरुकुल थे जहां पर वैदिक संस्कृति का अध्ययन करने के लिये देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर से विद्यार्थी सदैव आया करते थे। इन्हीं आश्रमों में रह कर महर्षि वेदव्यास ने जैमिनि आदि शिष्यों को योग्य बनाया। इन्हीं आश्रमों में रह कर तपस्वी महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन की रचना की, महर्षि पतंजलि के योग दर्शन पर अपना व्यासभाष्य भी लिखा। इनके सुयोग्य शिष्य महर्षि जैमिनि ने मीमांसा दर्शन का निर्माण इन्हीं पवित्र आश्रमों में रह कर किया। सांख्य, वेदान्त और मीमांसा इन तीन दर्शनों की रचना इसी पवित्र देश में हुई। संभव है अन्य तीन दर्शनों की रचना भी इसी प्रदेश के किन्हीं आश्रमों में हुई हो, इसकी खोज की आवश्यकता है।

(एतद्देश प्रसूतस्य) मनु जी महाराज ने यह श्लोक इसी ब्रह्मर्षि देश अर्थात् हरियाणा के लिये लिखा है। इसी प्रदेश के ऋषि, महर्षि और ब्राह्मण विद्वान् भूगोल के सभी मनुष्यों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-दस्यु-म्लेच्छादि) को सभी विद्याओं और चरित्र की शिक्षा देते थे। हरियाणा में ही ये वैदिक संस्कृति के शिक्षा-केन्द्र ऋषियों के आश्रम बने

थे। इसी ब्रह्मर्षि देश का नाम यज्ञिय देश भी था। मनु जी महाराज ने लिखा है—**यज्ञिय प्रदेश हरियाणा।**

कृष्ण सारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
सज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छ देशस्त्वतः पर ॥

जिस देश में कृष्णमृग स्वभाव से ही निर्भय हो कर विचरण करता है, वह यज्ञिय, पवित्र देश है, ऐसा समझना चाहिये। जो देश इससे विपरीत है, वह म्लेच्छ देश है। आज से 30–35 वर्ष पूर्व हरियाणा में पर्याप्त हरे-भरे जंगल थे। मृगों की डार की डार सर्वत्र उडारी लगाती, उड़ानें लगाती थीं। उल्लिखित परिभाषा के अनुसार सारा हरियाणा ही यज्ञिय देश था। मैंने स्वयं मृगों के बड़े-बड़े समूह अपनी आंखों से देखे हैं। विदेशी प्रभाव के कारण व पाश्चात्य शिक्षा की कृपा से गोचर भूमि व जंगल आदि कटवा डाले। काले मृगों के निर्भयता से रहने और घूमने के स्थान नहीं रहे।

अब भी महेन्द्रगढ़ जिले में किसी ग्राम में मृगों की डार प्रतिदिन दृष्टिगोचर हो सकती है। जैसे सुरेहती ग्राम की सीमा में पर्याप्त मृग हैं। वहां के लोग जी जान से उनकी रक्षा करते हैं। पहले सारे हरियाणा में ही स्वभाव से निर्भयता से काले मृग छलांगें भरते दिखाई देते थे। कुछ अंग्रेज शिकारियों ने भी इनका विध्वंस किया था। कितनी बार तो हरियाणा के किसानों ने उन शिकारियों से लड़ाई-झगड़ा करके उनकी बन्दूकें तक छीन ली थीं। अब वह भावना न्यून हो गई है। निरामिषभोजी अथवा शाकाहारी जनता का बाहुल्य देश में कहीं है तो वह इसी ब्रह्मर्षि देश हरियाणा में ही है। आदि सृष्टि से आज तक वैदिक संस्कृति के कुछ दर्शन हो सकते हैं, तो वे हरियाणा प्रान्त में ही। क्योंकि इस प्रान्त में अब भी वैदिक धर्म का प्रचार सभी प्रान्तों अथवा सभी देशों की अपेक्षा अधिक है। आज भी वैदिक संस्कृति के प्रचार करने वाले एक दर्जन से भी अधिक गुरुकुल तथा इतनी ही संस्कृत पाठशालाएं इस छोटे से प्रान्त आधुनिक हरियाणा में हैं। इनमें प्राचीन वैदिक संस्कृति की क्रियात्मक शिक्षा दी जाती है। इस पतित युग में भी सच्चे ब्रह्मचारियों के दर्शन करके मानव सच्ची शान्ति को प्राप्त करता है। इन गुरुकुलों में जाकर प्राचीन वैदिक युग की याद आ जाती है। शिखा और मेखलाधारी ब्रह्मचारियों को तपस्या करते देख वैदिक संस्कृति का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। ऋषियों की जो परम्परा ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक चलकर टूट गई थी, उसे महर्षि दयानन्द ने आकर पुनः जोड़ दिया और इसके दर्शन हरियाणा के प्रान्त के इन गुरुकुलों में होते हैं। इन गुरुकुलों के कारण हरियाणा आज भी ब्रह्मर्षि देश ही आभासित होता है। हरियाणा प्रान्त में कुछ विशेषताएं हैं। यहां की जनता का हृदय साधु, ब्राह्मण, गुरु एवं पुरोहितों के प्रति श्रद्धा परिपूरित है। सदाचार यहां का सदैव ऊंचा रहा है। आचारहीन लोगों से यहां की जनता सदा घृणा करती रही है। यहां का आचार-व्यवहार सदैव सात्विक ही रहा। मांस, शराब आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कभी नहीं होता था। व्यायाम, मल्लविद्या, अखाड़े और विशेषकर क्षात्र-धर्म का प्रचार सदैव रहा है। यहां की जनता सदा से वीर, लड़ाकू, योद्धा, स्वतन्त्रता प्रिय और अन्याय का विरोध करने वाली रही है। पंचायती राज्य व गणराज्य प्रिय आदि सृष्टि से आज तक रही। हरियाणा का पंचायती संगठन खाप और गोत्रों के रूप में तथा प्रति ग्राम अब भी पूर्ववत् विद्यमान है। पंचायती निर्णय को यहां के व्यक्ति आज भी सिर झुकाकर स्वीकार करते हैं। वैदिक संस्कृति के ये सभी गुण हरियाणा में देखने में आते हैं। ये सभी गुण ऋषि-महर्षि एवं साधु-सन्तों की कृपा से परम्परागत चले आ रहे हैं। इनकी शिक्षा, माता, पिता, गुरु एवं पुरोहितों से आपत्तिकाल में भी मिलती रही है।

हरियाणा में क्षात्रधर्म :—हरियाणा की भूमि सदैव से वीरों की जननी रही है। यह क्षत्रिय-प्रधान प्रान्त है। यहां के लोग स्वभाव से वीर योद्धा होते हैं। अन्याय के विरुद्ध लड़ना ये अपना मुख्य धर्म समझते हैं। परम्परागत माता के स्तनपान व जन्मघूटी में इनको वीरता प्राप्त हुई है। यहां का जलवायु रजोगुणी है। हरियाणा जाति की गौमाता का दूध सात्विक होते हुए भी कुछ अंश रजोगुण के अपने भीतर छिपाये हैं। यहां की गोजाति घी, दूध तथा बछड़े आदि की दृष्टि से भारतवर्ष की सर्वोत्तम गोजाति (नस्ल) मानी जाती है। किन्तु उसकी फूं-फां थोड़ा बहुत सिर और पैर से मारना इसकी चंचलता वा रजोगुण के परिचायक हैं। यही स्वभाव हरियाणा वासियों का है। हरियाणा में दुकानदार-बणियां को निर्बल माना जाता है। किन्तु जब वह अपने हरियाणा के स्वभाव को प्रकट करता है तो उसमें भी क्षात्रधर्म झलकने लगता है। भंगी से लेकर ब्राह्मण तक थोड़े बहुत क्षात्र तेज को सभी हरियाणा वासी धारण किये रहते हैं। इसका कारण मुख्यतया इनकी सदा से चली आई क्षात्रधर्म की परम्परा है। ये सब योधेयों की सन्तान हैं। जो भारत के गिने-माने हुए वीर योद्धा थे।

यौधेय गण :—हरियाणा की वीर भूमि में यौधेयों का राज्य सहस्रों वर्षों तक रहा है। इसी कारण हरियाणा यौधेय भूमि भी कहलाती है। क्षत्रियों के दो वंश, सूर्यवंश और चन्द्रवंश प्रसिद्ध हुए हैं। ये दोनों वंश वैवस्त मनु से सम्बन्ध रखते हैं। सूर्यवंश मनु के पुत्र से और चन्द्रवंश उसकी कन्या इला से चालू हुआ। यौधेय वंश मनु की कन्या इला (पति बुध) की सोलहवीं पीढ़ी एवं मनु की सत्रहवीं पीढ़ी से आरम्भ होता है।

वंशावली निम्न प्रकार से है :—

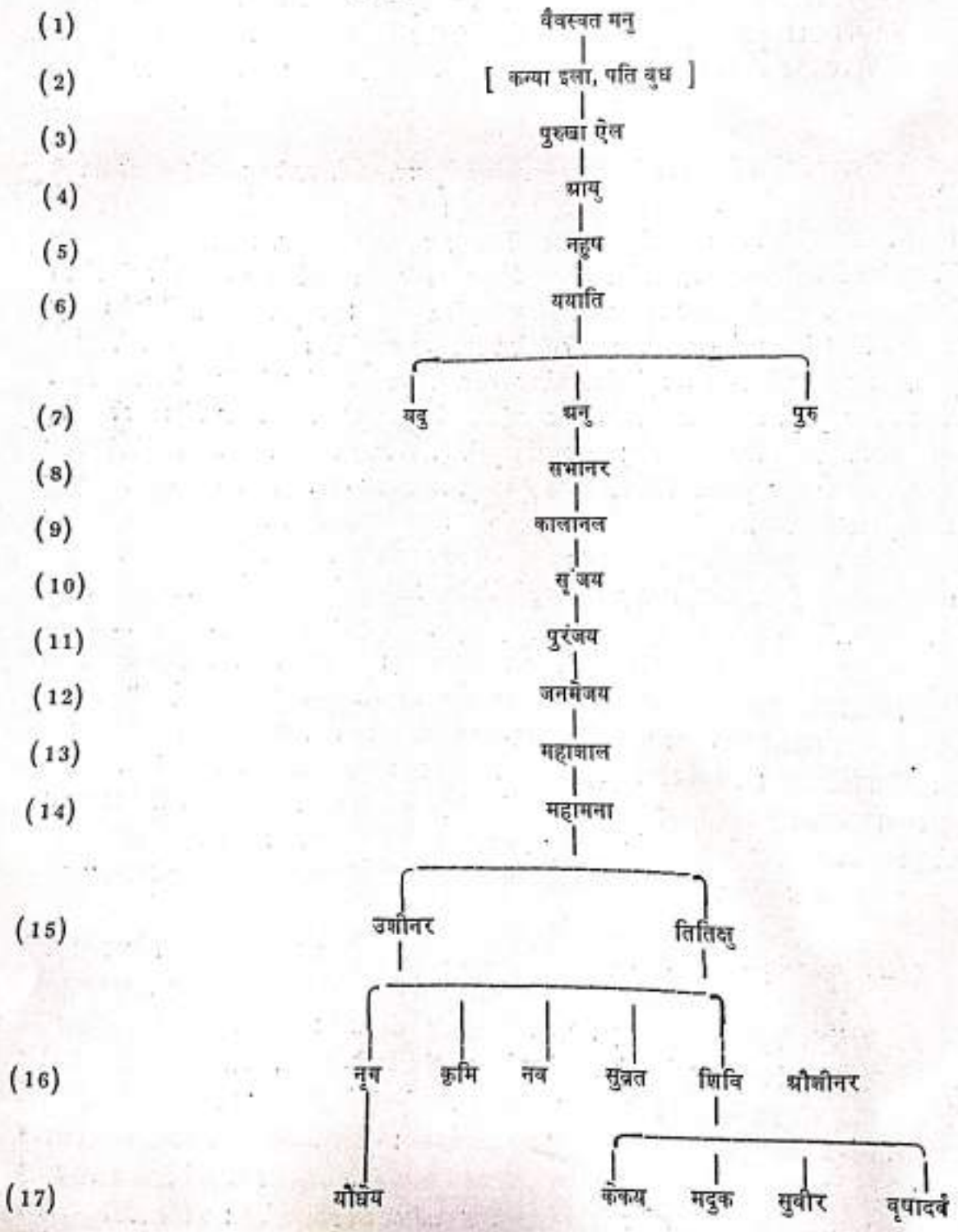

जिस महाराज बुध का विवाह मनु की पुत्री इला से हुआ, उसके पिता की वंशावली इस प्रकार है :—

दक्ष के दौहित्र विवस्वान के समय ही अत्रि नामक ऋषि हुए। उन्हीं से यौधेयों का चन्द्रवंश चला।

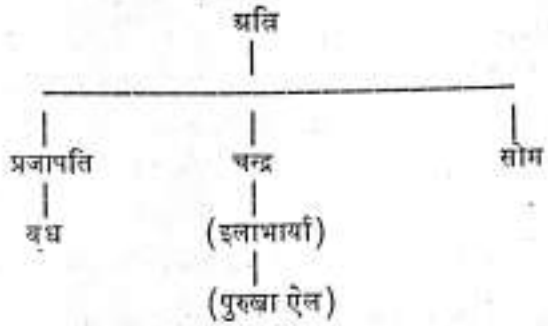

इस प्रकार मनु की कन्या इला, जिसका विवाह प्रजापति सोम के साथ हुआ था, उससे सोलहवीं पीढ़ी में राजा नृग का पुत्र और उशीनर का पौत्र यौधेय गणराज्य का संस्थापक यौधेय नाम का राजा हुआ। यह वंश प्रजापति सोम चन्द्र के कारण चन्द्रवंश कहलाया। सूर्यवंश मनु के पुत्रों से चला और चन्द्रवंश उसकी कन्या इला से चालू हुआ। इस प्रकार क्षत्रियों के दोनों प्रसिद्ध सूर्य और चन्द्रवंश मनु से ही सम्बन्ध रखते हैं। इस भांति यौधेयों के पूर्वजों में मनु पुरुखा, ययाति, उशीनर और नृगादि बड़े-बड़े राजा हुए हैं। इसी वंश में यौधेयों के चचा शिवि औशीनर के सुवीर केकय और मद्रक इन तीन पुत्रों से तीन गणराज्यों की स्थापना हुई। इसी प्रकार इनके चचेरे भाई सुव्रत के पुत्र अम्बष्ठ ने एक गणराज्य की स्थापना की। यदुवंश भी यौधेयों के वंश की एक शाखा है। इस प्रकार पुरुषोत्तम राम, योगीराज श्रीकृष्ण और कौरव तथा पाण्डव भी यौधेयों की शाखा-प्रशाखाओं में आये हुए हैं।

इन्हीं विशिष्टताओं के कारण यौधेय वंश सहस्रों वर्षों तक भारतीय इतिहास में प्रकाशमान रहा। इनमें वीरता का गुण विशेष होने के कारण आगे चलकर वीर शब्द यौधेयों का पर्यायवाची हो गया। इनके शत्रुओं को भी विवश होकर इनकी वीरता की प्रशंसा करनी पड़ी थी। यौधेयों का दादा उशीनर सारे पंचनद प्रदेश (पंजाब) का एकमात्र राजा था। उसने पांच विवाह किये। पांच रानियों से पांच पुत्र उत्पन्न हुये, जो पृथक्-पृथक् पांच राज्यों के स्वामी बने। उशीनर के अधिकार में शतद्रु (सतलुज) नदी के दोनों तटों पर विद्यमान प्रदेश था। वर्तमान बहावलपुर की सीमा के साथ इनका राज्य था। वही प्रदेश उनके पौत्र यौधेय के भाग में आया। नृग की रानी का नाम युधा था। उसके अपत्य (सन्तान) अपनी माता के नाम के कारण यौधेय कहलाये। माता में वीरता तथा युद्ध पराक्रम इन दोनों गुणों के होने से माता के नाम से ही यौधेय वंश प्रचलित हो गया।

महर्षि पाणिनि ने भी यौधेय गण को आयुधजीवी गण में पढ़ा है। क्योंकि ये सच्चे शूरवीर क्षत्रिय थे। जिनकी माता भी योद्धा हो और पिता भी वीर क्षत्रिय हो, फिर उनकी सन्तान आयुधजीवी सच्चे क्षत्रिय क्यों न बनें। इसी कारण यौधेय का पैतृक गुण वीरता था। इस कारण अन्य सभी क्षत्रियों ने भी यह स्वीकार कर लिया कि वे सदैव युद्धों में जयमाल को धारण कर सुशोभित होते हैं, अतः इन्हें 'जयमन्त्र धर' की उपाधि सभी क्षत्रियों ने एकत्रित होकर दी होगी। इस कारण उन्होंने अपनी गणमुद्रा (मोहर) पर सब की अनुमति से 'यौधेया नां-जयमन्त्रधराणाम्' यह लेख अंकित किया होगा। यह मुद्रा (मोहर) गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में है।

यह मुद्रा जिला हिसार के यौधेय दुर्ग के खण्डहर नौरंगाबाद वाले से प्राप्त हुई। ऐसी ही एक मुद्रा सुनेत के ध्वंसित यौधेय दुर्ग से अंग्रेजों को मिली थी जो ब्रिटिश म्यूजियम इंग्लैंड में चली गई। ऐसी मुद्रा भारत के किसी भी संग्रहालय में नहीं है। इस मुद्रा पर हरियाणा जाति का ककुद्मान बहुत सुन्दर सांड का चित्र दिया है। सांड के ऊपर ब्राह्मी लिपि में दो पंक्तियों में संस्कृत भाषा में (यौधेयानां जयमन्त्रधराणाम्) यह लेख अंकित किया है। सांड का चित्र दो भावनाओं को प्रकट करता है। एक तो यह कि यौधेय गौ माता के अनन्य भक्त थे। दूसरे गणराज्य प्रिय होने से गणराज्य के आदि संस्थापक महादेव जी के प्रति उनके वाहन ध्वज चिह्न वृषभ (सांड) का चित्र देकर अपनी कृतज्ञता व श्रद्धा प्रकट करते हैं क्योंकि गौ-जाति की उन्नति अच्छे सांड बिना नहीं हो सकती और गौ जाति की उन्नति के बिना मनुष्य जाति पुष्ट, स्वस्थ, सुदृढ़, दीर्घजीवी नहीं हो सकती। 'पुष्ट्यै गोपालम्' वेद की इस आज्ञा को क्रियान्वित् करने के लिये गोजाति के

निर्माता सांड का चित्र अपनी मुद्राओं पर अंकित किया। इस गोपालन के कारण ही यौधेयगण सारे भारत में बलिष्ठतम और वीरता के लिये प्रसिद्ध हुआ। 'त्वं घृतेन तन्वं वर्धयस्व' इस वेद वचनानुसार गोमाता का खूब घी, दूध खा पीकर व्यायाम द्वारा उसे पचाकर शरीर को बलिष्ठ बनाकर युद्ध विद्या में निष्णात बन यौधेय सारे संसार के उत्कृष्ट योधाओं में अग्रगण्य बने। जो इनसे टकराया, चकनाचूर हो गया। यूनानी, कुषाण, हूण, मंगोल, तुर्क, पठान, मुगल आदि जितनी विदेशी जातियां भारत में आक्रमणकारी आयीं प्रायः सभी को यौधेयों से टक्कर लेनी पड़ी। इन सबके समूल नाश में मुख्य भाग यौधेयों का ही रहा है। इसी कारण यौधेयों को, प्राचीन राजधानी कार्तिकेय की प्रिय नगरी रोहतक का नाम 'महासेना पतस्य वीर द्वारे' महासेनापति का वीरद्वार था, यह रोहतक से प्राप्त यौधेयों की मोहर ने सिद्ध कर दिया। शूर तथा वीर शब्द यौधेयों की वीरता के कारण इन्हीं का वाचक व पर्यायवाची बन गया था।

यौधेयगण की वीरता की धाक इनके शत्रुओं को भी विवश करती थी। महाभारत युद्ध में आदि से अन्त तक यौधेयादि संसप्तक गण राज्यों की संघ ने महारथी वीर अर्जुन को घेरे रखा। कर्ण और जयद्रथ के वध को छोड़कर अर्जुन की कोई विशेष वीरता और पराक्रम नहीं दिखाई दिया। क्योंकि यौधेय आदि गणों ने इस महारथी को आदि से अन्त तक इस प्रकार युद्ध में फंसाये रखा कि इनके अतिरिक्त और किसी से वह युद्ध ही न कर सके। महाराज युधिष्ठिर के साथ भी यौधेयों ने युद्ध में डटकर टक्कर ली थी और नकुल के साथ तो उसकी पश्चिम दिशा की दिग्विजय में सबसे भयंकर युद्ध करने वाले यौधेय ही थे। महाभारत सभापर्व में उनकी जीत का निम्नलिखित प्रमाण हैः—

नकुलस्य तु वक्ष्यामि कर्माणि विजयं तथा।
वासुदेव-जितामाशां यथासवजयत प्रभुः॥ (महा० सभापर्व 32 अध्याय)

मैं नकुल के पराक्रम और विजय का वर्णन करूंगा। शक्तिशाली नकुल जिस प्रकार भगवान वसुदेव के पुत्र श्री कृष्ण ने इस पश्चिम दिशा को जीता था, उसी प्रकार इस पश्चिम दिशा पर नकुल ने विजय पाई।

महर्षि व्यास ने पश्चिम दिशा का जो उल्लेख किया है, उसमें सर्वप्रथम हरयाणा का भाग रोहतक आदि आता है। (नियर्यौ खांडव प्रस्थात्) वह नकुल खाण्डव प्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ) दिल्ली से पश्चिम की ओर चलता है और जहां-जहां पहुंचता है उसके विषय में लिखा है :—

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्य वत्।
कार्त्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत्॥ 4॥ (महा० सभापर्व, अ० 32)

वहां इन्द्रप्रस्थ से चलकर मार्ग में बहुत धनी, गोबहुल धन ही नहीं धान्य (अनेक प्रकार के अन्नों) से परिपूरित सुन्दर रमणीय कार्त्तिकेय के प्रिय नगर रोहितक (रोहतक) में जा पहुंचा।

तत्र युद्धं महच्चासीत् शूरैर्मत्तमयूरकैः।
मरुभूमिं स कार्त्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम्॥ 5॥ (महा० सभापर्व, अ० 32)

वहां उनका मत्तमयूरक (मयूरध्वज धारी) शूर वीर यौधेयों के साथ घोर संग्राम हुआ। नकुल ने सारी मरुभूमि (मयूरभूमि) और सारे बहुधान्यक (हरयाणा) प्रदेश को जीत लिया।

शैरीषकं महेत्थं च वशे चक्रे महाद्युति।
आक्रोशं चैव राजर्षि तेन युद्धमभवन्महत्॥
तान् दशार्णान् जित्वा स प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः।

इस प्रदेश के मध्य स्थान शैरीषक (सिरसा) और महेत्थं (महम) आदि को उस तेजस्वी नकुल ने जीता। इस प्रकार यौधेयों के दशार्ण-दश दुर्गों—को जीतकर वह आगे बढ़ा। यहां आक्रोश के साथ घोर युद्ध हुआ, किन्तु नकुल ने उसे जीत लिया। नकुल ने बिना युद्ध के ही बहुत से प्रदेश जीत लिये थे किन्तु यौधेयों के साथ तो उसे पग-पग पर घोर युद्ध का सामना करना पड़ा। रोहतक, महेन और शैरीषक (सिरसा) आदि सभी दस दुर्गों पर भीषण संग्राम हुआ। मयूर ध्वज धारी यौधेयगण के उस समय महासेना पति राज-ऋषि आक्रोश थे।

महाभारत युद्ध के पश्चात् कुरुवंश और यदुवंश दोनों ही नष्ट प्रायः हो गये। कुछ काल पीछे यौधेयों को फलने-फूलने का सुअवसर मिल गया। उनका राज्य उत्तर भारत में मुलतान के पास क्रोड़ पक्का नाम के स्थान तक था। कुषाणों के राज्य के निर्माता विम्बकड फिस जो भारत में राजा रिसालू के नाम से प्रसिद्ध हैं, पंजाब और हरियाणा में जिनकी अनेक प्रकार की कथाएं सुनने को मिलती हैं। उसके साथ यौधेय गण का एक निर्णायक युद्ध उपरोक्त क्रोड़ पक्का नाम के दुर्ग पर जिला मुलतान में हुआ। कुषाण राजा विम्बकडफिस अर्थात् राजा ऋसालु हार गये और यौधेयों ने उसका सर काटकर अपने क्रोड़ पक्का द्वार पर लटका दिया। ये यौधेय कुषाण युद्ध चार पीढ़ी तक चलता रहा। कनिष्क और हुविष्क दोनों ही कुषाण राजाओं को यौधेय गण के साथ सारी आयु युद्ध करना पड़ा। कभी कुषाण राजा जीत जाते थे, कभी यौधेय गण जीत जाते थे। अन्ततोगत्वा चौथी पीढ़ी में कुषाण राजा वासुदेव को हराकर कुषाणों के राज्य की अन्त्येष्टि कर डाली और अपनी विजय के उपलक्ष्य में जहां वासुदेव की टकसाल थी वहीं शतद्रु के तट पर सुनेत्र (सुनेत) नाम के दुर्ग में अपनी टकसाल बनाई और 'यौधेयगणस्य जय' यह लेख अपनी मुद्राओं पर अंकित किया। इस युद्ध में इनके पुराने मित्र मालवगण, आर्जुनायणगण, कुनिन्दगण और उदम्बरादि गणों ने पूरा भाग लिया था। इसलिये इन्होंने अपनी जय की मुद्राएं बनवाईं। जिस प्रकार यौधेयगणों ने कुषाणों को समाप्त किया उसी प्रकार शकों, यूनानियों और हूणों का समूल नाश करने वाले यौधेय ही थे। जब सिकन्दर महान् की सेना व्यास के तट पर आई तो उसने आगे बढ़ने से निषेध कर दिया। यौधेयों की शूरवीरता से वे इतने भयभीत हुये। सिकन्दर के बार-बार उत्साहित करने पर भी उन्होंने एक पग भी आगे नहीं रखा। सिकन्दर ने तीन दिन का अनशन (उपवास) किया और व्यास नदी में डूबकर मरने की धमकी भी दी किन्तु सारी सेना ने आज्ञा को अस्वीकार कर दिया और उसे विवश होकर अपने देश को लौटना पड़ा। भारत विजय की इच्छा उसके मन ही में रह गई। लौटते समय भारत में मालव और क्षुद्र जो उनके परम मित्र थे, उनके साथ सिकन्दर की टक्कर हुई। उसने रही-सही सारी शेखी झाड़ दी। इस युद्ध में सिकन्दर की पराजय हुई। मालवों के तीर से सिकन्दर बुरी तरह घायल हुआ। उनसे सन्धि कर लौटता हुआ सिकन्दर मार्ग में ही अकाल काल के गाल में समा गया। अपने देश के दर्शन भी उस के भाग्य में नहीं थे।

हूणों की एक महान् अत्याचारी जाति थी जिस ने उत्तर भारत के बहुत से भाग को खूब लूटा और तहस-नहस कर डाला था। तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय को भस्मसात् करके भूमिसात् करने वाले हूण ही थे। किन्तु यौधेयों के लोक नेता महासेनापति यशोधर्म्मा ने अपने सहस्रों पहलवान यौधेय वीर सैनिकों से हूणों की तत्कालीन राजधानी सांकल नगरी (स्यालकोट) पर आक्रमण किया और उनके नेता मेहरगोल को बन्दी बना लिया, जिसका साक्षी मंदसौर में पड़ा हुआ यशोधर्म्मा का शिलालेख है। यौधेयों ने भारत से हूण जाति का नामोनिशान ही मिटा दिया। इसी वीरता के कारण 'यौधेयानां जयमन्त्रधराणाम्' यह यौधेयों की मोहरें मुद्राङ्क सर्वथा सत्य सिद्ध हुईं। यौधेयों का इतिहास विजय का इतिहास है। उस समय अपनी वीरता बाहुबल के आधार पर इन्होंने अपने राज्य का बड़ा विस्तार किया। उसकी सीमाएं बड़ी दूर-दूर तक फैल गई थीं। कहां सुल्तान के निकट क्रोड़ का दुर्ग और कहां बरेली के निकट पांचालों की राजधानी अहिच्छत्र। ये दोनों दुर्ग यौधेयों के अधिकार में आ गये थे। गंगानगर से देहरादून तक ये छा गये थे। जयपुर में वैराटनगर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, ग्वालियर को पार कर गये और तभी तो इनके महासेनापति यशोधर्म्मा का अधिकार मन्दसौर तक हो गया था। इन सीमाओं का विस्तार इनकी मुद्रायें सिद्ध करती हैं, जो उपर्युक्त स्थानों पर खुदाई आदि में प्राप्त हुई हैं। इनकी वीरता उपमा 'सिहवत्पराक्रमेत्' सिंह के साथ दी जा सकती है अर्थात् यौधेय वीर सिंह के समान पराक्रमी थे। यह इनकी मृण्मूर्ति, प्रस्तरमूर्ति तथा मुद्रांकों, मोहरों से सिद्ध होता है। यौधेयों के एक दुर्ग से एक सुन्दर मृण्मूर्ति (हैराकोटा) मिली है जो बालकों के खेलने का शिञ्जना (खिलौना) है। जिस पर यौधेय जाति का एक योद्धा व सेनापति सिंह के ऊपर आरूढ़ (सवार) है। इसके हाथ में वज्र है। इस मूर्ति के दूसरी ओर शांति के द्योतक कमल पुष्प का सुन्दर चित्र है। इसी प्रकार सिंहों की अनेक प्रस्तर-मूर्तियां इनके अन्य दुर्गों मोहनबाड़ी, अगरोहा आदि से प्राप्त हुई हैं। इसी भांति कितनी ही मोहरें भी मिली हैं जिन पर सिंह का चित्र है। जिससे यह सिद्ध होता है कि वे सिंह के समान वीर थे और

अपने शत्रु का विनाश किये बिना सिंह के समान शांत नहीं बैठते थे। इसी कारण इनका गणराज्य बहुत विस्तृत हुआ और सहस्रों वर्षों तक सुख-शांति से चलता रहा। रोहतक भी इनकी राजधानी बनी। महम, हांसी, अगरोहा, सिरसा, मेरठ, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, शतकुम्भा, स्थाण्वीश्वर, मोहनबाड़ी, प्रकुतानाग नगर, पटन नगर, हवन नगर और मालवादि सैकड़ों विशाल दुर्ग थे। हरियाणा में इनके छोटे-छोटे नगर तो हजारों थे। स्कन्दपुराण में लिखा है :—

हरयाणे च ग्रामाणां लक्ष पंचक सम्मितम्।

हरियाणा में पांच लाख ग्राम बसते थे। क्योंकि गंगा, यमुना, सरस्वती आदि अनेक नदियां हरियाणा प्रदेश में से बहकर समुद्र में गिरती थीं। अतः इनका यह प्रान्त धनधान्य से भरपूर था। जैसाकि महाभारत में लिखा है ! यौधेयों की राजधानी रोहतक की बहुत संपन्न अवस्था थी बहुत ही रमणीय सुन्दर धनधान्य से भरपूर और गौओं का खजाना थी। इसमें घी, दूध की नदियां बहती थीं। यह सारा हरियाणा प्रदेश ही धनी और सम्पन्न था। सदैव अन्न और धन से इसके भण्डार भरपूर रहते थे। इसीलिये इस प्रदेश का नाम बहुधान्यक था। इनकी मुद्राओं पर अंकित 'बहुधन यौधेय' (यौधेयानां बहुधान्यके) इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसी कारण महाभारत से लेकर पृथ्वीराज पर्यन्त ये पुराना नाम बहुधान्यक चलता रहा। बहुधान्यक मुद्रा पर एक ओर हाथी का चित्र तथा दूसरी ओर सांड का चित्र भी इस देश की सम्पन्नता को प्रकट करने वाले हैं। नवमी व दसवीं सदी में भी यौधेयों का हरियाणा प्रदेश बहुधान्यक ही था। श्री सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू में यौधेय प्रदेश की सम्पन्नता को इस प्रकार प्रकट किया है :—

स यौधेय इति ख्यातो देशः क्षेत्रेऽस्ति भारते।
देवश्रीस्पर्धया स्वर्गः स्रष्ट्रा सृष्टइवा परः॥ 42॥

वपत्र क्षेत्र संजातस्य सम्पत्ति बन्धुराः।
चिन्तामणिसभारम्भारम्भाः सन्ति यत्र बन्धुराः॥ 43॥

लवने यत्र नोप्तस्य लूनस्य न विगाहने।
विगाढस्य च धान्यस्य नालं संग्रहणे प्रजाः॥ 44॥

दानेन वित्तानि धनेन यौवनं यशोभिरायूंषि गृहाणि चार्थिभिः।
भजन्ति सांकर्यमिमानि देहिनां न यत्र वर्णाश्रमधर्मवृत्तयः॥ 45॥

(यशस्तिलक चम्पूकाव्ये प्रथम आश्वासे 42-45 अर्थात् भारत देश में प्रसिद्ध वह यौधेय देश अत्यधिक मनोहर होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो ब्रह्मा ने दिव्य श्री से ईर्ष्या करके दूसरे स्वर्ग की रचना कर डाली है॥ 42॥

वहां की भूमियां अत्यधिक उपजाऊ, खेतों में भरपूर उत्पन्न होने वाली धनधान्य सम्पत्ति से मनोहर और वांछित वस्तु देने के कारण चिन्तामणि के समान आरम्भशाली थीं अर्थात् मनोवांच्छित फल देने वाली थीं॥ 43॥

जहां पर ऐसी प्रचुर महत्ती धान्य सम्पत्ति उत्पन्न होती थी, जिससे प्रजा के लोग बोए हुए खेत को काटने में, काटे हुये धान्य को गाहने में तथा गाहे हुये धान्य का संग्रह करने में समर्थ नहीं होते थे॥ 44॥

जहां पर प्रजाजनों को निम्न प्रकार इतनी वस्तुएं परस्पर के मिश्रण से युक्त थीं, वहां धन, सम्पत्ति, पात्र, दान से मिश्रित थीं, अर्थात् वहां की उदार प्रजा दान, पुण्य आदि पवित्र कार्यों में पुष्कल धन व्यय करती थी। इसी प्रकार युवावस्था धन से मिश्रित थी अर्थात् वहां के लोग युवावस्था में न्यायपूर्वक प्रचुर धन का संग्रह करते थे इसी से वहां की जनता का समस्त जीवन यशोलाभ से मिश्रित था। अर्थात् वहां के निवासी जीवन पर्यन्त चन्द्रमा के समान शुभ कीर्ति का संचय करते थे। तथा वहां के गृह भिक्षुओं से मिश्रित थे। अर्थात् वहां के घरों में भिक्षुओं के लिये यथेष्ट भिक्षा व दान मिलता था। वहां पर सभी वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) तथा आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) वासी अपने कर्तव्य पालने में तत्पर थे अर्थात् एक वर्ण व आश्रम का व्यक्ति दूसरे वर्ण व आश्रम के कर्तव्य आदि (जीविका व व्यवहार) नहीं करता था॥ 45॥)

इससे सिद्ध होता है कि यौधेय प्रदेश में उस समय वैदिक संस्कृति व्यवहार में पराकाष्ठा पर पहुंची हुई थी और उसी के कारण हरियाणा यौधेय काल में स्वर्ग बना हुआ था।

आज से लगभग 640 वर्ष पूर्व का शिलालेख सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का दिल्ली के सारबान ग्राम से मिला है। इस लेख पर सम्वत् 1384 व 1385 विक्रमी फागुन शुक्ला 5 मंगलवार अंकित है। यह ग्राम दिल्ली से 5 मील दूर दक्षिण में है। यह शिलालेख दिल्ली के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें 16 श्लोक हैं। तृतीय चतुर्थ श्लोक में इसे हरियाणा को स्वर्ग के समान लिखा है।

देशोऽस्ति हरयाणाख्यः पृथिव्यां स्वर्ग सन्निभः।
ढिल्लीकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता॥
तोमरानन्तरं तस्यां राज्यमहितकण्टकम्।
चाहमाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालनतत्पराः॥

इससे सिद्ध होता है कि 640 वर्ष पूर्व मुस्लिम बादशाह तुगलक के समय भी यह प्रदेश स्वर्ग के समान था।

अपभ्रंश भाषा के कवि पुष्पदन्त ने इस यौधेय भूमि हरियाणा प्रदेश के विषय में लिखा है :—

जोहयेउणाम अमिय वेसु,
णंधरीणाएं धरिमउ दिव वेसु।
जहि जणधणकण परि पुण्णनाम्,
पुरणधर सुसमि रामसम॥

अर्थ :—यौधेय नाम का यह देश धरणी, पृथ्वी पर दिव्य वेश धारण किये हुए है जो देश धनधान्य से परिपूर्ण है। यहां के ग्राम और नगर बड़े शोभायमान हैं। इसके लेखक कवि पुष्पदन्त का काल 10वीं व 11वीं विक्रमी शती माना जाता है। लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व भी हरियाणा स्वर्ग के समान था।

हरियाणा में 200 वर्ष पूर्व नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध साधु स्वामी मस्तनाथ जी हुए हैं। नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मठ अस्थल बोहर की गद्दी के संस्थापक यही थे और सन् 1761 ई० में हुये पानीपत युद्ध के पश्चात् भी ये जीवित थे। इन्होंने मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ को, जो साधु बनकर हरियाणा में बहुत समय तक प्रचार करते रहे, अपना शिष्य बनाया था और दर्शन दिये थे अर्थात् कान फाड़कर मुद्रा पहनाई थी। सदाशिवराव भाऊ की समाधि सांगी ग्राम में बनी हुई है। बाबा मस्तनाथ के जीवन में लिखा है :—

देश अनूप एक हरियाणा।
दूध दधी घृत का जहां खाना।
बसत कुशल जहां हरिजन गेहूं,
राखत अधिक साधुपद नेहूं।
दया धर्म अरु भक्त रसीले,
लोग अहिंसक बहुत सुशीले।
केसरहिरी एक नगर सुहावन,
रोहतक जिला मांहि अतिपावन॥

उपर्युक्त पंक्तियों में भी स्वर्ग की व्याख्या की है। उस समय अंग्रेजों के काल में भी हरियाणा वैदिक संस्कृति से ओतप्रोत था।

हरियाणा में एक प्रसिद्ध संत गरीबदास जी हुये हैं। इनका जन्म रोहतक जिले में छोया ग्राम में हुआ। इनके पुत्र ब्रह्मचारी जैतराम जी थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में तीन सौ पंचानवें पृष्ठ पर हरियाणा की संस्कृति का कुछ बखान किया है।

दिल्ली मण्डल देश बखानो, हरियाणा कहलावै ।
बागड़ जमना मधि बिचालै, सुखदाई मन भावै । 1 ।

ब्रज और धाकरि मध्य हरियाणा, समझ विचारो भाई ।
हरियाणा आनन्द मनभाया, जहां दूध दही सुखदाई ।। 2 ।।

अन्न जल भोजन मनके भाये, भक्ति रीति सह नाना ।
सन्त समागम सेवन करिहि, गंगा जमना नहाना ।। 3 ।।

जीव हिंसा जहां नहीं कराहि, मदिरा भरवै न कोई ।
भक्ति रीति सब ही त्योहारा, विघन करै नहीं कोई ।। 4 ।।

ऐसा है हरियाणा दीपं, कन्या हनै न कोई ।
भक्ति रीति सब ही त्योहारा कुटिल कर्म सब खोई ।। 5 ।।

तीर्थ व्रत करें सब प्राणी, चोरी जारी खण्डा ।
राम नाम सुमरन मन मान्या, कर में शस्त्र डंडा ।। 6 ।।

कथा कीर्तन, गावन, ध्यावन, गीता पाठ कराहि ।
श्रवण सुनै भागवत सब लीला, राम राम मुख मांही ।। 7 ।।

ऐसी चाल देश की कहिये, हरियाणा मन मान्या ।
अति जाजुल कर्म नहीं कोई करै सै बहुत पछताना ।। 8 ।।

तातैं कर्म कोई जनकरि हूं, और कहूं क्यों कीन्हां ।
जाकू मिलकर सब समझाते, फिर संकल्प भर दीन्हां ।। 9 ।।

अपने अपने होते मांही, कर्म लिखा सो पावै ।
खेती बनज करै मन मान्या, कहीं न भटका खावै ।। 10 ।।

दूध-दही मन मान्या होई, कोई जन बिरला खाती ।
अतिसुन्दर नीकी नर काया, सबके मुख पर लाली ।। 11 ।।

फुट चलनी त्रिया कोई नाहीं, मरजाद रूप त्योहारा ।
जैतराम ऐसा हरियाणा, सब देशों से न्यारा ।। 12 ।।

इससे भी यही सिद्ध होता है कि भारत के पतनकाल के समय आज से सौ वर्ष पूर्व भी हरियाणा स्वर्ग के समान था । इसकी वैदिक संस्कृति ज्यों की त्यों अविकृत रूप में थी । पवित्र-चरित्र, शुद्ध सात्विक, निरामिषभोजन, साधु-महात्माओं का सत्संग तथा उनके प्रति श्रद्धा, प्राचीन पंचायत के अनुसार सामाजिक व्यवस्था तथा छात्र धर्म की प्रवृत्ति का सूचक हाथ में आधुनिक शस्त्र डंडा———सभी प्रकार से वैदिक वर्णाश्रम धर्म का पालन करने में सारा हरियाणा संलग्न था ।

हरियाणावी संस्कृति ने यहां के जनमानस में एक निश्छल सरलता और अनेक कमनीय मर्यादाओं को संजोया है । समाज में रहते हुये किस व्यक्ति को कैसे रहना चाहिये उसकी सीख देना यहां की संस्कृति की एक अनोखी और आदर्श देन है । इसका एक छोटा किन्तु सारगर्भित उदाहरण है यहां की एक लोकोक्ति :—

बाप के घर बेटी गुदड़ लपेटी । अर्थात् पिता के घर रहते हुये लड़की को अत्यन्त सादगी से रहना चाहिये । साधारण कपड़े धारण करने चाहिएं । शृंगार करना तो दूर रहा शृंगार करने की बात भी मन में नहीं आनी चाहिये । क्योंकि "शृंगार व्याभिचार का दूत और सादगी सदाचार की जननी है" । इसलिये सदाचार की रक्षा हेतु पिता के घर पुत्री को सादगी से रहना परमावश्यक है ।

हरियाणा के लोक मानस में सदाचार का बहुत बड़ा महत्व है। यहां के निवासी जानते हैं कि कोई भी सुकर्म सदाचार के बिना हो नहीं सकता। इसी बात को मनु महाराज ने इस प्रकार कहा है। 'अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्म-ज्ञान विधीयते'।

हरियाणवी मान्यताओं में सदाचार की कसौटी शारीरिक और मानसिक स्वस्थता को माना गया है। यही कारण है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिये यहां भोजन को भी प्रधानता दी जाती रही है। शक्तिदायक भोजन के प्रति यहां लोगों की कितनी अधिक अभिरुचि है। इसको जानने के लिये यहां एक लोकोक्ति को उद्धृत करना उपयुक्त होगा। लोकोक्ति :—

जाड़ा लागै पाला लागै खोवड़ी निवाई।
सेर घी घाल कै लप लप खाई॥

अर्थात् जाड़ा गर्मी आदि सभी प्राकृतिक द्वन्द्वों से बचने का एक मात्र उपाय है—पौष्टिक भोजन।

निरन्तर दो सहस्र वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों के साथ युद्ध करते रहने से इस प्रान्त वालों का पठन-पाठन तो समाप्त हो गया। सामाजिक व्यवस्था में भी कुछ गड़बड़ हुई किन्तु दिल्ली, आगरा में निरन्तर मुस्लिम बादशाहों की राजधानी होने के कारण धर्म और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भयंकर अत्याचार भी हरियाणा को सहने पड़े। किन्तु दिल्ली के चारों ओर वही चोटी, तगड़ी और ब्राह्मणों के जनेऊ आज तक विद्यमान हैं। क्षत्रिय और वैश्यों को ब्राह्मणों ने पढ़ाना तथा यज्ञोपवीत देना बन्द कर दिया। क्योंकि निरन्तर दीर्घकाल तक युद्ध चलते रहने से ब्राह्मणों का भी पढ़ना-लिखना बन्द हो गया था। स्वयं अनपढ़ वे लोग अपने यजमानों को कैसे पढ़ाते और विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत अपने क्षत्रियादि यजमानों को कैसे देते। फिर भी अपनी योग्यतानुसार कथावार्ता के द्वारा धर्म शिक्षा देते ही रहते थे। हरियाणा में अनेक साधु-सन्त हुये हैं जो धर्म-प्रचार करके वैदिक संस्कृति को हरियाणा में जीवित रखते रहे। जिनमें निश्चलदास, गरीबदास, नित्यानन्द, चेतरामदास, मस्तनाथ तथा बाबा गोरखनाथ बहुत प्रसिद्ध हुये हैं।

नाथ सम्प्रदाय के जो शैवमत का ही प्रचारक है, छोटे-बड़े मठ तो सैकड़ों की संख्या में हरियाणा में आज भी प्रत्येक तड़ाग पर तथा प्रत्येक ग्राम के बाहर किसी न किसी साधु का डेरा अब भी देखने में आता है। हरियाणा के प्रत्येक ग्राम में शिवालय बने हुये हैं। ये प्रमाणित करते हैं कि सारा हरियाणा आरम्भ से आज तक शैव सम्प्रदाय अथवा शिवजी से विशेष स्नेह रखता है। कहीं-कहीं इस प्रान्त का नाम शिव प्रान्त भी मिलता है।

इन बातों से सिद्ध होता है कि इस प्रान्त का नाम हरियाणा ही है। वैसे विष्णु व कृष्ण के मन्दिर बहुत ही न्यून हैं। कहीं ढूंढने से एकाध मिलेगा। वैसे हिन्दुओं का स्वभाव है कि सभी देवताओं की मूर्तियों को सिर-माथा देते हैं। इसी कारण महात्मा बुद्ध की मूर्ति भी हमें कहीं-कहीं से प्राप्त हुई है। जैसे सांघी ग्राम में महात्मा बुद्ध की एक प्रस्तर-मूर्ति हमें मिली है।

किन्तु स्वामी शंकराचार्य के प्रभाव से हरियाणा से बौद्ध धर्म का प्रभाव, जो थोड़ा बहुत हुआ था, समूल नष्ट हो गया। हरियाणा के लोग क्षत्रिय प्रकृति के हैं, वे इसे कैसे पसंद करते।

यहां पर वैदिक संस्कृति का प्रभाव आदिकाल से आज तक रहा है।

शतियां (सदियां) बीत गईं अनेक राज्य इस आर्य भूमि की रंगस्थली पर अपना अभिनय करके चले गए, किन्तु यौधेयों की सन्तान हरियाणा वासियों में आज भी कुछ विशेषतायें शेष हैं। सरलता, सात्विकता इनमें कूट-कूटकर भरी है। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इनका आचार-विचार, आहार, व्यवहार सात्विक है। अल्हड़पन से युक्त वीरता और भोलेपन से युक्त मिश्रित उद्दण्डता आज भी इनके भीतर विद्यमान है। इन्हें प्रेम से वश में लाना जितना सरल है, आंखें दिखाकर दबाना उतना ही कठिन है। अन्याय के आगे झुकना इनके विरुद्ध है। इनकी गर्दन टूट तो सकती है पर झुक नहीं सकती। अपने पूर्वज आयुधजीवी यौधेयों के समान युद्ध करना (लड़ना) इनका मुख्य कार्य है। पाकिस्तान और चीन के युद्ध में इनकी वीरता की गाथा जगत् प्रसिद्ध है।

अंग्रेजी काल में भी संसार के जो महायुद्ध हुए उनमें भी हरियाणा के इन वीरों ने जो अपना युद्ध कौशल दिखाया आज भी उन्हें याद करते हैं। आज भी सब योरुप वासी दान्तों तले ऊंगली दबाते हैं। फ्रांस में हरियाणा की 6 नं० जाट पलटन ने जो वीरता दिखाई थी वह तो "भूतो न भविष्यति" सिद्ध हुई। इसकी समानता जगत में और कहीं देखने को नहीं मिलती। हरियाणा वीरों की भूमि है। यह क्षात्र धर्मप्रधान, वैदिक संस्कृति का उपासक है। आर्यों की संस्कृति हरियाणा के जनमानस में घर किये हुए है, जीवन में ओत-प्रोत है, यही हरियाणा की सबसे बड़ी विशेषता है।

हरियाणा का जन-जीवन : बेशुमार यादें

○

—विष्णु प्रभाकर—

आज हरियाणा एक स्वतन्त्र राज्य है और बड़ी तेजी से प्रगति के पथ पर बढ़ा चला जा रहा है। सभी गांवों में बिजली पहुंच गई है और समूचा प्रदेश नहरों से पटा पड़ा है। सिंचाई-इंजीनियर बाढ़ के पानी को निचली सतह से 'उठान सिंचाई योजनाओं' द्वारा राज्य के सुदूरवर्ती मरुस्थल क्षेत्रों में पहुंचाने के लिये कठिन संघर्ष कर रहे हैं। वह न केवल अनाज के मामले में स्वावलम्बी हो गया है, बल्कि दूसरे राज्यों को भी अनाज भेजने की स्थिति में आ गया है। औद्योगिक दृष्टि से भी चहुंमुखी विकास योजनाएं उसकी प्रगति का प्रतीक हैं।

लेकिन मुझे याद आ रही है उस हरियाणा की, जो कभी अविभाजित पंजाब का एक अंग था और हर दृष्टि से पिछड़ा हुआ था। अधिकांश किसानों को सिंचाई के लिये वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था। इसलिये हर तीसरे वर्ष उसके बहुत बड़े भाग में 'कहत' पड़ता था और उस समय यहां के निवासी आकाश की ओर मुंह उठा कर भगवान् से यही प्रार्थना किया करते थे, 'हे प्रभु! तू अनाज नहीं देता तो न दे, पानी नहीं देता तो न दे, लेकिन हवा तो चला दे, जिस से हम सांस तो ले सकें।' इसे यूं भी कहा जा सकता है कि वे भगवान् से प्रार्थना किया करते थे कि यदि मरना ही है तो तड़प-तड़प कर न मरें, सांस लेते हुए मरें।

हरियाणा अपने पशु-धन के लिये विश्व-भर में प्रसिद्ध है। लेकिन उन दिनों ठठ के ठठ लोग अपने पशुओं को शहर की ओर हांकते हुए चले आते थे और संध्या होते न होते एक गाय का मूल्य आठ आने तक पहुंच जाता था। कभी-कभी तो इतना भी नहीं होता था और वे बेचारे अपने पशुओं को यूं ही छोड़ कर चले जाते थे।

इन अकल्पनीय बातों पर क्या कोई विश्वास करेगा? परन्तु उन दिनों सस्ता भी तो इतना था कि आठ आने का भी मूल्य होता था। खुशहाली के दिनों में घी-दूध के इस प्रदेश में दूध पांच पैसे सेर और घी एक रुपये का इक्कीस छटांक तक बिक जाता था। आज गेहूं रुपये का सेर भी नहीं मिलता, लेकिन तब रुपये में 16 सेर से 20 सेर तक का भाव था। इसी हिसाब से दूसरे अनाजों के भावों की भी कल्पना की जा सकती है। मुझे एक दृश्य आज भी याद है। मेरी मां एक रुपये की मूंग लेने के लिए बाजार गई थी। 28 सेर का भाव था। मां को ऐसा लगा कि जैसे दुकानदार ने तोलते हुए डंडी मारी हो। उनके ऐसा कहने पर दुकानदार हंस पड़ा था और दोनों हाथों में लगभग एक सेर मूंग ले कर पल्ले में डाल दी थी। बोला था, "क्या कहती हो मां जी, यह लीजिये और ले जाइये।"

घी-दूध इतना सस्ता था कि मिलावट की बात तब कोई सोच ही नहीं सकता था। दूध भी ऐसा कि थोड़ी देर रखने के बाद ही उस पर घी जम जाये और घी इतना जायकेदार कि तन-मन महक उठे। याद है जब डालडा के आने की चर्चा चली थी तो एजेंट को शहर के अन्दर दुकान नहीं मिली थी। उसे बाहर एक बाग में शरण लेनी पड़ी थी और उस ओर जाना पाप समझा जाता था। मैं उन दिनों हिसार के सुप्रसिद्ध कैटल-फार्म पर काम करता था। मुझे तीन सेर दूध प्रति-दिन बाजार से आधे दर पर मिलता था। (1930 तक तो यह बिना किसी मूल्य के ही मिलता था)। उस दूध में एक छटांक मक्खन निकलना साधारण बात थी। सन् 1930–31 की विश्व प्रसिद्ध मन्दी में सोना 20–21 रुपये तोला तक बिक गया था।

आज यह सब परियों की कहानियां लगती हैं। ग़रीबी तब भी बहुत थी। लेकिन लोगों के दिल छोटे नहीं हुये थे। हरियाणा का आतिथ्य भुलाये नहीं भूलता। बेतन-वितरण के लिये दूर-दूर खेतों और खलिहानों में जाना पड़ता था। अक्सर संध्या हो जाती थी। तब दोपहर को गांव से कोई न कोई घी से तर बाजरे की रोटी, एक लोटा-भर छाछ और एक लौंदा मक्खन का ले आता था। याद है एक बार सातरोड के मेरे एक मित्र ने मुझे खाने पर बुलाया था।

वह जानता था कि मैं खीर का शौकीन हूं, इसलिये जब बड़े-बड़े किनारों वाले थाल सामने आये तो पाया कि वे खीर से भरे हुए हैं और चौधरी साहब एक टोकना भर खीर सामने लेकर बैठ गये हैं। खुशी भी हुई और डर भी लगा। खीर का शौकीन था, लेकिन इतनी खीर खा सकूंगा यह कल्पना भी नहीं कर सकता था। डरते-डरते मैंने चम्मच मांगी कि चौधरी साहब चिहुंक पड़े, "अरे भैया ! खीर कै चम्मच से खाई जा सै। थाली ने उठा के मुंह से लगा लेना !"

इन यादों का कोई अन्त नहीं। सवेरे जब आंख खुलती तो कभी चक्की की घरड़-घरड़ सुनाई देती तो कभी दूध बिलौने की ररड़-ररड़। सबेरे घूमने के लिये निकलता तो देखता कि सिर पर पानी के बड़े-बड़े घड़े रखे दूर-दूर से पनिहारनें चली आ रही हैं। भारी-भारी घाघरे, कुर्ते और ओढ़नी से मुंह लपेटे, सिर पर बालों का मोटा सा जूड़ा, उस पर झालरदार ईंडुरी, उस पर बड़ा-सा घड़ा, बगल में बड़ी सी टोकनी, हाथ-पैर चांदी के गहनों से लदे....।

गांवों की नारियां खेतों में जातीं, पशुओं की देखभाल करतीं, गोबर पाथतीं और बीच-बीच में मानों गाने लगती "गोबर गेरूं पाणी ल्याऊं, जाऊं खेत मैं तड़के।" माथे पर लटकने वाला बोरला इनका सुहाग चिह्न होता है। ये वे ही नारियां थीं, जिनकी मां-बहनों ने अलाउद्दीन जैसे बादशाह और कर्नल ब्रॉम्सस्ट्रोंग जैसे अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये थे। इन्हीं नारियों को मेले और उत्सवों पर रंग-बिरंगी पोशाकों में ऊंचे मर्दाने स्वर में गीत गाते सुन कर रोमांच हो आता। होली के अवसर पर कोड़े लेकर जब ये मैदान में उतरतीं तो बस भागते ही बनता था। शायद ऐसी ही नारियों को देख कर जर्मन जनवादी गणतन्त्र के सुप्रसिद्ध चित्रकार कार्ल ऐरिक म्यूल्लर ने कहा था, "भारत का सौंदर्य प्रभूत है। चाहे धनी हो या निर्धन उसकी रमणियों में लावण्य छलकता है और उन की चाल-ढाल अत्यन्त सुन्दर है। इस देश और इसके लोगों में इतनी विविधता है कि उसको देख कर आंखें चुंधिया जाती हैं।"

आज हरियाणा में पानी की प्रचुरता है, लेकिन मुझे वे दिन याद हैं, जब सैकड़ों फुट गहरे कुओं से पानी खींचते-खींचते हाथ दुख जाते, लेकिन शाबाश है। हरियाणा की नारियों को। उनके शरीर शायद इसी कारण सशक्त हैं कि वे इतनी गहराई से पानी खींचती थीं और इतनी कड़ी मेहनत करती थीं।

हरियाणा का आदमी दो काम करना भली प्रकार जानता है। युद्ध भूमि में शत्रु की छाती फाड़ कर मातृ-भूमि की रक्षा करना और घर पर खेतों की छाती फाड़ कर अन्न उगाना। घी-दूध से पला उनका शरीर किसी भी क्षेत्र में हारना नहीं जानता। पता नहीं वे सूर्यवंशी हैं या यदुवंशी, हूण हैं या सिथियन या आभीर परन्तु कठोर परिश्रम, सादगी और सरलता में उनकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। उनके स्वर में जो अक्खड़पन है उसका उनके सरल स्वभाव से कोई संबंध नहीं। बहुत सवेरे घूमने जाता था तो ऊंटों की रस्सी थामे एक लम्बा कारवां आता दिखाई देता। तब उनकी मुक्त भाषा में उनके मुक्त संस्मरण सुनते ही बनते।

धोती, कामरी, कन्धे पर चद्दर या दोहर, सिर पर पगड़ी और पांवों में देसी जूता, यह थी उन की पोशाक। खुराक थी, बाजरे की रोटी, साग, उड़द-मूंग की दाल और छाछ। छाछ और बाजरे (या चने) के आटे से वे एक विशेष खाद्य पदार्थ तैयार करते हैं, जिसे राबड़ी कहते हैं और वह बहुत खट्टा होता है। याद है एक बार रबड़ी के भुलावे में मैं उसे खा गया था और फिर कई दिन तक मुंह खट्टा-खट्टा रहा था। लेकिन यहां के निवासी खट्टे के ही शौकीन हों यह बात नहीं। ब्याह-शादी के अवसर पर जहां एक ओर चावल और मुंह छूट घी-बूरा मिलता तो दूसरी ओर उच्च कुल के लोगों की बारात में लाडू, जलेबी और बालूशाही के ढेर लग जाते। बाद में जायका बदलने के लिये पूरी-कचौरी और लौंजी आती थी। लेकिन मैं तो छाछ की बात कर रहा था। उसे वे पानी की तरह पीते थे। घी-दूध खूब खाते थे। मैंने उन्हें मिर्चों को पीस कर और उसमें खूब घी डाल कर खाते हुए देखा है। दुर्भाग्य से आज शराब का चलन बढ़ गया है। पीते तब भी थे, लेकिन फैशन के रूप में। नये-नये पढ़े-लिखे लोग कोट-पतलून और टोप लगाते हुए बड़े अजीब-से लगते थे। लेकिन अंग्रेजी राज्य में वह एक इज्जत की पोशाक थी और शायद शराब पीना भी।

हरियाणा के लोग धर्म भीरू हैं। एक ओर शिव के उपासक हैं तो दूसरी ओर अग्नि-पूजक बिश्नोई भी। मुसलमानों के नाना पंथ भी वहां मिलते थे और आर्य समाज का तो यह गढ़ ही था। यहां की जातियों के सामाजिक रीति नियम बहुत सरल और उदार थे। यदि किसी स्त्री का पति मर जाता तो वह अपने देवर या जेठ किसी से शादी

कर लेती । माना जाता था कि लड़की जब एक बार बहू बन कर घर में आ जाती है तो वह न तो विधवा हो सकती है और न घर से बाहर जा सकती है । नवयुग के आगमन के साथ ये प्रथायें शिथिल होती जा रही हैं।

आज यहां जातिगत संघर्ष नहीं है, लेकिन अविभाजित पंजाब में हिन्दू-मुसलमान, हिन्दू-सिख और हिन्दुओं में भी जाट, बनिये, ब्राह्मण प्राय: खड्गहस्त हो उठते थे । ये संघर्ष बुरे सपने की तरह अब अतीत की कहानी बन गये है। लेकिन उन दिनों की चर्चा मैं करना चाहूंगा जब हरियाणा के महान नेता सर छोटू राम महाजनों के अन्याय के विरुद्ध कृषकों की उन्नति के लिये घोर प्रयत्न कर रहे थे । एक कड़वाहट-सी वातावरण में छा गई थी, लेकिन वह राजनीति की कड़वाहट थी। हम लोगों के आपसी संबंध तनिक भी प्रभावित नहीं हुये थे। इसलिये वह विषाक्त वातावरण बहुत शीघ्र समाप्त हो गया ।

आर्य समाज के वार्षिक उत्सव बड़े उल्लास के साथ मनाये जाते थे । मुझे उन अटपटे शास्त्रार्थों की याद है, जो आर्य समाजियों, सनातनियों, जैनियों और मुसलमानों के बीच हुआ करते थे। कैसे थे वे दिन ? एक ओर जहां उन्होंने जीवन में कड़वाहट भर दी थी वहीं दूसरी ओर एक अद्भुत जागृति भी पैदा कर दी थी। यहां की जनता मेले-ठेलों की बहुत शौकीन है। पशुओं के मेले हों (हरियाणा पशुओं के लिये प्रसिद्ध है इसलिये ये मेले बहुत होते हैं)। या रामलीला हो या गूगा पीर का मेला सब कहीं एक अद्भुत रंगीनी, एक उमगता उल्लास और एक गहन निष्ठा दिखाई देती है।

हरियाणा अपने संगीतों और स्वांगों के लिये भी प्रसिद्ध है। ढोला-मारू, हीर-रांझा, रूप-बसन्त, नल-दमयन्ती, कितने ही स्वांग मैंने देखे हैं। ये हरियाणवी स्वांग मंचहीन रंगमंचीय परम्परा की एक कड़ी हैं । मेरे समय में जसवन्त सिंह की रामायण भी बहुत लोकप्रिय रही। लगभग सन् 1933-34 तक बड़े नगरों में पारसी रंगमंचों का बोल-बाला था। राधे श्याम कथा वाचक, नारायण प्रसाद 'बेताब' और आगा हश्र कश्मीरी आदि सुप्रसिद्ध नाटककारों के कितने ही नाटक मैंने मंच पर देखे और खेले हैं। मैंने यहां सिनेमा को भी आते हुए देखा है। पहले मौन और फिर सवाक चलचित्र आये । उन के आते न आते रंगमंच समाप्त हो गया, लेकिन देहातों में संगीतों और स्वांगों का प्रभाव बना रहा ।

हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिये हरियाणा में बराबर प्रयत्न होते रहे हैं। तब वह जनमानस की भाषा थी और हरियाणा पर गांधी जी का प्रभाव कम नहीं था। मैंने यहां सन् 1930 में नमक बनते देखा है और देखा है उल्लास और उमंग के साथ मिलों को लाठियां खाते । मैंने सन् 1940 और सन् 1942 के आंदोलन भी देखें हैं। पंडित मदन मोहन मालवीय, सरदार बल्लभ भाई पटेल, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री सुभाष चन्द्र बोस और श्री यामिनी सेन गुप्त आदि महान नेताओं के ओजस्वी भाषण भी सुने हैं। क्रांतिकारियों के दर्शन किये हैं। सोशलिस्ट पार्टी को जन्म लेते हुए भी देखा है । क्रांति की हर मुद्रिम पर हरियाणा सजग रहा है । उन दिनों की याद करके मन उल्लसित हो उठता है।

इन यादों का कोई अन्त नहीं और शायद इनमें कोई क्रम भी नहीं, लेकिन यह एक ऐसे प्रदेश का जिस अवश्य प्रस्तुत करती हैं जो एक ओर अभावों से जूझता था तो दूसरी ओर हर मोर्चे पर लड़ता भी था, लेकिन जिसने अपने उल्लास और अपनी उदारता को कभी मुर्झाने नहीं दिया था। आज भी वह उसी उल्लास और उदारता के साथ नव-निर्माण के संघर्ष में रत है। मुझे विश्वास है कि वह बहुत शीघ्र प्रगति करके सर्वश्रेष्ठ राज्य बन जाएगा ।

हरियाणा का सांस्कृतिक विरसा

—सेठ गोबिन्द दास—

विस्मृति की एक लम्बी अवधि के बाद, हरियाणा का पूर्ण राज्य के रूप में अस्तित्व में आ जाने से उसका असली रूप सामने आया है और ऐसा भाषा, संस्कृति, राजनीति और भौगोलिक स्थिति, जिसके लिए इसका पिछला इतिहास साक्षी है, होने के उपलक्ष्य में ही हुआ। हरियाणा ने भारतीय जीवन तथा संस्कृति में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर रखा है।

हरियाणा पुराने समय से ही बड़ी शूरवीरता का स्थल रहा है। बुराई और अच्छाई, सत्य और असत्य की शक्तियों का परस्पर महाभारत का निर्णायक युद्ध यहां पर ही कुरुक्षेत्र की पुरातन भूमि पर लड़ा गया था। इसी स्थान पर बुरे और अत्याचारी को समाप्त करने के लिए भगवान श्री कृष्ण ने प्रसिद्ध योद्धा अर्जुन को कायरता का त्याग कर के सच्चाई के लिए युद्ध करने की प्रेरणा दी थी और कहा था कि "यदि तुम्हारी विजय हुई तो तुम इस पृथ्वी पर नाम पाओगे और यदि युद्ध के मैदान में मारे गए तो स्वर्ग में जाओगे।"

हरियाणा वह पवित्र भूमि है, जहां भारतवर्ष के प्रथम सम्राट भरत ने अश्वमेध यज्ञ रचाया था।

इसी स्थान पर नरनारायण ने बड़े-बड़े यज्ञ (धार्मिक थलि) किए थे। इन्द्र और वरुण जैसे देवताओं ने यहां घोर साधनाएं कीं और महर्षि जमदग्नि ने यहीं पर अपना आश्रम या आश्रय-स्थान स्थापित किया था। आज तक भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर समूचे भारतवर्ष से लाखों व्यक्ति आध्यात्मिक गुण और प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कुरुक्षेत्र, कैथल, पेहोवा, कपाल मोचन आते हैं। इस क्षेत्र में और भी कई पवित्र स्थान हैं। भाई सन्तोख सिंह जैसे महान् कवि, कैथल की पवित्रता के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि....

> **घाट का प्रत्येक किनारा दिल के दुखों को हर लेता है। ये घाट स्वच्छ जल तथा सुन्दर सीढ़ियों से सजे हुए हैं। संत और भले पुरुष यहां देवताओं के लिए समाधि में बैठते हैं। यहां तक कि मौत भी इस पवित्र स्थान के नजदीक आने का साहस नहीं कर सकती। यह अत्यन्त पवित्र-स्थान देवताओं का निवास-स्थल है। यहां के सभी स्थान सुन्दर हैं और ये दर्शकों को सुबुद्धि प्रदान करते हैं।**

यह क्षेत्र जैन, बौद्ध, शैव और शाक्त धर्मों का भी केन्द्र रहा है। जगाधरी के नजदीक सुघ नामक स्थान पर हाल ही में खुदाई की गई थी, जिसके फलस्वरूप वहां कुछ स्मृतिशेष मिले हैं, जिनसे यह पता चलता है कि भगवान् बुद्ध स्वयं वहां आए थे।

यह क्षेत्र मुसलमान सूफी सन्तों, जिनमें बू-अली शाह कलन्दर और शेख चेहली भी शामिल हैं, का भी घर रहा है। सढौरा और पानीपत उनके धर्म प्रचार के प्रसिद्ध केन्द्र थे।

झज्जर के पुरातत्व संग्रहालय में इकट्ठे किए गए बहुमूल्यवान् स्मृतिशेष से, जोकि हरियाणा के विभिन्न पुराने स्थलों की खुदाई करके प्राप्त किए गए हैं, इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि हरियाणा यौद्धेय, अगरोह और कुनियन गणतन्त्रात्मक राज्यों का केन्द्र रहा है जोकि भारत-यूनानी, भारत-सीथियन और भारत-पारथियन राजाओं से सम्बन्ध रखते थे। हरियाणा के लोगों का रहन-सहन सादा है। यहां के लोग बड़े उद्यमी, ईमानदार और साफ दिल हैं। स्त्रियां बड़ी आज्ञाकारी और मेहनत करने वाली हैं और वे खेतों में भी अपने आदमियों की सहायता करती हैं। अपने आदमियों की वे सही अर्थों में सहायक हैं। हरियाणा के लोगों ने अपने क्षेत्र की पुरानी धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं और रिवाजों को सुरक्षित रखा है। सभी परम्परागत त्योहारों को यहां बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। इस क्षेत्र के लोकप्रिय लोक-गीतों में यहां की जनता के विश्वास और पवित्रता की झलक मिलती है। इस क्षेत्र की संस्कृति और लोकप्रिय कला का प्रदर्शन अनुकृतियों, लोक नाटकों (गीतों), हालादों और गीतों द्वारा होता है, जिनमें लोग बड़ी खुशी से भाग लेते हैं।

इलावा हर्ष ने देश की भौतिक और नैतिक उन्नति के लिये भी उपयुक्त वातावरण पैदा किया । उसके कल्याणकारी राज्य में कर कम थे, धार्मिक नीति बड़ी उदार थी। शिक्षा और कला को तरक्की मिली और व्यापार तथा वाणिज्य को भी बहुत प्रोत्साहन दिया गया। इन सब बातों का वर्णन चीनी यात्री ह्यूनसांग ने किया है, जो ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी में भारत में आया था।

हर्ष की मृत्यु (647 ईसवी) के बाद, कुछ समय के लिये हरियाणा के वर्धन साम्राज्य में बड़ी गड़बड़ी और अराजकता छाई रही। परन्तु आठवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तर भारत के अन्दर जब पारथियन एक साम्राज्य शक्ति के रूप में सामने आया तो देश के विभिन्न भाग पुनः इकट्ठे हो गए और हरियाणा फिर से राष्ट्रीय जीवन का एक अंग बन गया ।

चौहान शासक

जब मुसलमान भारत की सीमाओं पर मण्डरा रहे थे, तो चौहान राजाओं में से सबसे प्रसिद्ध राजा पृथ्वी राज चौहान ईसवी सन् 1177 में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा । मध्य प्रदेश के प्रवेश द्वार पर खड़े हुए उन्हें भारत की आजादी और संस्कृति की प्रत्येक चुनौती का सामना करना था। चौहानों ने अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह निभाया । परन्तु मुसलमानों की बढ़ती हुई शक्ति को अधिक देर तक रोका नहीं जा सका । ईसवी सन् 1190 में मुहम्मद गौरी ने सरहिन्द पर कब्जा करके दिल्ली की ओर कदम बढ़ाए। परन्तु पृथ्वी राज चौहान और गोविन्द राज ने उसके इस लक्ष्य को पूरा न होने दिया । गोविन्द राज दिल्ली का राजा था। उन्होंने मुहम्मद गौरी को करनाल के नज़दीक तरावड़ी के मैदान में हराया । होशियार मुहमम्द गौरी, जोकि दिल्ली के शासक की बेसमझ राजनैतिक उदारता के कारण बच कर भाग गया था, वह एक वर्ष बाद अर्थात् ईसवी सन् 1192 में हिन्दू प्रभुसत्ता को अंतिम रूप से समाप्त करने के लिए अधिक सेना के साथ उसी रणभूमि में पुनः आ धमका ।

तरावड़ी की जंग से समूचे उत्तरी भारतवर्ष पर मुहम्मद गौरी की सफलता सुनिश्चित हो गई और दिल्ली में सुलतान राज्य स्थापित हो गया । अन्य लोगों की अपेक्षा हरियाणा के लोग सीधे ही दिल्ली के मुसलमान बादशाहों के अधीन थे। इसलिए उन्हें बहुत सी मुसीबतों का सामना करना पड़ा, जोकि कई शताब्दियों तक जारी रहीं।

परन्तु मुसलमानों के अत्याचार हरियाणा के लोगों की अदम्य शक्ति को पूरी तरह नष्ट नहीं कर सके। उन्होंने कई बार इस साम्राज्य से सीधी टक्कर ली। हरियाणा के दोआब और मेवात क्षेत्र के लोगों ने सन् 1259 में बग़ावत कर दी। असंख्य वीर जाट और मयो मारे गए और लगभग उतनी ही बड़ी संख्या में लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया ।

1857 में आज़ादी की पहली जंग के दौरान देश के विभिन्न भागों की तरह हरियाणा के लोग भी अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़े। बग़ावत, जोकि दिल्ली और मेरठ से शुरू हुई, शीघ्र ही देश के अन्य भागों में भी फैल गई। यह आग दिल्ली और हरियाणा के आसपास के क्षेत्रों में भड़की । बहादुर मेवों, पठान, अहीर, जाटों तथा हरियाणा में रिवाड़ी, नारनौल, फ़रुखनगर, बल्लभगढ़, झज्जर और हांसी के लोगों ने अंग्रेज़ी साम्राज्य के बन्धनों को हिला दिया ।

परन्तु अंग्रेज़ों को निकालने के लिये लोगों के संयुक्त प्रयत्न सफल न हो सके । झज्जर, फ़रुखनगर के नवाबों तथा बल्लभगढ़ के राजा को फांसी पर लटका दिया गया । उनकी रियासतों पर कब्ज़ा कर लिया गया । असंख्य लोगों को सड़कों के किनारों पर मौत के घाट उतार दिया गया और कई व्यक्तियों को उन की जायदादों से वंचित कर दिया गया । इस प्रकार अंग्रेज़ी राज की पुनः स्थापना हो गई ।

आज़ादी की जंग में सक्रिय भाग लेने के कारण अंग्रेज़ हाकिमों ने हरियाणा के लोगों को बहुत तंग किया । इस क्षेत्र को कमज़ोर बनाने के लिये इस के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये । सन् 1857 के बाद पंजाब के मुख्य कमिश्नर, जॉन लॉरेन्स, जिसने कि अंग्रेज़ों की ओर से दिल्ली पर पुनः कब्ज़ा किया था, की सेवाओं के उपलक्ष्य में हरियाणा को पंजाब प्रशासन के अधीन कर दिया गया ।

उच्च संस्कृति, लोकतन्त्रात्मक परम्पराएं, लोगों का हौसला तथा वीरता, अच्छी भूमि और लोगों की परम्परागत समझ, इस क्षेत्र के विशेष लक्षण हैं।

इतिहास

जमुना के पश्चिम में स्थित हरियाणा का भाग ऋग्वेद के जमाने में सप्त-सिन्धु (सरस्वती और सिन्धु नदी के अतिरिक्त पंजाब की पांच नदियों) में शामिल था। बाद में वैदिक और वीर काल में इस क्षेत्र को कुरुओं की भूमि कहा जाने लगा। ईसा पूर्व की 6वीं शताब्दी और उसके बाद इसे कुरु साम्राज्य कहा जाने लगा। यह साम्राज्य उत्तर भारत की 16 बड़ी महाजन पदाओं में से एक था। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में इस भूमि को 'बहुधान्यक' अर्थात् ऐसी भूमि जहां धन और खुशहाली हो, कहा जाने लगा। बाद में यह शब्द बिगड़ कर मधानक बन गया और इस शब्द का प्रयोग ईसा बाद की 12वीं शताब्दी तक होता रहा। तोमर, चौहान और अफ़गान राजाओं के अधीन इस क्षेत्र को हरितनक अथवा हरियाणा कहा जाने लगा और आज तक भी इसे इसी नाम से जाना जाता है। मुगल राज्य के शुरू-शुरू में यह क्षेत्र दिल्ली का ही सूबा था। इस क्षेत्र के इतिहास का दूसरा दौर तब शुरू हुआ, जब ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के पूर्वार्ध में यहां आर्य लोग आए।

वसिष्ठ और विश्वामित्र के संरक्षण में प्रसिद्ध पुरुओं और भरतों ने सरस्वती के किनारे ऋग्वैदिक संस्कृति और धर्म का विकास किया। जब आर्य लोग पूर्व की ओर आगे बढ़े तो कुरुओं और पंचालों ने प्रादेशिक राज्यों की स्थापना की। यही लोग बाद में देश की राजनीति पर छाए रहे।

वीरकाल

वीरकाल में इस पवित्र भूमि को ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश, कुरुक्षेत्र, धर्मक्षेत्र इत्यादि विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा। इन्हीं दिनों में इन्द्रप्रस्थ, रोहतक, पानीपत, भागपत, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, हांसी, सिरसा, करनाल, जींद, पेहोवा आदि जैसे प्रसिद्ध नगर अस्तित्व में आए। कुरुक्षेत्र के इन ऐतिहासिक मैदानों में महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध लड़ा गया और भगवान् श्री कृष्ण ने इसी स्थान पर गीता का सन्देश दिया।

केवल उस अवधि को, जबकि केन्द्राभिसारी बल (centripetal forces), केन्द्रापसारी प्रवृत्तियों (centrifugal trends) पर हावी रहा, जैसा कि नन्दों और मौर्यों के काल में था अथवा जब इस क्षेत्र में विदेशी अर्थात् भारत में यूनानी, शक अथवा कुशान आदि छाए रहे, चाहे ये लोग थोड़े ही समय के लिये ऐसा कर पाए, छोड़कर, बाकी समय में यौधेय गणतन्त्र उन्नति करता रहा और उसने हरियाणा तथा समूचे देश के इतिहास में बड़ा कारगर प्रभाव डाला।

ईसा युग से पूर्व के वर्षों में मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद हुई हलचल के दौरान उत्तर-पश्चिम की ओर से जो विदेशी यहां आए, उन्होंने महसूस किया कि वे यहां ठहर नहीं सकते। देश के इस भाग में कनिष्क के उत्साह से स्थापित की गई कुशान शक्ति शीघ्र ही समाप्त कर दी गई और उन पर प्राप्त की गई विजय को, यौधेयों ने "यौधेय गण की विजय" लिख कर एक सिक्का जारी कर के मनाया।

शान्ति और खुशहाली

ईसवीं सन् की चौथी शताब्दी में जब गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ तो एक बार फिर समूचा देश इकट्ठा हो गया। लगभग दो शताब्दियों की शांति और खुशहाली के परिणामस्वरूप जीवन के सभी पहलुओं में झलकने वाले प्रबुद्ध राष्ट्रीय आदर्श की स्थापना हुई। इस का हरियाणा में भी पूरी तरह प्रभाव पड़ा। इन लोगों की तबाही के कारण इस साम्राज्य की जड़ें हिल गईं। ईसा की पांचवीं शताब्दी के अन्त में इस साम्राज्य के खण्डरातों पर थानेसर का राज्य स्थापित हुआ। देश के इतिहास में इस राज्य ने बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रभाकर वर्धन का गौरव युक्त पुत्र हर्ष जो कि भारत के प्राचीन इतिहास में बड़ा प्रसिद्ध महाराजा हुआ है, ने उस राज्य को एक बड़े साम्राज्य के रूप में तबदील कर दिया जोकि समूचे उत्तरी भारत में सिन्ध से लेकर असम तक और कश्मीर से लेकर नेपाल और नर्वदा तक फैल गया। एक बहुत बड़े संयुक्त साम्राज्य की स्थापना करने के

इन सभी वर्षों के दौरान यहां के लोग अपना अलग राज्य बनाए जाने के लिये प्रयत्न करते रहे । इस के लिये संग्राम किस शक्ल में होता रहा, यह सब स्थिति की अपेक्षा पर निर्भर रहा । मोण्टेग-चैम्सफोर्ड सुधारों के बाद, हरियाणा के प्रतिनिधियों, जिन में स्वर्गीय सर छोटू राम भी शामिल थे, ने हरियाणा राज्य की मांग के लिये विधानसभा में अपनी आवाज उठाई । उन्होंने विकास प्रायोजनाओं में भी अपने इलाके के लिये पर्याप्त हिस्से की मांग की ।

परन्तु स्वतन्त्रता के उपरांत पंजाब का विभाजन हो जाने के कारण, यह क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण हो गया ।

सदियों से राजनीतिक अथवा प्रशासकीय तौर पर छिन्न-भिन्न हरियाणा की 1 नवम्बर, 1966 को एक पृथक राज्य के रूप में स्थापना हुई और इस प्रकार यहां के लोगों की चिरकालीन आकांक्षाएं पूरी हुईं ।

पं० लखमी चन्द

कृष्ण चन्द्र शर्मा

देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्ग सन्निभः

चौदहवीं शताब्दी के अज्ञात कवि की यह कल्पना उनके मन में हरियाणा के लोक संगीत, मधुर कवित्व एवं लोक नृत्य और भिन्न भिन्न कलाओं से परिपूर्ण हरियाणा के लोक जीवन को देख कर जागी थी। पंडित लखमी चन्द इन्हीं लोक परम्पराओं के प्रतीक हैं।

हरियाणा की भूमि ने सभी क्षेत्रों में एक अद्वितीय योगदान भारतीय संस्कृति को दिया है। चाहे कुरुक्षेत्र की भूमि पर महाराजा कुरु द्वारा आधुनिक कृषि का आरम्भ, चाहे गीता जैसे विश्व व्यापी ग्रन्थ की रचना, चाहे सरस्वती के किनारे भारतीय सभ्यता के आधार-वेदों की रचना एवं गायन, चाहे कुरु भूमि पर धर्मयुद्ध का आयोजन, चाहे संगीत में सर्वश्रेष्ठ सुवाद्य विचित्र वीणा एवं सारंगी का उद्भव चाहे सारे भारत में चौथी शताब्दी के नगाड़ा बजाने में यौधेय कालीन अनूठे कलाकार—सभ्यता एवं संस्कृति के अनमोल रत्नों की माला हरियाणा की भूमि पर बिखरी सी मालूम होती है।

इस प्रदेश ने इतिहास में बड़े बड़े आंदोलन एवं उतार चढ़ाव देखे परन्तु हर हालत में यहां के लोगों ने अपने जीवन मूल्यों एवं रीतियों को अपनी बोलचाल की, भाषा में लोकनृत्य, लोक-नाट्य, लोक-संगीत आदि के माध्यम से जीवित रखा।

पं० लखमी चन्द इन सब लोक गुणों के प्रतीक थे। उन्होंने लगभग 20 सांगों की रचना की, लगभग 150 नई लोक धुनों का विकास किया और अभिनय की दृष्टि से लोक नाट्य को इस सीमा तक विकसित किया कि हरियाणा के प्रत्येक गांव में उन की रागनियां या उन के भजन गाने वाले या उन के सांग देखने वालों की संख्या भारी मात्रा में आज भी उपलब्ध है। एक साधारण ग्रामीण के ऊपर भी उनका कितना प्रभाव था? जिस दिन उनकी मृत्यु हुई तो भिवानी जिले में बलियाली गांव का निवासी एक जाट युवक, सरसों काटने वाले अपने दो भाइयों का खाना लेकर खेत में गया। जब उसने अपने भाइयों को लखमी चन्द के दुखद देहांत की सूचना दी तो फसल काटने वाले एक भाई ने कहा "रे भगवान हम भाइयों में ज एक नै ठा लैंदा पर लखमी पंडित नहीं मरणा था।"

पं० लखमी चन्द का जन्म 1901 जाटी कलां गांव जिला सोनीपत में एक साधारण किसान पंडित उदमी के घर हुआ। उन्होंने कोई स्कूल शिक्षा ग्रहण न की। ग्रामीण जीवन को समीप से देखना और इस जीवन के भावों एवं अनुभवों को अपने जीवन में अनुभव करना, उनकी एक मात्र शिक्षा थी। लखमी चन्द ने अपना जीवन एक ग्वाले के रूप में आरम्भ किया। बचपन में उन्हें बसौदी गांव के निवासी अन्धे कवि मान सिंह के गीत सुनने का अवसर मिला जो गांव गांव जाकर अपने दो चेलों के साथ गांव वालों को अपने गीत सुनाते और जो भी पैसे उन के पास बचते उन से ग्रामीण बच्चों को मिठाई खिलाते थे। मान सिंह एक साधारण कवि थे परन्तु लखमी चन्द पर उनका प्रभाव इतना अमिट व गहरा था कि एक अनपढ़ ग्वाला उन की संगत से हरियाणा का सूरज कवि बन गया। मान सिंह का एक साधारण गीत जो लखमी चन्द ने बचपन में सुना "जगत से यों रैन का सपना रे।" संसार रात्रि के क्षण भंगुर सपने के बराबर है। लखमी चन्द की प्रत्येक रागनी या गीत चाहे उसका संबंध प्रेम, कविता, सामाजिक कविता; किसी भी विषय से हो उसकी अंतिम पंक्तियों में भक्ति भाव की झलक मिलती है। लगभग 12 साल की आयु में लखमी चन्द घर छोड़ कर सोहन कुण्डल वाला सांगी के पास रसोइये के रूप में रहने लगे।

उन के दिल में आत्माभिव्यक्ति की गहरी इच्छा थी, जिसे वह कवि, गायक एवं अभिनेता के रूप में अभिव्यक्त करना चाहते थे । रात के समय वे धूलिया खान सारंगी वादक के सारंगी संगीत के साथ घंटों तक घुंघरू बांध कर नाचते और अभ्यास करते । श्री धूला खान जो अपने जीवन में बाद में 20 वर्ष तक लखमी चन्द के सांगों में सारंगी बजाते रहे और लखमी चन्द की मृत्यु के बाद जिन्होंने 25 वर्ष तक आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र पर हरियाणा लोक संगीत बजाया, ने मुझे बतलाया कि लखमी चन्द ने गाने व नाचने में थोड़े समय में वह निपुणता प्राप्त की जो लोग वर्षों में नहीं कर पाते । बाद में जब भी धूला खान लखमी चन्द की बताई हुई नई तर्ज को अपनी सारंगी पर पूरी तरह उतार देते तो लखमी चन्द कहते "उस्ताद कमाल कर दिया, मनै याद करके रोवोगे" । और सचमुच एक दिन धूला खान के लड़के ने अपने पिता को सारंगी बजाते हुए रोते हुए पाया । पूछे जाने पर उन्होंने अपने लड़के सभीर हुसैन को बताया कि लखमी चन्द के मरने के बाद सारंगी बजाने को मन नहीं करता । उस जैसा गाने वाला दुनिया में मौजूद नहीं, सिर्फ रोजी के लिये सारंगी बजानी पड़ती है । मुझे भी कई बार धूला खान की सारंगी सुनने का मौका मिला । मुझे साबरी खान जैसे मशहूर सारंगी वादक ने बताया कि जो मिठास हरियाणवी संगीत बजाने में धूला खान के हाथ में है वह सारे हिन्दुस्तान में अद्वितीय है । ऐसे थे लखमी चन्द के साथी ।

गुरु भक्ति

हरियाणा के सभी सांगी भजनी तथा अन्य गायक अपना कार्य गुरु वंदना से आरम्भ करते हैं । परन्तु लखमी चन्द के सांगों से प्रतीत होता है कि उन की समस्त कला, संगीत एवं जीवन गुरुमय है । वह हमेशा सांग के आरम्भ में कहते हुए जान पड़ते हैं --

मनैं सुमर लिए जगदीश
मानसिंह सतगुरु मिले
गहूं चरण नवा के शीश

गुरु के प्रति आभार शाही लकड़हारा सांग की निम्नलिखित पंक्तियों से स्वत: स्पष्ट है :--

बेहूदी बीना
बहुत गुमान भरी
सतगुरु जी की टहल करे बिन
हांडै जा बाहर बाहर के
लिखण पढण के धन्धे में
पिंजर हो हार हार के
कागज के में मगज मार के
न्यूए मरज्यागी शौक्य मरी

बीना जो गंभीर प्रकृति की राजकुमारी है, को उसकी बहन बेला कटाक्ष करती है कि ग्यान तो गुरु की सेवा से मिलता है, न कि पढ़ने लिखने से । इसीलिये लखमी चन्द किसी अन्य गीत में भी कहते हैं :—

सीख ले मान सिंह की वाणी रहे न बल विद्या की हानि । भजन ते बेरा पाट ज्या धुर का, मुश्किल तैं बेरा पाटै सै सुरका । जो ताबेदार रहैं सतगुरु का उनका बेड़ा पार हो सै ।

गुरु प्रेम और गुरु भक्ति में असीम श्रद्धा रखने वाले लखमी चन्द अपने आप को बड़ा सबल समझते हैं । इसीलिये कहते हैं :-- लखमी चन्द डंका ग्यान का दुनिया में खूब बजाया ।

पं० लखमी चन्द प्रेम, उल्लास के गीतों में भी अपने गुरु को नहीं भूलते । संक्षेप में विरह, लगाव शूरवीरता और सामाजिक जीवन, वात्सल्य और युवा प्रेम के सभी प्रसंगों में लखमी चन्द का चिन्तन गुरु भक्ति से ओत-प्रोत मालूम होता है ।

लखमी चन्द के सांग

काव्य सू 'नाटक रूपम' की कहावत जितनी संस्कृत के नाटकों के लिये सत्य है उतनी ही हरियाणा के सांगों के लिये भी। हरियाणा का सांग ग्रामीण जीवन में ढले हुए नाटक का दूसरा रूप है। हरियाणा लोक मंच पर सांग का अभिनय आडम्बर हीन रहा है। दीप चन्द, हरदेवा, खेमा और बाजे भगत इत्यादि सांगियों ने सांग के विकास में अपना योगदान दिया परन्तु लखमी चन्द ने तो सांग के महत्व एवं अभिनय व संगीत को पराकाष्ठा पर पहुंचाया। उन की तर्ज 'डोली' इतनी मशहूर थी कि सुनने वाले झूम उठते थे। उन के सांगों की विशेषता यह है कि जन-साधारण में प्रचलित लोक कथाओं को 5/6 घंटे के सांग के कथानक में ढाला और कुछ ऐसे सांग बनाए जिनकी कहानियां संक्षेप रूप से महाभारत और पुराणों में मिलती हैं। परन्तु अपनी कल्पना शक्ति और कवित्व और संगीत द्वारा जान डाल कर सर्वप्रिय बना दिया उन्हें, लखमी चन्द ने। उन के जो सांग लखमी चन्द ने बनाए और जिनका अभिनय उन्होंने किया उन का ब्यौरा निम्नलिखित है :

(1) हरिश्चन्द्र मदनावत, (2) नल दमयन्ती, (3) सत्यवान सावित्री, (4) शकुन्तला, (5) द्रोपदी चीर, (6) कीचक विराट परव, (7) भूप-पुरंजन, (8) उत्तानपाद, (9) भगत पूरणमल, (10) हीर रांझा, (11) सेठ ताराचन्द, (12) मीराबाई, (13) नौटंकी, (14) पद्मावत, (15) शाही लकड़हारा, (16) जानी चीर, (17) सरदार चाप सिंह, (18) हीरामल जमाल, (19) राजा भोज, (20) चन्द्र किरण।

पं०लखमी चन्द के सांगों में चरित्र-चित्रण, उपमाएं और काव्य-सौंदर्य इतना गहरा है कि उन्हें संस्कृत के महान कवि राजा भर्तरी हरि व कालिदास की रचनाओं से उन की कविता का मुकाबिला किया जा सकता है। कई रूढ़िवादी लोगों ने उन की रचनाओं पर अश्लील होने का दोषारोपण किया परन्तु मेरे विचार में यह दोषारोपण उस समय विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम था। उन्होंने युवा हृदय में उठने वाली प्रेम भावनाओं को इस खूबी से मंच पर प्रस्तुत किया कि युवक दर्शक एवं श्रोतागण भाव विभोर हो उठे। परन्तु लखमी चन्द के अधिकांश गीत सामाजिक दर्शन और भक्तिरस से ओतप्रोत हैं। परन्तु उन के प्रेम गीतों में हरियाणा के युवकों को उतना ही रस उपलब्ध होता है जितना संस्कृत नाटक के विद्यार्थी को अश्वघोष के "सौंदर्यानन्द" कालिदास के 'शाकुन्तलम्' में प्रेमियों की कोमल भावनाओं के वर्णन और प्रेयसियों की सुन्दर भावनाओं की अभिव्यक्ति से प्राप्त होता है।

जब पं० लखमी चन्द की आयु लगभग 25 वर्ष की थी तो उन्होंने जीवन दर्शन की गहराई को पहचानना आरम्भ किया और धीरे धीरे भक्ति और वैराग्य रस ने उन की कविताओं में प्रेम रस का स्थान लेना शुरू कर दिया। मीरा बाई का सांग तो विरह, प्रेम और भक्ति-रस का इतना अनूठा संगम है जो किसी कवि की दूसरी रचना में देखने को नहीं मिलता। उदाहरणत :--

थारे रटै तै इस दुनियां के पाप नष्ट हों सारे,
दया करो मुझ दासी पे थम दूध पियो, पियर प्यारे।

दस अंगुल ब्रह्माण्ड दशा दस
खण्डहर धूप पतीजी
सूक्ष्म और अस्थूल कार्य कारण रूप पतीजी।
सुरग अन्तरिक्ष प्रकाश अन्धेरा
छाया धूप पतीजी
मान सिंह का दास बारा, सेवक बेकूफ पतीजी,
लखमी चन्द की भी टेर सुनो, तनें बड़े बड़े पापी तारे।

महान नाटककार और श्रेष्ठ कवि लखमी चन्द की कविताओं का सीमित पृष्ठों में विवरण करना कठिन है परन्तु पाठकों की सुविधा के लिए उनकी कविता का अध्ययन तीन भागों में मानत: प्रेम रस एवं श्रृंगार रस कविता सामाजिक दर्शन से सम्बन्धित कविता एवं भक्ति एवं वैराग्य प्रधान कविता के रूप में करना उचित होगा।

प्रेम रस एवं शृंगार रस प्रधान कविता

लगभग सन् 1923 में लखमी चन्द ने स्वतन्त्र सांगी के रूप में अपना जीवन शुरू किया। उनकी कविताओं में युवा भावनाओं का विवरण और शृंगार रस की अभिव्यक्ति पहली दफा परिमार्जित रूप में लोगों के सामने आई। प्रेम रस और शृंगार रस की कविता और अभिनय दोनों इतने उच्च कोटि के थे कि रूढ़िवादी समाज में अश्लीलता के नाम पर उनके सांगों का बहिष्कार शुरू किया। परन्तु समाज का विरोध तो सभी कवियों के जीवन का एक कटु सत्य रहा है। महाकवि कालीदास को कुमारसम्भव भी इसी व्यथा से बीच में छोड़ना पड़ा। परन्तु लखमी चन्द ने जनमत की चिन्ता किये बिना अपनी कविता पर गायन व अभिनय मंच पर किया और उन के सांग पदमावत, नौटंकी, हीर रांझा, चन्द्र किरण, जानी चोर, हीरामल जमाल, हूर मेनका, राजा भोज और शकुन्तला गांव गांव में मशहूर हो गये। उनकी कविता का पूर्ण रसपान तो मंच-अभिनय के साथ ही हो सकता है परन्तु फिर भी पाठकों के लिये कुछ उद्धरण अपेक्षित होंगे। प्रेमी रणधीर अपनी प्रेयसी को पहली बार मिलते हैं और प्रेयसी अपने प्रमी को संकोचवश मूक हो कर निहारती है। सपने में प्रेमी के दर्शन होते हैं परन्तु मृगतृष्णा की तरह ज्यादा असंतोष उत्पन्न करने वाले, पद्मावत, नींद से उठकर रोती है और उसकी मां लाड़ प्यार से बेटी को सहलाती है। क्योंकि प्रेयसी अपने युवा उद्वेगों को केवल सहेली के सामने प्रकट कर सकती है। लखमी चन्द ने किस परिपूर्णता से पद्मावत के द्वारा अपनी सहेली को अभिव्यक्त किये गये प्रेम उद्गारों को चित्रित किया है :--

तीन दिनां हो लिये तड़पती नै
कुछ ना खाई खेहली
भाइयां की सूह जी ज्यागी
दिये दर्शन करा सहेली
सुपने के पैड़ जले की भूमी पड़ पड़ रोही
आंख खूहली ज्यब कोएना दीख्या और
माणस मिला न कोई
आधी रात्य पिलग के उपर एक पहर भर रोई
मेरी मां ने उठके पुचकारी, और कर के लाड़ भलाई
कद भौरा लेगा खसबोई चोह सत्य पे फूल चमेली

रागनी में प्रेयसी की उपमा पूर्णरूप से खिले हुए और महकते हुए चमेली के फूल से दी है। जिसे प्रेमी भौंरे के सामीप्य की आकांक्षा है। परन्तु प्रेमी पास न होने के कारण यह यौवन भी पद्मावत के लिये आंसू और विरह की कहानी है। कालिदास की तरह लखमी चन्द भी अपनी नायिका को बड़ी पैनी दृष्टि से निहारते हैं और लुभावने रंगों में चित्रित करते हैं। 'शाकुन्तलम्' में शकुन्तला की उपमा उस नवोदित आम्रवृक्ष के पत्ते से की है जिसका न वायु ने स्पर्श किया है और न ही सूर्य की किरणों ने साक्षात्कार। लखमी चन्द भी अपनी नायिका पद्मावत को नायक रणवीर से इसी खूबी से चित्रित करवाते हैं :--

सौबे भी अधर्मी मौज में उठै
पहोच्यग्या रणबीर, सिरहाणै बैठ ग्या जाकै।
लखमी चंद रट्य माल्या हरकी
मिल्यो खूट्य अर्द्धशरीरी धर की
फुल्य पंवरोह सर्य की बोध में
सुध लंहगे सुध चोर चाहे
कोए देख्य ल्यो ठाकै।

पद्मावत का सौंदर्य परिपक्व अंजीर की तरह है जिसे रणवीर अपनी जेब में रखने लायक मूल्यवान वस्तु समझते हैं। कवि की कल्पना शक्ति की किन शब्दों में सराहना की जाए। वे अपनी नायिका को केवल 15 सेर वजन वाली परी के रूप में देखते हैं। लोक जीवन का यह विश्वास है कि पद्मावत स्त्रियां इन्द्र के अखाड़े की

परियों की तरह हलके बजन वाली होती हैं। केवल व्यक्तिगत चरित्र-चित्रण में ही लखमी चन्द अपनी कला के माहिर नहीं बल्कि सहेलियों के समूह को भी उन्होंने मनोहारी उपमाओं से चित्रित किया है। जब पद्मावत व उनकी सहेलियां गीत गाती हुई तालाब पर नहाने जाती हैं तो लखमी चन्द कहते हैं --

किसे चीज की कसर नहीं थी
उन सखियां के तीजन में
जैसे सोलह कला भरपूर चन्दा
खिलया गगन में ।

हरियाणा के देहात में यह लोक उपमा प्रचलित है कि प्रेमी अपनी नायिका के मुख की तुलना पूर्ण चन्द्रमा से करते हैं।

शृंगार रस की दृष्टि से नौटंकी भी मनोरम सांग है। नौटंकी इतनी प्रचलित और प्रसिद्ध प्रेम कहानी है कि उत्तर प्रदेश के लोग तो अपने सभी नाटकों को नौटंकी शैली का ही नाम देते हैं। जब प्रेमी फूल सिंह नौटंकी के बागों की रखवाली करने वाली मालिन का मेहमान बन कर फूलों का हार बना कर मालिन को देता है तो अपनी प्रियतमा की कल्पना करके उसका निम्नलिखित पंक्तियों में ब्यान करता है:--

मैं आया था आड़ै ठहरण खातर
माणस मारणि वैरण खातर
नौटंकी के पहरण खातर हार बणाया बड़ै जोर का

माणस मारणि हरियाणा के युवकों की अपनी प्रेमिकाओं के सौंदर्य का वर्णन करने के लिये एक बलवती उपमा है। यह उपमा उन प्रेयसियों को दी जाती है जो इतनी सुन्दर हों कि उनका सम्पर्क और मिलन या तो असंभव हो या दुर्लभ।

फूल सिंह भी अपनी प्रेयसी केलिये मालिन को प्यार का सन्देश देता है और कितने उपयुक्त शब्दों में लखमी चन्द ने इसका वर्णन किया है:--

कहियो री उस नौटंकी गोरी नै, अपणे राजा की छोदवी
नै, एक आशिक रोवै था तेरी ध्यान नै
कद्य मुरगाई सी लरज्य डोलैगी
कद्य साजन कहकै बोलैगी
कद्य सी खोहलैगी धन माया की
बैरी नै, पाटैगी खबर ज्यटान नै

प्रेमी की कल्पना में प्रेयसी का चलना जल में तैरने वाली मुरगाई की तरह मनोहारी है। और प्रेमी का विश्वास इतना गहरा है कि वह प्रेयसी मिलन के अभाव में मौत की ही दूसरे दर्जे पर इच्छा करता है। परन्तु प्रकृति ने दोनों का मिलन संभव किया। फूल सिंह स्त्री वेश में अपनी प्रेमिका से हाथ मिलाता है तो स्पर्श पाकर नौटंकी अपने शरीर में अनोखे स्पन्दन का अनुभव करती है:--

आनन्द होण लगे काया में
ज्यब हाथ मिले हाथां में
मिसरी कैसी डली घुलण लगी आपस की बाता में।

ऐसा रोमांचकारी विवरण कालीदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' में उस समय देखने को मिलता है जब प्रेमी व प्रेयसी पहली बार एक दूसरे को मिलते हैं और संकोच के बांध तोड़ने की इच्छा वशीभूत होकर एक दूसरे को सामीप्य से जानते हैं।

लखमी चन्द ने दाम्पत्य जीवन का वर्णन भी बड़े सुन्दर ढंग से अपने सांगों में किया है । अपने सांग नल दमयन्ती में वे इसी परिपूर्णता से सांवले रंग के प्रियतम नल व बिजली रेखा की तरह गौरवर्णा दमयन्ती का वर्णन करते हैं जिस परिपूर्णता से अश्वघोष ने अपने नाटक "सौदरानन्द" में नन्द और सुन्दरी, कालिदास ने विक्रम और उर्वशी और वाल्मीकि ने सीता और राम की जोड़ी का वर्णन किया है :--

लज्जा सहित पकड़ के बस्तर गेर दई फुल माला
समझ के राजा नल के हाजर कर दिया जोबन बाला
जैसे जल के भरे बादल में बिजली
चमक चमक के धोरै
बायां हाथ पकड़ के होग्यी खड़ी पति के धोरै
पति परमेश्वर नै भगवान जाण कै
बन्धी धरम क डोरै

चन्दा सा मुख गोल बोल कै
मीठी चित्त नै चोरै ।
देवता रिषी सब भला भला कहैं
और भूप कहै करया चाला
लज्जा सहित पकड़ के बस्तर गेर दी फुल माला
समझ के राजा नल कै हाजर कर दिया जोबन बाला

प्रेयसी दमयन्ती अपने सांवले पति के पास उसी तरह शोभायमान है जिस प्रकार बादलों से घिरे हुए आसमान में बिजली का चमकना और चमक कर बिखरना शोभायमान प्रतीत होता है । दमयन्ती का गोल मुख और मृदु भाष सब के मन को मोह लेने वाला है । धर्म और प्रेम के बंधनों में बन्धे नल-दमयन्ती देवताओं को छोड़कर स्वयंवर में आने वाले सभी पुरुषों में ईर्ष्या का संचार करते हैं ।

लखमी चन्द ने प्रकृति से भी काफी प्रेरणा ली । वे अपने जीवन में कभी भी सागर तट पर न गये । फिर भी अपने सांग सेठ तारा चन्द ने सिंगापुर से भारत आने वाले जहाज पर नायिका धर्ममालकी और नायक चन्द्रगुप्त की जोड़ी का वर्णन कितनी गहनता से करते हैं :--

ब्याहली बहू नै ले के चल्या
चलता करया था जहाज
झम्याझम हो रही पाणी पै
बहू का था केले बरगा गात
झोंके लगैं थे पवन के साथ
कौण बात कह दे भला
ज्यब ईश्वर सारै काज
दया करै जिंदगी चाणी पै ।
वे तो बतलावैं थे कैसे
उनकी तो नजर मिलैथी ऐसे
जैसे अम्बर में करते किलोल
झगड़ रहे दो बाज तीसरी
ज्यान बिराणी पै ।

नायिका धर्ममालकी का शरीर केले की तरह लरजने वाला है । और समुद्र में चलने वाली हवा के झोंकों से आंदोलित है । सुन्दरता में धर्ममालकी सब तरह से सम्पूर्ण है । कवि परमात्मा से प्रार्थना करता है कि

उसकी नायिका को प्रकृति लम्बी आयु दे । लोक साहित्य में लोगों का यह विश्वास है कि सम्पूर्ण व्यक्ति बड़े चिरायु होते हैं और अपनी सम्पूर्णता के कारण वे प्रकृति या ईश्वर का हिस्सा बन जाते हैं।

प्रेमी और प्रेयसी का आपस में निहारने में वह एक-टकता और निरंतरता है जो आसामान में खेलने वाले दो बाजों में तीसरे शिकार किये जाने वाले पक्षी को निहारते हुए देखने को मिलती है। उर्दू साहित्य में प्रेमी और प्रेयसी की उपमा बाज और चिड़िया से दी जाती है जो इन पंक्तियों के सामने कितनी अधूरी और अपूर्ण है।

लखमी चन्द ने मानवीय स्वभाव के वर्णन में भी कोई चूक नहीं छोड़ी। नल एक हंस को पकड़ लेते हैं। और हंस को इस आश्वासन है पर छोड़ते हैं कि वह अपने जोड़े के साथ दमयन्ती के महलों में जाकर नल का प्रेम सन्देश दमयन्ती को पहुंचाएगें।एक हंस के मुख से लखमी चन्द अपने सांग की प्रेयसी का वर्णन इतने मनोहारी ढंग से करवाते हैं जिस की तुलना शायद मेघदूत में मेघ द्वारा यक्ष-प्रेयसी के वर्णन से ही की जा सकती है।

आवो रे हंसा
विदरभ देश
कुन्दन पुर नगरी चलें जी
चीज सैं वा दुनिया में अनमोली
हृदय में ग्यान शान की भोली,
जिसकी मिठी मिठी बोली
दिल पै पाप का लेश
चल दमयन्ती नै चल मिलें जी
आवो रे हंसा विदरभ देश

अपने सांग चन्द्र किरण में लखमी सिंघल द्वीप जजीरे में रहने वाली हूर चन्द्र किरण का किस अनुठी और सबल भाषा में वर्णन करते हैं : --

हूर का कंचनपुर सै गांव
सिंघल पुर जजीरे मैं
बेटी व नारायण सिंघ की सै
चालता सांस चमकता धड़ में
भरयां रस कैलै कैसी धड़ में
महल की जड़ में रात तमाम जा रही बाहर जखीरे में ।
खड़ी मेवा सब रंग की सै

हरियाणा के लोक साहित्य में धड़ में सांस चमकने की उपमा उस स्त्री को दी जाती है जो गौरवर्णी हो और जिसकी त्वचा इतनी पारदर्शक हो कि सांस लेने की प्रक्रिया का प्रभाव दर्शक को उसके शरीर पर नजर आ सके।

लखमी चन्द सुन्दरता केवल राजसिक विलास में पलने वाली नायिका में ही नहीं देखते बल्कि साधुओं की तरह साधारण और सादा जीवन व्यतीत करने वाली मीरा बाई सांग की नायिका मीरा में भी देखते हैं। जब महाराज उदयपुर के सिपाही प्रातःकाल अपने जनाने बाग में स्नान की तैयारी में खड़ी मीरा को निहारते हैं तो अपने हथियारों को भूल कर मीरा के सात्विक सौंदर्य के रसपान में खो जाते हैं। किस बारीकी और गहनता से लखमी चन्द अपनी रागनी में इस दृश्य को चित्रित करते हैं:--

देख कणै रूप उसका
शिकारी बाहका खा गये
भूल कै हथियार दोनों
मीरा काहणी देखण लाग्ये ।

तेजी में श्याम,
सुबह कैसा भान
शान्ति में चन्द्रमा कैसी शान
ज्यूं नैं लिबड़या करते सूरज भगवान
आज चाणचक ज्यूं नैं आग्यै ।

मीरा का मुख डूबते हुए सूरज की तेजी, शरदकालीन चन्द्रमा की शीतलता व उगने वाले सूरज की किरणों की कोमलता का मिलन-स्थल है। ऐसी उपमा अश्वघोष द्वारा अपनी नायिका सुन्दरी को दी गई उपमा से भी ज्यादा प्रभावशाली है :—

स्वे नैव रुपेण
विभूषिता हि भूषणानामपि
भूषणं सा

नायिकाओं के गुण, सौंदर्य और व्यक्तित्व की अनुभूति प्रेमियों को विरह काल में और भी गहराई से प्रभावित करती है। नायक चन्द्रगुप्त सांग 'सेठ तारा चन्द' में किस वेदना से अपनी प्रियतमा को याद करता है :—

दाम दिए सासू-सुसरे नैं
बमड़ी तलक संभाले
लत्ते कपड़े टूम ठेकरी सब पेटी में घाल्यै
सिघंल द्वीप की सोलह राशि
सरपां शीश मणि सैं
सीप में मोती, पाथर में हीरा
हीरे बीच कणी सैं ।
तेरा पाला रहया जीत में
म्हारी खता घणी सैं
उस धरम राज कै भी चोर तेरा
तू धर दिए खोल हवाले
सिघंल द्वीप .....

नायक अपनी नायिका को उसी प्रकार अमूल्य व सर्वोत्तम सुन्दरी के रूप में देखता है जिस प्रकार सांप के मस्तिष्क में अमूल्य मणि को दर्शक लोग देखते हैं। धर्ममाल की नायिका सीप के बीच मिलने वाले मोती पत्थर के बीच मिलने वाले हीरे और हीरे की शान उसके बीच मिलने वाली कणी के बराबर अमूल्य, सर्वश्रेष्ठ व अद्वितीय है। परन्तु विरह वेदना के भी कोई सीमा होती है। हमेशा के लिये मिलने वाला विरह जीवन में असहनीय आघात है। जब 'हीर रांझा' सांग में प्रेमी रांझे को पता चलता है कि उसकी प्रेमिका हीर को अक्खन ने विवाहिता के रूप में अपना लिया है तो प्रेमी को एक आत्मिक ठेस पहुंचती है। सांगी लछमी चन्द किस सबलता से इस आघात का वर्णन करते हैं :—

रै हुई बड़े गजब की बात
कर ग्या स्याल साहमणा शेर का

अर्थात् प्रेमी के लिये यह बड़े खेद की बात है कि गीदड़ शेर के सामने सफल हो गया और प्रेयसी हीर हमेशा के लिये जुदा हो गई। रांझे की इन भावनाओं का मार्मिक चित्रण इस रागिनी में विद्यमान है जो लछमी चन्द ने उर्दू व हरियाणवी भाषा के अनोखे मिश्रण से राग बहरेतवील में बनाई :

रै हीर चली अठ खेहड़या णैं
कुछ पाली नैं जतन बताती चली जा

तेरे डोले के आगै पसर गया परी
मनैं ठोकर ते ठुकराती चली जा
तेरे रोशै में भर कै दिखा दयूं गा मर कै
तेज खंजर चलाती चली जा सिर पर रकै
लादे मिट्टी के दाग जनाजे पै पैर धर कै
मरे पक्की कबर चिनाती चली जा ।

संक्षेप में लखमी चन्द ने अपनी प्रेम प्रधान कविताओं में अनन्य उपमाओं का प्रयोग किया, प्रेमी भावनाओं की सबल अभिव्यक्ति की ओर विरहवेदना के प्रसंगों को इस सीमा तक उभारा कि उन के सांगों को देखने वाले व्यक्ति सांग के दौरान पात्रों से एक रस होकर जीते हैं । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि लखमी चन्द हरियाणवी भाषा में उर्दू के गालिब, संस्कृत के कालीदास व अंग्रेजी भाषा के कीट्स हैं।

जिस प्रकार लखमी चन्द प्रेम रस कविता के महान कवि थे, जीवन दर्शन और सामाजिक मूल्यों पर आधारित कविता में भी वे इतने ही महान थे। ज्यों ज्यों लखमी चन्द को जीवन की गंभीरता और परिपक्वता का आभास हुआ त्यों-त्यों संस्कृत कवि भर्तरी हरी की तरह लखमी चन्द ने भी सामाजिक मूल्यों को अपनी कविता में प्राथमिकता देनी आरम्भ की । इस प्रकार की कविता से ओत-प्रोत उन के सांगों के नाम हैं :—हरिश्चन्द्र मदनावत, सत्यवान सावित्री, द्रोपदी चीर, कीचक विराट परब, मीराबाई, सेठ तारा चन्द, भूप-पुरंजन, शाही लकड़हारा, सरदार चाप सिंह और पूर्ण मल इत्यादि। इन सांगों में भारतीय जन जीवन के मूल्यों व हरियाणा के लोक जीवन की परम्पराओं की झलक देखने को मिलती है । अपने सांग में हरिश्चन्द्र मदनावत ने पति पत्नी के अटूट प्रेम, कर्त्तव्य परायणता, स्वामी भक्ति और निष्काम कर्म के दर्शन को बड़ी गहराई से लखमी चन्द ने चित्रित किया। हरिश्चन्द्र पानी का घड़ा उठवाने के लिये तालाब पर प्रतीक्षा कर रहे, इतने में मदनावत भी तालाब पर आती है तो किस सहजता से लखमी चन्द पति पत्नी के भाव प्रकट करते हैं :—

दया करी हर ने दोनों पर
म्यूं दरशन पावन की
कद का देखूं वाट घाट पै
मानस के आवण की ।

परन्तु मदनावत भी मर्यादा में बंधी हुई है पर पति पर की इच्छा के उपरांत भी उन्हें घड़ा नहीं उठवा सकती

जब रानी मृतक पुत्र को देख कर बागों में रोती है तो माली पूछता है कि रानी किस कारण रुदन मचा रही है ? रानी बताती है कि उसके पास पुत्र को दफनाने के लिये कोई साधन नहीं है। जो बात भगवान कृष्ण ने सारी गीता में अर्जुन को कहीं वही बात लखमी चन्द माली के मुंह से ही रानी को इन पंक्तियों में कहलवाते हैं :—

तामस अहंकार की काया
माया के बीच घिरी
कहे बेटा किस न्है या खाली लाशधरी

हरिश्चन्द्र भी पुत्र मृत्यु से कम दुखी नहीं हैं परन्तु अपनी पत्नी को दिलासा दिलाने के लिये कितनी ऊंची पाय की बात हरिश्चन्द्र राणी को कहते हैं :—

वो सोवणियां फेर जाग न्यां
जिसकी धुर तै टूटीरी को न्या
जिसकी टूट लई वरगाह तै
उस टूटीरी कै बूटी कोन्या

अर्थात् वही लोग मरते हैं जिनका भगवान से सम्बन्ध टूट जाता है। सांसारिक बिछोह तो भगवान भक्ति की शक्ति से सहन किए जा सकते हैं।

हरिश्चन्द्र मदनावत सांग इतना लोकप्रिय था कि हजारों लोग आंखों में आंसू भर कर आत्मास्थ होकर इस सांग को देखते थे।

एक बार लख्मी चन्द लजवाना गांव में सांग देखने गए। वहां एक सूबेदार जो आर्य समाजी विचारों में विश्वास रखते थे, ने सांग करने की मनाही कर दी। लख्मी चन्द उसके बाद घर गए और आश्वासन दिलाया कि यदि उनके सांग में एक बात भी वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध हो और भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल हो तो वह सांग करना छोड़ देंगे। सूबेदार ने आश्वासन के बाद राजा हरिश्चन्द्र सांग देखा और हमेशा के लिए लख्मी चन्द के भक्त हो गए।

मातृ प्रेम, पितृ सेवा और सामाजिक उत्तरदायित्व के उद्धरण भी काफी मात्रा में लख्मी चन्द के सांगों में मिलते हैं। सांग नौटंकी में जब भूप सिंह अपने छोटे भाई फूल सिंह से नाराजगी का कारण पूछते हैं तो कितना सहज आक्षेप इन पंक्तियों में फूल सिंह मातृ प्रेम के गिरते हुए मूल्यों को आधार बना कर करता है:--

लाड़ प्यार मिट्टी मैं, मिल ग्ये,
इब के पुचकारे से रै
भुप सिंह भाई तेरी बहू मनै ताना दे रही सै
लक्ष्मण की ज्यूं बण्या फिरूं था भाई का हितकारी
भाई कैसी चीज जगत में और नहीं सै प्यारी
राम लखन और भरत भरत नै जाणै दुनिया सारी
राजतिलक की गेंद बणा कै भरत नै ठोकर मारी
पर आज काहल्य भाई कै सिर नै खुद भाई तारै सै।

मित्रता के मूल्यों को भी लख्मी चन्द ने अपने सांगों में बड़ी खूबी से उभारा। हरियाणा प्रदेश में मित्रता के सम्बन्ध को पिता-पुत्र, पति-पत्नी और भाई-बहिन के सम्बन्ध ! से भी बड़ा माना है। जब सेठ तारा चन्द और सेठ मनसा राम 12 वर्ष के बिछोह के बाद आपस में मिलते हैं तो लख्मी चन्द उस मिलन का मुकाबला भक्त और भगवान के मिलने के उल्लास से करते हैं:--

मिले कौली भरद् के सेठ जी
आज बाहरा बरस मैं फिर मिल्ये
कृष्ण सुदामा भगत का आपस मैं गहरा प्यार था
मन मिले और तन मिले फिर कर मिले धाड्य सिर मिले।
मानसिंह सतगुर की करय सेवा लखमी चंद तू
सतगूर सहायी हुआ करै
प्यारे मिले जैसे हर मिले

वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति में भी लख्मी चन्द ने बड़े मार्मिक शब्दों का प्रयोग किया है। जब शाही लकड़हारे की मां उसे आठ वर्ष की आयु में ही छोड़ कर मर जाती है तो बच्चा अपनी मां को याद करके इन हृदय स्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति करता है:--

माणस की के पार बसावै
ज्यब हर की माया फिर ग्यी
के जीवै ऐकले का बण मैं
बालक की मां मर ग्यी ।

सांग सेठ तारा चन्द में जब धर्मपालकी अपनी माँ से विदाई लेती है तो कितने सुन्दर शब्दों में लखमी चन्द पुत्री के माता के प्रति आदर भाव की अभिव्यक्त करते हैं :--

ए माँ राजी होके घाल्य मनै,
तेरी बेटी नै तेरे चरण लिये
मनैं सब लाग दिया दंगा रौला
पति मिल्या शान श्याम को भोला
अड़े मौज उड़ाई सोलह साल मनैं
तेरे बालक पन मैं दूध पिए

[illegible] माता पिता का अपनी सन्तान के ऊपर अन्धविश्वास भी भारतीय संस्कृति का और विशेषकर हरियाणा की संस्कृति का महत्वपूर्ण तथ्य रहा है। सांग मीराबाई में पिता पुत्री मीरा बाई को दीवार की परछाई से ढके हुए और भगवान की लौ में लीन पुत्री के मुख को देखकर कितने सुन्दर उद्गार में प्रकट करता है :--

एक ठिकाणे मन चित्त करके
बेटी का विश्वास देखया
मन्दिर में नहीं दीवार अन्धेरा
ईश्वर का प्रकाश देखया

सहेलियों का आपसी प्रेम भी हरियाणा के लोक जीवन की एक मनोरम कहानी है। इसी सांग में किस खूबी से लखमी चन्द मीरा की सहेली के उसके प्रति उद्गार प्रकट करते हैं :--

आया करती याद जिब थी मैं पिया जी के देश
मीरा तेरे नाम नें मैं रटूं थी हमेश
लखमी चन्द रट हरि नाम नैं
पति संग मिल कै जा सुरग धाम नैं
पति संग मिल कै जा सुरग धाम नैं
म्हारा राम ने मिलाया जोड़ा
ज्यूं पार्वती गैल महेश

पत्नी के मन में पति के लिए कितनी श्रद्धा है कि वह अपने पति के संग को ही स्वर्ग प्राप्ति का साधन मानती है और अपनी जोड़ी को शिव-पार्वती की तुलना देती है ।

पति भक्ति भी जगह जगह पर लखमी चन्द की कविता में उदधृत मिलती है। सांग चाप सिंह में जब प्रियतमा अपने पति के द्वारा शाहजहाँ की सेवा में ड्यूटी खत्म होने की बात सुनती है तो पति के विरह के अभाव से दुःखी होकर कितने भावुक ढंग से पति सम्पर्क की महत्ता का वर्णन करती है :--

जी क्यूं कर लागैगा अकेली का
पिया तूं जासैं
मैं फिकर करूंगी दिन रात
तेरे बिन के दीखै हो मनैं इस घर मैं

तनैं मा मेरी आच्छी लागी टहल
बता के करण लग्या मेरी गैल
तू दीवा महल हवेली का देखें था सै
तेल ना जलै बालम
अन्धेरा मत करिए ज्यांगी डर मैं

अर्थात् पति सम्पर्क पत्नी के जीवन में वही स्थान रखता है जो रात के समय दीपक महल में ।

लक्ष्मी चन्द ने जीवन की आर्थिक परिस्थितियों को भी अपने सांगों में बड़ी महत्ता दी है। राजकुमारी बीणा का पति शाही लकड़हारा अपनी विवाहिता पत्नी के सामने कितनी हीन भावना प्रकट करता है :--

गरीब आदमी निर्धन बन्दा
धन पैसे बिन खाली
आगै जाणं के के दुख होगा
निर्धन के संग चाली ।

अपने गीतो में लक्ष्मी चन्द ने हरियाणा प्रदेश में प्रचलित सोण-कसोण (शकुन-अपशकुन) का भी विस्तार से जिक्र किया है। जब शाही लकड़हारा कोमलांगणी बीणा को छोड़ कर माधोपुर शहर लकड़ी बेचने जाता है, इस प्रसंग में लक्ष्मी चन्द कहते हैं :--

तज फूल झड़ी नैं
शाही टोल्यी, झट माधोपुर नैं चाल्य पड्या
बा में बिषियर था बे कर्ज
बाहणें दो मृग दिखावैं बे तर्ज
गर्ज पड़ी नैं लकड़ी ढो ल्यी
रस्ता हर नैं चाल्य पड्या

समाज के दूसरे मूल्यों को भी लक्ष्मी चन्द ने कविताओं का आधार बनाकर लोगो की याद में उन्हें अमर बना दिया। गृहस्थ जीवन में पतिव्रता धर्म और बाहरी जीवन में सिपाही की कर्तव्यपरायणता दोनों मूल्य हरियाणा जीवन में उच्च कोटि का स्थान रखते हैं। जब बहादुर चाप छुट्टी बिता कर बादशाह की खोज में हाजर होने की सोचते हैं तो इस प्रसंग में लक्ष्मी चन्द किस खूबी से प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष को उभारते हैं :--

चाप सिंह नै हाजिर हो ना
मन में डरण लाग्या
ब्याही काहणी का फिकर करन लाग्या

सिपाही की पत्नी भी समाज में कितने भारी सम्मान की पात्र मानी जाती है और वह भी वेश्या के मुंह से । जब शेरखान पठान मुजरा करने वाली वेश्याओं के पास चाप सिंह की पत्नी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की चाह से सहायता मांगने जाता है तो वेश्या कहती है :--

कर खामोश होश कर दिल में
डूबैंगा बिन पाणी
नाम लेन तैं धरती लरजे
रजपूतों की रानी ।

अर्थात वीर सिपाही की पत्नी का यदि मन से भी बुरा चिन्तन किया जाय तो धरती कांप उठती है। लख्मी चन्द ने हरियाणा प्रदेश के आतिथ्य सत्कार को भी बड़े ऊंचे पाय के पदों में अभिव्यक्त किया है। जब नौटंकी सांग में फूल सिंह मालिन से नौटंकी के बाग में रात्रि विश्राम की कामना करता है और मालिन मना कर देती है तो निम्नलिखित रागिनी में नायक अतिथि धर्म की याद मालिन को दिलाता है। संक्षेप में सामाजिक जीवन और लोक संस्कृति का कोई ऐसा अंश नहीं जो लख्मी चन्द के गीतों से अछूता हो । मेरे मित्र चौधरी रामनारायण सिंह जो 1940-42 में रामजस कालिज में विद्यार्थी थे, ने मुझे बताया कि उस समय फ़ारसी के विभाग अध्यक्ष जो हरियाणा निवासी थे गालिब, बहादुर, शाहज़फ़र और इकबाल आदि आला शायरों की कविताओं का पाठन करवाते हुए उनका मुकाबला-लख्मी चन्द की रागनियों से करते थे । यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि लख्मी चन्द ने लोक-जीवन को उसी स्पष्टतः और पारदर्शकता से हरियाणवी भाषा में चित्रित किया है। जिस सुन्दरता से बाण ने हर्ष--कालीन भारत को कालीदास ने अपने समय के सामाजिक जीवन को और भर्तरी हरि ने नीति शतक में अपने समय के नैतिक मूल्यों को अभिव्यक्त किया ।

भक्ति रस प्रधान कविता

मेरे विचार में किसी भी महान कलाकार का जीवन गहन चिन्तन और भावों के बाहुल्य से परिपूर्ण होता है। जब भावनाएं प्रेयसी के प्रति आसक्त होती हैं तो प्रेम रस की कविता का उद्भव होता है। जब यही भावनाएं कलाकार को भगवान में निरत करती है तो अध्यात्मवाद के विचारों का जन्म होता है । लख्मी चन्द में भी इसी प्रकार राजा भर्तरी हरि की तरह जीवन के आखिरी दिनों में विराग भावना का उद्भव हुआ और नौटंकी और पदमावत् का रसिक कवि सूफ़ीवाद का कवि बन गया। सन् 1943 में लख्मी चन्द ने मृत्यु से पहले अपने आखिरी चेले जहूर मीर से ये भजन सुने :--

1. शिवजी के कद्य मन गुण गावैगा
   मन ज्या मन बेईमान पछतावेगा

2. कृष्ण मुरारी म्हारी बेदना नै मेटय
   अरज करूं सूं थारें पायं कै में लेट

इन दोनों भजनों में लख्मी चन्द ने इस जीवन की क्षणभंगुरता, अज्ञानता व सीमितताओं का वर्णन किया है और भगवान से प्रार्थना की है कि वे उसका उद्धार करें । किसी दूसरे भजन में लख्मी चन्द ने मनुष्य को ताड़ना देकर उसे भगवान की भक्ति की याद दिलाई है :--

मन मूरख तेरी आंख्या खुलेंगी
पूंजी सकल छली ज्यागी
काल रूप की चक्की के मैं
जान की दाल दली जागी

कुछ गीतों में तो लख्मी चन्द ने प्रेम, भक्ति और विरह का इतना अनोखा समन्वय प्रस्तुत किया है जिसका उदाहरण आसानी से किसी दूसरे कवि की कविता में नहीं मिलता। मीरा भगवान कृष्ण की मूर्ति को वास्तविक भगवान समझ कर दूध पिलाना चाहती है और मूर्ति के दूध न पीने पर कित दया भाव से और कितने अनोखे विशेषणों से भगवान कृष्ण को रिझाने की कोशिश करती है :--

थारें रटे तै इस दुनिया के पाप नष्ट हो सारे
दया कर मुझ दासी पर कम दूध पियो, पिया प्यारे

इस गीत में मीरा कहती है कि उसकी दस अंगुलियां दस दिशाएं, पूजा, सामग्री, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, प्रकाश, अन्धेरा और विश्व में सब चीजों के कारण रूप उसके प्रियतम भगवान कृष्ण ही हैं। लक्ष्मी चन्द आखिरी पंक्तियों में प्रार्थना करते हैं कि भगवान मीरा के साथ गुरु मान सिंह के अज्ञान शिष्य लक्ष्मी चन्द की भी टेर सुनो।

लक्ष्मी चन्द के इस भजन को जो उन्होंने कभी मंच पर नहीं गाया और जो मुझे उनके सुपुत्र श्री तुले राम से सुनने को मिला, मैं तो वैराग्य, विरक्ति और जीवन की क्षणभंगुरता का अनुभव पराकाष्ठा की सीमा तक श्रोता के हृदय में उतर आता है--

आवागौण रही लाग्य जगत की
रात्य मरया कोए दिन मर ग्या
बाहर मरया कोए भीतर मर ग्या
घरां मरया कोए जंग मर ग्या।

इस भजन की एक दो पंक्तियां चिरस्मरणीय हैं :—

रामचन्द्र मर्याद बांध कै
बिना लड़ाई जंग मर ग्या
देई रोवती छोड़ गोपणी
गोकुल में खुद भगवन मर ग्या
कुछ दिन के में सुन लियो लोगों
लक्ष्मी चन्द ब्राह्मण् मर ग्या।

जब भगवान कृष्ण भी भौतिक रूप से गोपणियों को रोता छोड़ कर लुप्त हो गए और मर्यादा पुरुषोतम भगवान् रामचन्द्र भी बिना लड़ाई के लंका जीतने के बाद दुनिया से लुप्त हो गए तो हम नश्वर लोगों का क्या स्थायीत्व है। छोटी छोटी विपत्तियों से आन्दोलित हो जाने वाले आधुनिक लोगों के लिए यह आत्मबल देने वाली शिक्षा है। यदि जीवन को क्षणभंगुर माना जाए और बिना किसी दुविधा या उद्वेग के जिया जाये तो संसार के सब मानसिक बन्धन जीते जा सकते हैं। लक्ष्मी चन्द को भी इस क्षणभंगुरता का आभास था। इस लिए वे 43 साल की अल्पायु में संसार को वह योगदान देकर गए जो अपने क्षेत्र में अद्वितीय है और जिसकी अपेक्षा अंग्रेजी कवि कीट्स और अन्धे कवि मिल्टन जैसी महान आत्माओं से की जा सकती है।

हरियाणा के तीज त्यौहार

—राजेन्द्र—

किसी भी देश-प्रदेश के मेले और त्यौहार वहां के जन-जीवन की जी-जान होते हैं। मेलों और त्यौहारों के रूप में देश की आत्मा बोलती है और जनता की हार्दिक भावनाएं मुखरित होती हैं। वास्तव में भारत की एकता को स्थिर और अक्षुण्ण रखने में हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं का सब से अधिक योगदान रहा है। क्योंकि राजनीतिक स्थितियां तो प्रायः समय के साथ बदलती रहती हैं, लेकिन जन-जीवन को आंदोलित और प्रेरित करने वाले हमारे त्यौहारों ने कश्मीर से कन्याकुमारी और कामरूप से काठियावाड़ तक सारे देश को एक अच्छेद्य एकता प्रदान की है। इस सम्बन्ध में हरियाणा प्रदेश का हमारे राष्ट्रीय जीवन में विशेष स्थान है। क्योंकि यहां के कुछ मेले ऐसे हैं, जिनको यश और कीर्ति देश-भर में फैली हुई है। सूर्य-ग्रहण के अवसर पर देश के कोने-कोने से लाखों यात्री धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र की पुण्य भूमि पर एकत्रित होते हैं, सरोवरों में स्नान करते हैं और अपनी-अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार धर्मानुष्ठान करते हैं। वैसे भी श्रीमद्भगवद्गीता की जन्म-भूमि होने के नाते कुरुक्षेत्र की कीर्ति संसार-भर में फैली हुई है। इसी प्रकार कार्तिक पूर्णिमा के उपलक्ष्य में गढ़ मुक्तेश्वर पर जो गंगा स्नान होता है, वह हरियाणा का ही एक मुख्य पर्व है, यद्यपि गढ़ मुक्तेश्वर हरियाणा की सीमा से बाहर उत्तर प्रदेश जिला मेरठ में है। पुराने वक्तों में यह मेला तो दस-दस दिन तक चलता था, क्योंकि किसान सप्ताह दो सप्ताह पहले ही अपनी-अपनी बैलगाड़ियां जोड़ कर और सारे परिवार को साथ लेकर गंगा स्नान का पुण्य कमाने और मेले का आनन्द मनाने के लिये निकल पड़ते। रास्ते में यमुना मैया के दर्शन भी हो जाते। इस प्रकार इस यात्रा का पुण्य दुगना हो जाता।

नारनौल से कालका और तोशाम से यमुनानगर तक लगभग 50 हज़ार वर्ग किलोमीटर के इस हरियाणा प्रदेश में चप्पे-चप्पे पर शिवालय, देवस्थान, गुरुद्वारे, गूगे की मढ़ी और फकीरों के मकबरे बने हुए हैं। साल का कोई सप्ताह या मौसम का रंग किसी न किसी मेले या त्यौहार के बगैर नहीं आता। महेन्द्रगढ़ जिला में नारनौल के समीप ढोसी पहाड़ी पर सोमवती अमावस्या को जो मेला लगता है वह इस इलाके में सब से बड़ा माना जाता है। यहां च्यवन ऋषि की स्मृति में एक तीर्थ भी बना हुआ है। गुड़गांव जिला में इस्लामपुर के स्थान पर भादों मास के नौवें दिन गूगा नौमी का मेला होता है। गूगापीर, हिन्दुओं और मुसलमानों सब का समान रूप से ईष्ट है। स्त्रियों का प्यारा त्यौहार 'तीज' यूं तो सब जगह मनाया जाता है, लेकिन गुड़गांव जिला में पुथला नामक गांव में श्रावण सुदी तीज का पर्व बड़े समारोह से मनाया जाता है। जिला हिसार में तोशाम में कार्तिक और वैसाख की पूर्णिमा के मेले, भिवानी में श्री कृष्ण और दुर्गा जन्माष्टमियों के समारोह देखने के लिये जनता दूर-दूर से खिंची आती है। हिसार की टैक्सटाइल मिल में दशहरा का त्यौहार निराली ही शान से मनाया जाता है। जींद जिला के भूतेश्वर के मेले मशहूर हैं। रोहतक के अस्थल बोहर के मठ में फरवरी-मार्च के दिनों बाबा मस्तनाथ का मेला मनाया जाता है। बोहर मठ नाथ-सम्प्रदाय के सन्यासियों की गद्दी है, जिसके श्रद्धालु हरियाणा और हरियाणा से आगे राजस्थान के इलाकों में फैले हुये हैं। रोहतक की तीज भी बहुत मशहूर है। कुरुक्षेत्र जिले में पेहोवा का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। मार्च के महीने में यहां एक बड़ा भारी मेला लगता है। इस मेले में सरोवरों में स्नान और पितरों की सद्गति के लिये पिण्डदान जैसे बड़े-बड़े अनुष्ठान होते हैं। अम्बाला जिला के मेलों में भाद्रपद के महीने की बावन द्वादशी का मेला बहुत मशहूर है। यह मेला अम्बाला में अगस्त-सितम्बर के महीनों में होता है। जगाधरी में अक्तूबर के महीने की पूर्णिमा को कपाल मोचन का मेला होता है। चण्डीगढ़ के नज़दीक मनसा देवी का मशहूर मन्दिर है, जहां अप्रैल में दुर्गाष्टमी मनाई जाती है। काली माई के नाम पर ही तो कालका शहर बसा है, इसलिये कालका में काली मन्दिर में कालीमाई का मेला मनाया जाता है।

हरियाणा में सदा ही शक्ति की पूजा होती रही है और इसके गांव-गांव में शिव और देवी के मन्दिर मिलते हैं। अम्बाला जिला भी इस का अपवाद नहीं है। जिला अम्बाला में मनसा देवी का, कालका में काली

देवी और तिलोकपुर (बड़ा) में अप्रैल में देवी के नवरात्रों में मेले लगते हैं। इनमें दूर-दूर से लोग अपनी मन्नतों के पूरा होने पर देवी पर चढ़ावा चढ़ाने के लिये आते हैं। बहुत-से लोग देवी पर चांदी के छत्र भी चढ़ाते हैं। कई लोग सारा रास्ता साष्टांग रेंग कर आते हैं।

जगाधरी में बिलासपुर के नजदीक कपाल मोचन एक पवित्र तीर्थ है। यहां दो तालाब हैं, एक ऋण मोचन और दूसरा कपाल मोचन। कहते हैं कि जब परशुराम ने अपनी माता का वध अपने पिता के कहने से किया तो परशुराम के हाथ से उस की माता का सिर चिपक गया और वह किसी प्रकार भी हाथ से अलग नहीं हुआ। उस समय परशुराम तीर्थ यात्रा पर निकले और जहां हाथ से वह सिर छूटा वहां कपाल मोचन तीर्थ बना। इस तीर्थ पर अक्तूबर-नवम्बर में मेला लगता है। यहां हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश से लोग मेले में आते हैं।

अम्बाला के नजदीक पंजोखरा में सावन मास में तीजों का मेला लगता है। यह मुख्यत: स्त्रियों का मेला है। यहां पेड़-पेड़ में झूले डाले जाते हैं, उन पर स्त्रियां झूलती हैं और गीत गाती हैं।

सढौरा में शाह कमीस का मेला और अम्बाला शहर में तक्वल शाह का मेला भी मशहूर है। इन मेलों पर दूर-दूर से मुसलमान आते हैं। मेले पर कवालियों की महफल जमती है, मुशायरे होते हैं और मजार पर चादरें चढ़ाई जाती हैं।

अम्बाला शहर का बावन द्वादशी का मेला बहुत दूर-दूर तक मशहूर है। यह मेला तीन दिन चलता है। भगवान् बावन एवं श्री कृष्ण की मूर्तियों के हिंडोलों के जलूस निकाले जाते हैं और उन को तालाब में तैराया जाता है।

इस के इलावा जगह-जगह गूगा नवमी, दशहरा आदि के मेले भी लगते हैं। अम्बाला छावनी का दशहरा काफ़ी मशहूर है।

हरियाणा में पाकिस्तान से आए हुए भाइयों ने इस प्रदेश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में बड़ी भूमिका निभाई है। इसलिये यहां कुछ मेलों का जिक्र उचित होगा, जो पंजाब में भी मनाए जाते हैं, जैसे चण्डीगढ़ के नजदीक पिंजौर उद्यान में बैशाखी का मेला। यमुनानगर और कुरुक्षेत्र की बैशाखी भी मशहूर है। लोहड़ी, बसन्त और होली के त्यौहार भी पंजाबी ढंग से मनाए जाते हैं। रोहतक के नजदीक लाखन माजरा में मंजी साहब का गुरुद्वारा है, जहां होला मुहल्ला का त्यौहार बड़ी शान से मनाया जाता है।

इसी तरह जिला सिरसा में श्री जीवन नगर का प्रसिद्ध गांव, जहां नामधारी सम्प्रदाय के गुरु महाराज रहते हैं, बसन्त के दिन विशेषतया और अन्य अवसरों पर साधारणतया यहां समारोह होते हैं, जिन में दूर-दूर से आकर नामधारी सम्मिलित होते हैं। मुसलमान भाइयों के भी करनाल, गुड़गांव और हिसार आदि जिलों में विशेष स्थान हैं, जहां 'उर्स' होते हैं और उत्तर प्रदेश और पाकिस्तान से यात्री आते हैं। हांसी जिला हिसार में चहारकुतुब एवं पानीपत जिला करनाल में बुअली शाह कलन्दर का मकबरा है।

जिला करनाल में शेख चेहली का मकबरा ऐसा स्थान है, जहां मुसलमान भाई इकट्ठे होते हैं। मेलों और उत्सवों का हमारे जीवन में विशेष स्थान है, इसलिये कई ऐसे मेले भी हैं, जिनका संबंध किसी धार्मिक या सांस्कृतिक परम्परा से तो नहीं होता, लेकिन फिर भी उनका एक अपना ही महत्व है और वे मेले हैं पशु मेले। क्योंकि हरियाणा अपने पशुधन के लिये प्रसिद्ध है। हिसार और रोहतक जिलों में बड़े-बड़े पशु मेले लगते हैं। रोहतक जिला में जहाजगढ़ के स्थान पर, जो मेला लगता है वह बहुत मशहूर हो गया है, क्योंकि अंग्रेजी राज के दिनों में वायसराय लार्ड लिनलिथगो भी इस मेले को देखने आए थे। इन पशु मेलों में बड़ी रौनक होती है और पशुओं के क्रय-विक्रय के साथ खेलकूद, मनोरंजन और दूसरे उपक्रम वैसे ही चलते हैं, जो साधारण मेलों में होते हैं। हरियाणा का किसान अपने पशुओं से प्यार करता है, सभी तो ये मेले मनाए जाते हैं। और यही कारण है कि हरियाणा में कार्तिक शुक्लाष्टमी को गोपाष्टमी का दिन बड़े उत्साह से मनाया जाता है। उस दिन गौ के मस्तक पर तिलक लगाकर माला से उसकी पूजा की जाती है।

हरियाणा में कई ऐसे त्यौहार भी हैं, जो मनाए तो बड़े उत्साह के साथ जाते हैं किन्तु मेले का रूप नहीं होते। जैसे दीवाली, शिवरात्रि, भैयादूज, सलोमण अथवा रक्षाबन्धन इत्यादि। यह पर्व घर-घर मनाए जाते हैं। ऐसे भी

त्यौहार हैं, जिन्हें प्राय: औरतें ही मनाती हैं, जैसे करवा चौथ, निर्जला एकादशी, होई और कार्तिक शुक्ला एकादशी की दे अठणी ग्यादस ।

हरियाणा की होली में त्यौहार और मेला दोनों का समावेश है, क्योंकि होली का हुड़दंग और हास-परिहास कई-कई दिन तक चलता रहता है । होली पूर्णत: एक लोकतांत्रिक त्यौहार है । इसमें लिंग, जाति, रंग और अन्य सब प्रकार के भेद-भाव भुला दिये जाते हैं । स्त्री और पुरुष मिल कर होली खेलते हैं, फिर भी जो कुछ होता है मर्यादा और सीमा के अन्दर रह कर ही होता है। यही तो इस त्यौहार की सुन्दरता है कि किसी प्रकार के वैमनस्य की गुंजाइश ही नहीं रह जाती है। धर्म-प्राण स्त्री और पुरुष इस अवसर पर भक्त प्रह्लाद की अमर गाथा का स्मरण करते हैं। होली के मौके पर फाग के गीतों की मस्ती और ढोल ताशों की गूंज सब के मन को मोह लेती है ।

हरियाणा के मेलों में लोक-कला, नृत्य, संगीत, नाटक तथा सांगों आदि को प्रोत्साहन मिलता है । जगह-जगह आप को लोग निहालदे की विरह कहानी एवं आल्हा ऊदल की बहादुरी के किस्से गा-गा कर जनता को सुनाते मिलेंगे । भजनीक और सांग वाले, लोगों का मनोरंजन भी करते हैं और जनता की कलात्मक सौंदर्य के लिये प्यास को भी शांत करते हैं । कहीं फाग और कहीं धमाल का नृत्य होता है। इसी तरह स्त्रियों के भी विशेष नृत्य होते हैं, जैसे लूर नृत्य और गनगौर, जो जांबी गिद्दे से बहुत मिलता है। गूगा की पूजा के लिये भी कई नृत्य होते हैं। जब से देश स्वतन्त्र हुआ है, हमारे दो राष्ट्रीय पर्व गणतन्त्र दिवस और स्वतन्त्रता दिवस भी दो बड़े मेले बन गये हैं । इनका अपना ही एक स्थान है। ये साधारण मेलों की गणना में नहीं आते, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन दो मेलों ने लोकमानस को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इतना प्रभावित किया है कि साधारण मेलों को मनाते समय लोग अपने उल्लास को कोई न कोई राष्ट्रीय अथवा राजनीतिक पुट दे ही लेते हैं। यह अच्छी बात है, क्योंकि इस से यह स्पष्ट है कि हम धर्म और वास्तविक जीवन में किसी प्रकार की कृत्रिम अथवा अप्राकृतिक पृथक्ता नहीं मानते और हम समझते हैं कि सच्चा धर्म वही है, जो निरन्तर हमें देश और राष्ट्र के लिये हमारे कर्त्तव्य का स्मरण कराता रहे ।

हरियाणा के मेलों और त्यौहारों के इस संक्षिप्त से दिग्दर्शन के पश्चात् हम यह अनुभव करते हैं कि इस बात में कितनी बड़ी सच्चाई थी कि जब बीते जमाने में किसी कलाकार ने यहां के लोगों को हंसते-गाते, नाचते-कूदते, होली मनाते, गंगा-स्नान करते और बड़े मन्दिरों में पूजा करते देखकर यह उद्‌गार प्रकट किए थे . . . देशोऽस्ति हरियाणाख्य: पृथिव्यां स्वर्गसन्निभ:—पृथ्वी पर हरियाणा के नाम का, जो देश है, वह स्वर्ग के समान है।

कुरुक्षेत्र का एक पण्डा

साहित्य

पंडा अपने यजमान
के साथ

महिषासुर मर्दिनी →
[यादवेन्द्र उद्यान पिन्जौर
स्थित एक प्राचीन प्रतिमा]

कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के मेले का एक दृश्य

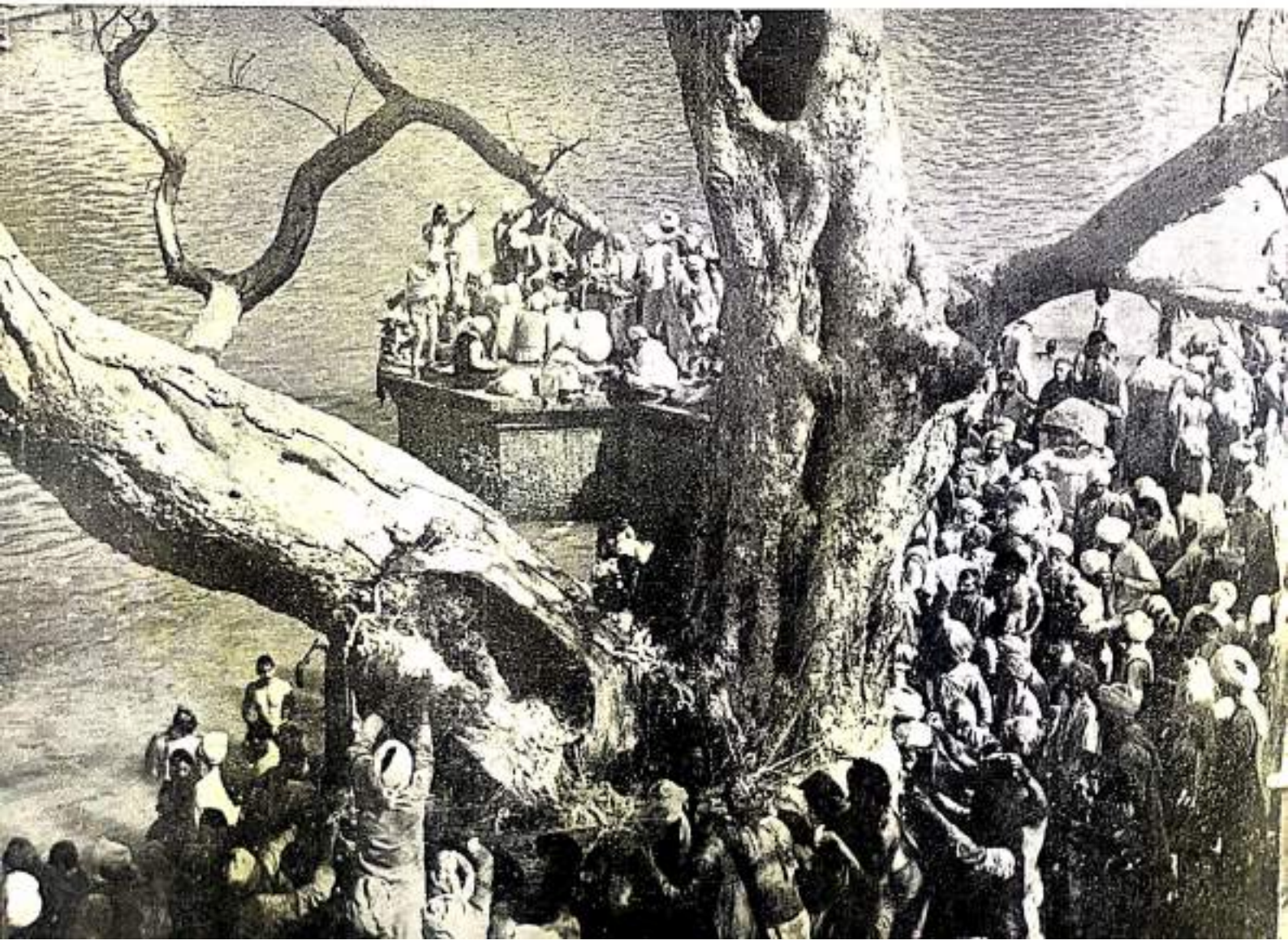

भगवान
शिव मंदिर
[मान्यता है कि
यहां पर महाभारत के युद्ध
से पूर्व भगवान
श्री कृष्ण ने
शिव जी का
पूजन किया था]

मंदिरों-सरोवरों की नगरी—कुरुक्षेत्र

सोहना
का
गर्म
पानी
का चश्मा

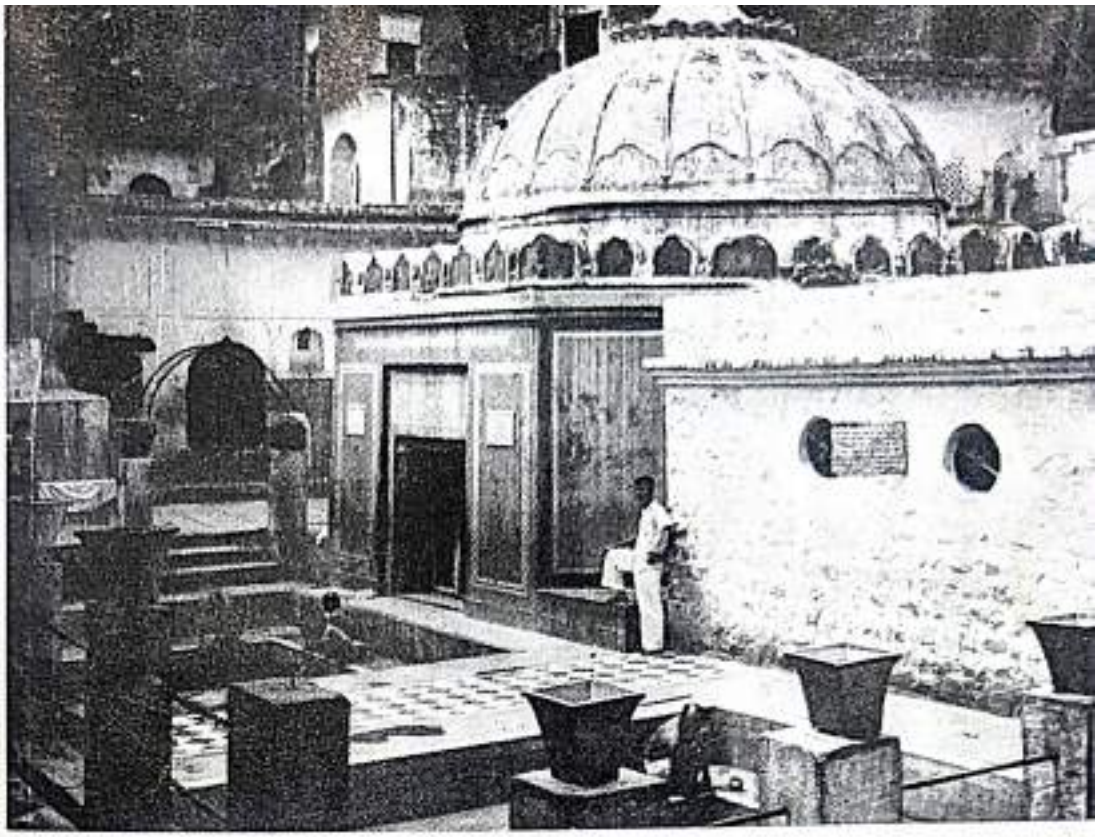

सन्निहित सरोवर कुरुक्षेत्र ↓

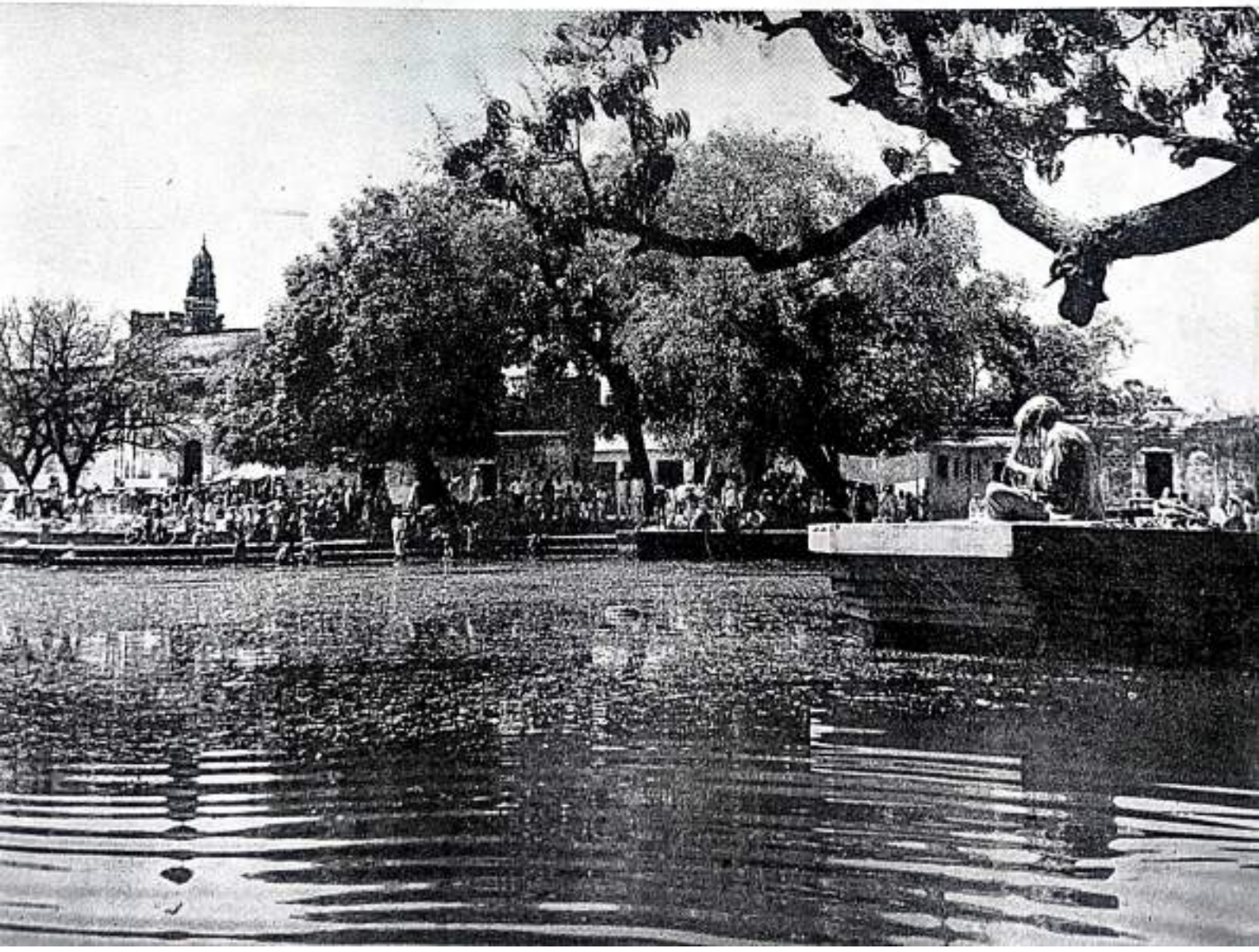

एक ग्रामीण
बाला

मोरनी की पहाड़ियों के सीढ़ीनुमां खेत

रस्सी बनाता एक देहाती

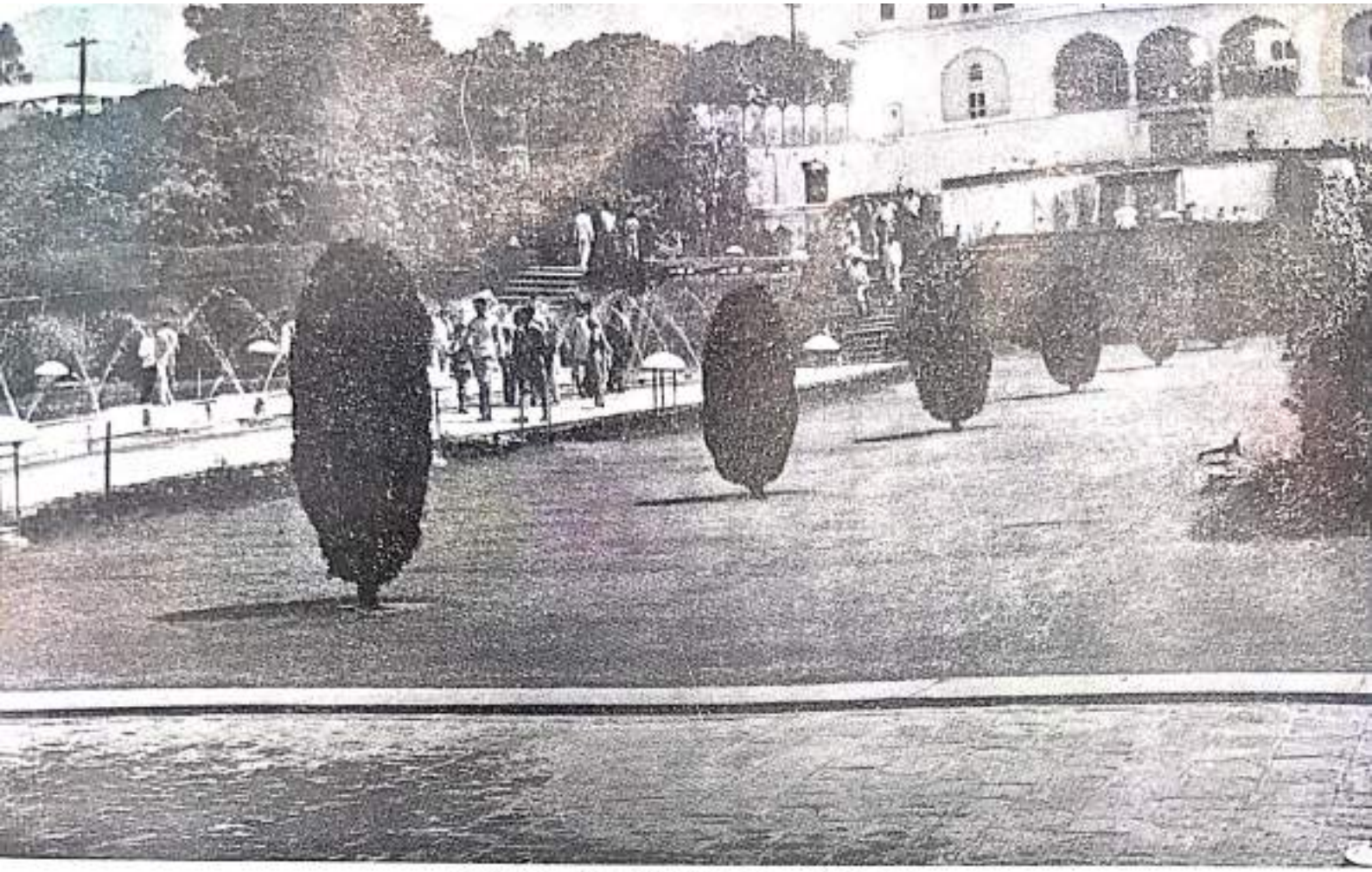

मुगल कालीन यादवेन्द्र उद्यान के दो दृश्य

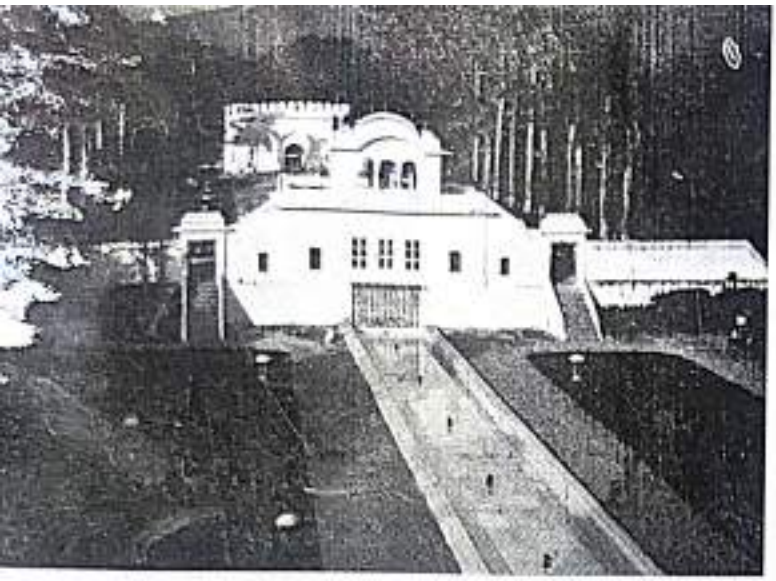

रंग महल [यादवेन्द्र उद्यान पिंजौर]

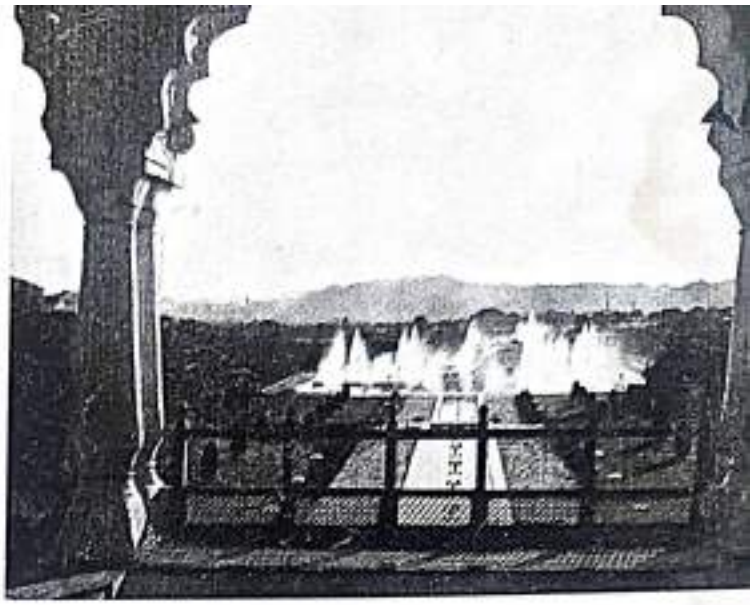

यादवेन्द्र उद्यान का एक
लुभावना दृश्य

सातवीं शती में निर्मित ऐतिहासिक सूरज कुण्ड

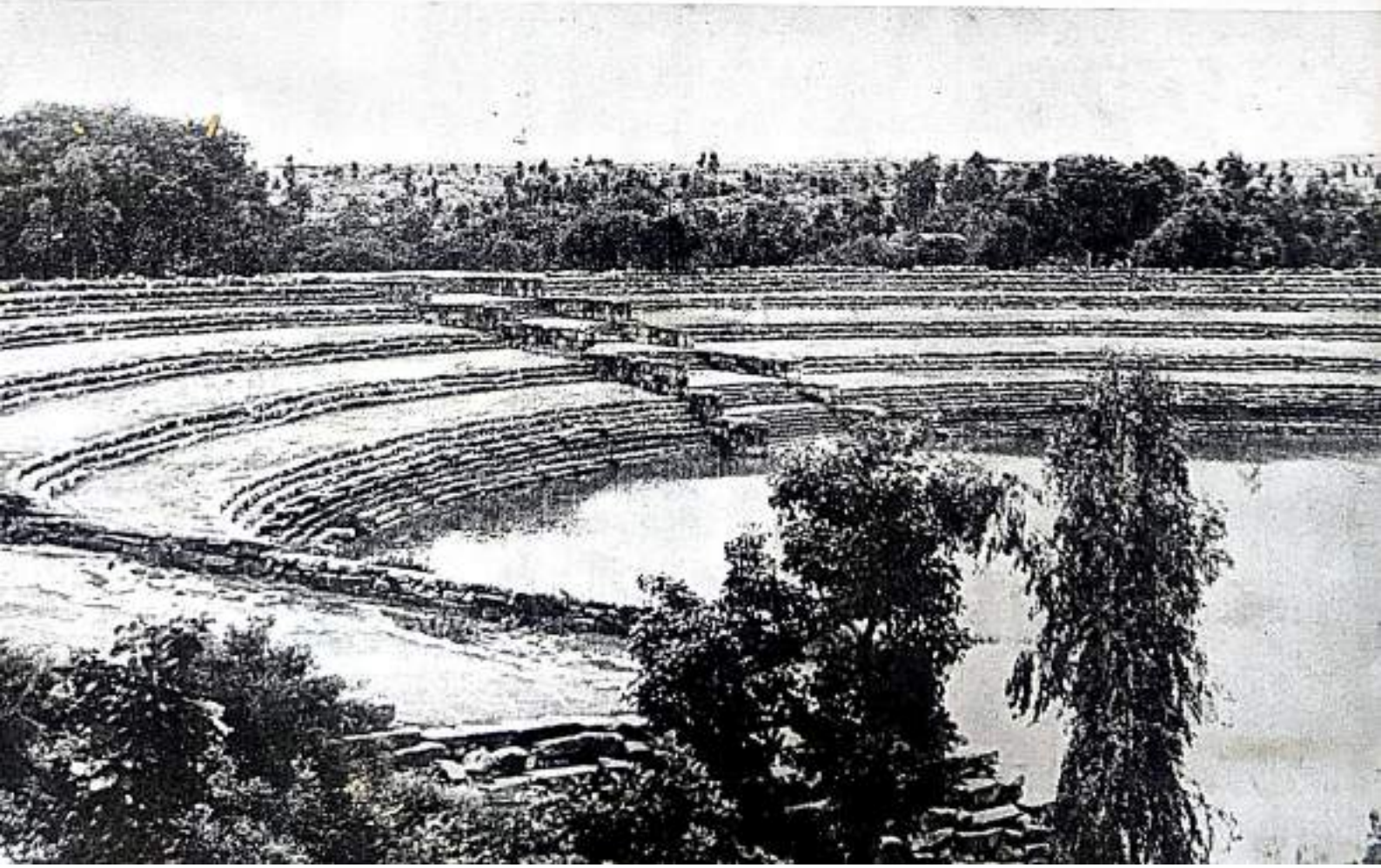

संस्कृत-साहित्य को हरियाणा का योगदान

—डॉ० रामगोपाल—

संस्कृत-साहित्य के अधिकतर ग्रन्थों के रचना-काल के विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं और आंतरिक प्रमाण तथा बाह्य उल्लेखों के आधार पर केवल पूर्वापर सम्बन्ध का अनुमान लगा कर ही सन्तोष करना पड़ता है। ऐसी ही अवस्था इनके रचना-स्थान-सम्बन्धी ज्ञान की है। आंतरिक प्रमाणों के आधार पर हम केवल इतना अनुमान लगा सकते हैं कि ग्रन्थकार जिस स्थान के साथ अपने घनिष्ठ ज्ञान का परिचय देता है, उस स्थान के साथ उस का संबंध रहा होगा। संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों का रचना-स्थान निर्धारित करने का कोई अन्य उपाय नहीं है, क्योंकि इस विषय में कोई निश्चित बाह्य प्रमाण या परम्परा नहीं मिलती है।

वैदिक साहित्य में उपलब्ध आंतरिक प्रमाणों से प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के अतिरिक्त यजुर्वेद की संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों और कतिपय उपनिषदों तथा वेदाङ्गों का आविर्भाव उस पावन प्रदेश में हुआ जो आजकल 'हरियाणा' के नाम से जाना जाता है। यहां पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि संस्कृत-साहित्य में 'हरियाणा' शब्द का उल्लेख नहीं है और यह संज्ञा बहुत प्राचीन भी नहीं है। कतिपय आधुनिक विद्वान् ऋग्वेद, 8,25, 22 में प्रयुक्त **हरयाण** शब्द से **हरयाणा** संज्ञा को जोड़ते हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में **हरयाण** शब्द का केवल एक उपर्युक्त प्रयोग मिलता है और अति प्राचीन काल से इस शब्द का अर्थ सन्दिग्ध रहा है। अतएव निघण्टु 4, 2 में **हरयाणः** शब्द को उन शब्दों की सूची में सम्मिलित किया गया है, जिनके अर्थ के विषय में सन्देह या मतभेद रहा है। निरुक्त 5, 15 में यास्क इसे बहुव्रीहि समास मान कर व्याख्यान करता है—"हरयाणो हरमाणयानो" और दुर्गाचार्य के मतानुसार इसका अर्थ है—"ऐसा पुरुष जिस का यान (सवारी) सदा चालू रहे।" इसी प्रकार सायण भी इसे बहुव्रीहि समास मान कर **सुयामन्** का विशेषण समझता है। अधिकतर आधुनिक विद्वान् **हरयाण** को एक पुरुष का नाम मानते हैं। **हरयाण** को **हरयाणा** प्रदेश का मौलिक रूप मानने में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि इसका एकमात्र प्रयोग सन्दिग्धार्थ है और अन्यत्र कहीं भी स्थान या प्रदेश के अर्थ में इस का प्रयोग नहीं मिलता है। परन्तु वर्तमान हरियाणा प्रदेश के खण्ड **कुरुक्षेत्र** और उसमें स्थित **सरस्वती** आदि नदियों तथा स्थानों का वैदिक वाङ्मय में जो उल्लेख आता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रदेश से वैदिक साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और अधिकांश वैदिक साहित्य इसी प्रदेश में रचा गया होगा।

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के तेईसवें सूक्त के अनुसार भरतवंशीय **देवश्रवा** तथा **देववात** नामक ऋषियों ने कुरुक्षेत्र प्रदेश में बहने वाली **दृषद्वती, आपया** तथा **सरस्वती** नदियों के तट पर और इसी प्रदेश के **मानुष** नामक सरोवर के तट पर यज्ञीय अग्नि को प्रज्ज्वलित किया था। महाभारत में **आपया** को **आपगा** कहा गया है और **सरस्वती** तथा **दृषद्वती** नदी और **मानुष** सरोवर का नाम ज्यों का त्यों मिलता है। यजुर्वेद की संहिताओं में अनेक बार **कुरु, कुरु पंचाल, सरस्वती** इत्यादि का उल्लेख आता है और यह भी बताया गया है कि राजसूय-यज्ञ में इस प्रदेश के रीति-रिवाज क्या थे। ब्राह्मण-ग्रन्थों में कुरुक्षेत्र तथा इस से सम्बद्ध स्थानों तथा नदियों का इतना अधिक उल्लेख आता है कि इन प्राचीन ग्रन्थों का रचना-स्थान निःसन्देह हरियाणा माना जा सकता है। अतएव मैकडानल तथा कीथ इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं—There is clear evidence that it was in the country of the Kurus, or the allied Kuru-Panchalas, that the great Brahmanas were composed. (Vedic Index I, P. 165)

पंचविंशब्राह्मण (जिसे ताण्ड्यमहाब्राह्मण भी कहते हैं) में अनेक ऐसे यज्ञों का वर्णन है जो हरियाणा की सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के तट पर किये जाते थे। सरस्वती नदी से सम्बद्ध यज्ञ को **सारस्वत सत्र** कहते थे।

उस सत्र की दीक्षा **विनशन** नामक स्थान पर ली जाती थी, जहां सरस्वती भूमिमग्न हो जाती है। अधिकतर विद्वान् इस मत का समर्थन करते हैं कि थानेसर के पश्चिम की ओर बहने वाली आधुनिक **सरसुती** नदी वैदिक काल में सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध थी। यह नदी घग्गर से मिल कर सिरसा के पास से बहती हुई राजस्थान की मरुभूमि में लुप्त हो जाती है। जिस स्थान पर सरस्वती रेतीले भू-भाग में लुप्त हो जाती है, उसे प्राचीन काल में **विनशन** या **अदर्श** कहते थे। महाभारत काल में भी **विनशन** एक प्रसिद्ध तीर्थ था। पंचविंशब्राह्मण आगे कहता है कि **विनशन** पर दीक्षा लेने के अनन्तर यजमान आदि सरस्वती के दक्षिणी तट के साथ-साथ इस के उद्गम-स्थान **प्लक्ष-प्रस्रवण** की ओर नियमपूर्वक यात्रा करते थे। सरस्वती के दक्षिणी तट के साथ-साथ चलते हुए जब यजमान तथा ऋत्विज् **सरस्वती** तथा **दृषद्वती** नदियों के संगम पर पहुंचते थे, तब वे वहां पर एक विशेष यज्ञ करते थे। उस स्थान पर दृषद्वती नदी को पार करके वे सरस्वती के दक्षिणी तट के साथ अपनी यात्रा जारी रखते थे। पंचविंशब्राह्मण के अनुसार, उस प्राचीन काल में सरस्वती के लोप-स्थान **विनशन** से उस के उद्गमस्थान **प्लक्ष-प्रस्रवण** तक घोड़े द्वारा यात्रा करने में 44 दिन लगते थे। इस से प्रतीत होता है कि उस समय सरस्वती नदी की लम्बाई कई सौ मील की थी। यदि कोई व्यक्ति घोड़े पर साधारणतः 15 मील प्रतिदिन की यात्रा करे, तो वह 44 दिन में आसानी से 660 मील की यात्रा कर सकता है। क्योंकि यजमान लोग आराम से गाते, बजाते और अनुष्ठान करते हुए यात्रा करते थे, इसलिये अधिक तीव्रता के साथ लम्बी यात्रा करना उन के लिये वाञ्छनीय नहीं था। पंचविंशब्राह्मण के कथन से इस मत का समर्थन होता है कि प्राचीन काल में सरस्वती काफी लम्बी नदी थी। कतिपय विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में सरस्वती नदी समुद्र तक पहुंचती थी। **प्लक्ष-प्रस्रवण** पर पहुंच कर यजमान आदि आवश्यक यज्ञ करते थे। उसके पश्चात् वे यमुना नदी की ओर प्रस्थान करते थे और यमुनातट पर स्थित **कारपचव** नामक स्थान पर वे यज्ञ-समाप्ति का सूचक **अवभृथ** नामक स्नान करते थे।

पंचविंशब्राह्मण तथा लाट्यायनश्रौतसूत्र आदि में **दृषद्वती** नदी के तट पर किए जाने वाले सत्र का वर्णन है। श्रौतसूत्रों के अनुसार ऐसे सत्र को **दार्शद्वत** सत्र कहते थे। कुछ प्राचीन आचार्यों के मतानुसार, संन्यास ग्रहण करने वाले व्यक्ति के लिए **दार्शद्वत** सत्र का विधान है। पंचविंशब्राह्मण के मतानुसार ऐसा सत्र करने वाला यजमान एक वर्ष तक ब्राह्मण की गायों की रक्षा करता था। दूसरे वर्ष वह **नैतन्धव** नामक स्थान पर अग्नि-परिचर्या करता था। कुछ विद्वानों का मत है कि सरस्वती के तट पर एक उजड़े हुए गांव का नाम **नैतन्धव** था। अन्य आचार्यों के मतानुसार सरस्वती के तट के समीप **नैतन्धव** नामक एक सूखा तालाब था। दार्षद्वत सत्र करने वाला यजमान तीसरे वर्ष **परीणह्** नामक स्थान पर अग्नि का आधान करता था। जैमिनीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार, **परीणह्** नामक स्थान कुरुक्षेत्र के पश्चिमी भाग में स्थित था। उसके पश्चात् यजमान दृषद्वती नदी के दक्षिणी तट के साथ-साथ इस नदी के उद्गम-स्थान की ओर जाता था। उद्गम-स्थान पर पहुंच कर वह एक यज्ञ करता था। उसके पश्चात् वह यमुनास्थित **प्लक्ष** नामक स्थान पर आकर अवभृथ स्नान करता था। फिर वह सदा के लिए निर्जन भू-भाग में चला जाता था और कभी लौट कर नहीं आता था।

दृषद्वती नदी के आधुनिक नाम के सम्बन्ध में कोई निश्चित् मत नहीं है और अनेक प्रकार के मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् इसे **घग्गर** कहते हैं, दूसरे इसे **झज्जर** की संज्ञा देते हैं और अन्य विद्वानों के मतानुसार **चिटंग** या **चित्रंग** प्राचीनकाल में दृषद्वती के नाम से प्रसिद्ध थी। दृषद्वती का शाब्दिक अर्थ "पत्थरों वाली नदी" है। ऐसा प्रतीत होता है कि कल्पसूत्रों के काल में दृषद्वती नदी केवल वर्षा ऋतु में ही चलती थी और शेष ऋतुओं में सूख जाती थी। अतःएव श्रौतसूत्रकार लाट्यायन का कथन है कि जब दृषद्वती में पानी हो तभी उस के लिये यज्ञ का अनुष्ठान किया जाए। परन्तु दूसरे सूत्रकार धनंजय का मत है कि चाहे दृषद्वती में पानी हो या न हो, उस के लिये यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए।

वैदिक साहित्य में हरियाणा के कतिपय सरोवरों के नाम भी आए हैं। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में कुरुक्षेत्र के **मानुष** नामक सरोवर का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद (3, 23, 4) ने सरस्वती, दृषद्वती तथा आपया नदियों के साथ **मानुष** सरोवर का उल्लेख किया है। महाभारत (3, 83, 67) के अनुसार, **मानुष** सरोवर आपगा (आपया) नदी से एक कोस पश्चिम में स्थित था और यह कुरुक्षेत्र का अतिप्रसिद्ध तथा पावन तीर्थ था। ऐतरेय ब्राह्मण (3,33) तथा जैमिनीय ब्राह्मण (3, 263) में **मानुष** सरोवर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक रोचक कथा मिलती है। हरियाणा के दूसरे प्रसिद्ध तथा प्राचीन सरोवर का नाम **शर्यणावत्** था। जैमिनीय ब्राह्मण (3,64) के अनुसार

शर्यनावत् सरोवर, कुरुक्षेत्र के पश्चिमी भाग में स्थित था। ऋग्वेद में अनेक बार **शर्यणावत्** का उल्लेख आया है। शाट्यायन तथा जैमिनीय ब्राह्मण में **शर्यणावत्** सरोवर के सम्बन्ध में एक रोचक कथा मिलती है। वह कथा इस प्रकार है। दध्यङ् आथर्वण बड़ा तेजस्वी और ब्रह्मबलसम्पन्न ऋषि था। उस के दर्शनमात्र से असुर नष्ट हो जाते थे। जब वह ऋषि स्वर्ग-लोक में चला गया तब पृथिवी पर असुर बहुत बढ़ गए। जब इन्द्र ने पूछा कि क्या उस ऋषि की कोई वस्तु पृथ्वी पर बची है, तब बताया गया कि दध्यङ् ऋषि ने जिस अश्व-शिर से अश्विनों को मधुविद्या का उपदेश दिया था वह पृथिवी पर है। इन्द्र ने उस अश्व-शिर को **शर्यणावत्** सरोवर में पाया। जब वह अश्व-शिर असुरों को दिखाया जाता था, असुर तुरन्त नष्ट हो जाते थे। ऋग्वेद (1, 84, 14) में **शर्यणावत्** तथा **अश्व-शिर** का उल्लेख मिलता है।

तैत्तिरीय आरण्यक [5, 1, 1] में कहा गया है कि एक बार जब देवों ने यज्ञ किया तब **कुरुक्षेत्र** उन के यज्ञ की वेदि बना। **खाण्डव** उस वेदि का दक्षिण भाग, **तूर्न** उत्तर भाग, और **परीणह्** पश्चिम भाग था। कतिपय विद्वानों के मतानुसार उपर्युक्त स्थान कुरुक्षेत्र की सीमाओं का संकेत करते हैं। परन्तु इन स्थानों की पहचान करना कठिन है। यमुना तथा सतलुज नदियों के बीच का प्रदेश साधारणतया **कुरुदेश** कहलाता था और इस का पावनतम भाग **कुरुक्षेत्र** के नाम से प्रसिद्ध था। अतएव मनुस्मृति (2,17,18) में हरियाणा की सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के बीच के प्रदेश को **ब्रह्मावर्त** कहा गया है और इस प्रदेश के शिष्टाचार को आदर्श माना गया है। शतपथब्राह्मण आदि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में भी **कुरुदेश** की परम्परा तथा आचार को प्रामाणिक बताया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद से लेकर सूत्रकाल तक के वैदिक साहित्य में हरियाणा के अनेक स्थानों, सरोवरों तथा नदियों का बार-बार उल्लेख आता है जिस से विदित होता है कि ऋग्वेद के बहुत से सूत्रों के अतिरिक्त यजुर्वेद की संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा कल्पसूत्रों में से अधिकांश की रचना इसी प्रदेश की पावन भूमि पर हुई।

भारतीय परम्परा तथा स्वयं महाभारत के वचनानुसार इस प्रसिद्ध ग्रन्थ का हरियाणा की भूमि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् श्री कृष्ण ने हरियाणा की पावन भूमि पर अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का अमर उपदेश दिया और श्री कृष्णद्वैपायन व्यास ने महाभारत के एक भाग के रूप में गीता की रचना करके उसे साहित्यिक कृति का रूप प्रदान किया। गीता का महत्व सर्वविदित है। यहां पर केवल इतना उल्लेख करना आवश्यक है कि वेदों तथा उपनिषदों की शिक्षाओं का सार प्रस्तुत करने के साथ-साथ गीता ने भक्ति, ज्ञान तथा कर्म का समन्वय प्रस्तुत किया है और कर्मयोग का मार्ग दिखाया है। जैसा कि स्वयं व्यास का वचन है, जो कुछ महाभारत में मिलता है वही अन्यत्र मिलता है और जो ज्ञान इस में नहीं है वह कहीं नहीं है (यदिहास्ति तदन्यत्र। यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्)। महाभारत एक प्रकार से प्राचीन भारतीय ज्ञान का विश्वकोष है। ऐसा होने पर भी महाभारत ने हरियाणा के कुरुक्षेत्र खण्ड और उस के समीपवर्ती नदियों, तीर्थों, सरोवरों तथा स्थानों का जितना विस्तृत तथा विशद वर्णन किया है इतना किसी अन्य प्रदेश की नदियों आदि का नहीं किया है और महाभारत के रचयिता व्यास जी की तपोभूमि भी हरियाणा बताई गई है। इन सब तथ्यों से स्पष्ट है कि महाभारत की रचना मुख्यतः हरियाणा प्रदेश में हुई होगी। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि महाभारत ने उत्तर कालीन संस्कृत साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया। भास तथा कालिदास आदि अनेक नाटककारों और भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि अनेक महाकवियों ने महाभारत से प्रेरणा तथा कथावस्तु लेकर अपनी अमर कृतियों की रचना की। अतएव बाणभट्ट अपने हर्ष चरितम् के प्रारम्भ में व्यास को **कविविधाता** कह कर नमस्कार करता है।

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥

कतिपय विद्वानों के मतानुसार, मार्कण्डेय पुराण का रचना स्थान हरियाणा में हो सकता है। इस सम्बन्ध में निश्चित तथा निर्णायक मत प्रस्तुत करना कठिन है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय पुराण की गणना प्राचीनतम पुराणों में की जा सकती है और महाभारत के साथ इस का विशेष साम्य दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों ग्रन्थों के कितने ही पद्य समान हैं।

महाभारत के पश्चात् जिन रचनाओं को निःसन्देह हरियाणा से सम्बद्ध माना जा सकता है वे हैं हर्ष या हर्षवर्धन के नाटक और उस के दरबारी कवियों बाणभट्ट तथा मयूर की कृतियां । चीनी यात्री ह्यूनसांग के यात्रा-वर्णन तथा बाणभट्ट के हर्षचरितम् नामक ऐतिहासिक काव्य से यह तथ्य पूर्णतया सिद्ध होता है कि हर्ष या हर्षवर्धन ने ईसा के पश्चात् सातवीं शताब्दी में यहां पर राज्य किया । वर्तमान **थानेसर** (प्राचीन **स्थाण्वीश्वर**) उन के वंश की परम्परागत राजधानी थी । हर्ष के ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन ने भारत के पश्चिमोत्तर भाग में हूणों को पराजित किया और अपने बहनोई ग्रहवर्मा के हत्यारे, मालवा के राजा देव गुप्त, को परास्त किया । परन्तु देवगुप्त ने पराजय के पश्चात् विश्वासघात से राज्यवर्धन की हत्या कर डाली । इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के पश्चात् हर्ष ने राज्यभार संभाला और सभी शत्रुओं को पराजित किया । थानेसर के अतिरिक्त उसने कन्नौज के राज्य का काम भी अपने हाथों में लिया, क्योंकि वहां का राजा ग्रहवर्मा जो उस का बहनोई था, पहले ही शत्रुओं द्वारा मारा जा चुका था। हर्षवर्धन एक वीर योद्धा तथा कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ सुयोग्य नाटककार भी था। हर्षचरितम् में बाणभट्ट ने भी हर्ष की काव्यप्रतिभा की प्रशंसा की है। इस समय हर्ष के तीन नाटक मिलते हैं। जिन के नाम है, **नागानन्द, प्रियदर्शिका** और **रत्नावली** ।

हर्ष का राज्यकवि बाणभट्ट अपनी गद्यकृतियों **कादम्बरी** तथा **हर्षचरितम्** के लिये सुप्रसिद्ध है। इन के अतिरिक्त **चण्डीशतक** तथा **पार्वतीपरिणय** भी बाण की रचनायें मानी जाती हैं। बाण ने अपने ग्रन्थ हर्षचरितम् के तृतीय उच्छ्वास में हर्ष की राजधानी **स्थाण्वीश्वर** (वर्तमान थानेसर) का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। हर्ष के जीवन तथा राज्यकाल के सम्बन्ध में हर्षचरितम् का विशेष ऐतिहासिक महत्व है। **शार्ङ्गधर पद्धति** के अनुसार (अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्ग-दिवाकरः, श्री हर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः), प्रसिद्ध कवि मयूर भी हर्ष का दरबारी कवि था। कीथ भी इस मत को स्वीकार करता है कि मयूर हर्ष के दरबार में रहा होगा । यह मत विवादास्पद है कि मयूर, बाण का श्वशुर था। मयूर की दो कृतियां **मयूरशतक** तथा **सूर्यशतक** प्रसिद्ध हैं। जैसा कि उपर उद्धृत वचन से स्पष्ट है, **मातङ्ग दिवाकर** भी हर्ष का दरबारी कवि माना जाता था। राजशेखर भी इस मत का समर्थन करता है। परन्तु **मातङ्ग दिवाकर** की कृति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। एक मत के अनुसार, **भक्तामरस्तोत** का रचयिता जैन कवि **मानतुङ्ग** ही **मातङ्ग दिवाकर** रहा होगा । परन्तु अधिकतर विद्वान् इस मत को ग्राह्य नहीं समझते हैं।

सम्भव है कि कितने ही अन्य कवि तथा संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थों के लेखक हरियाणा प्रदेश के रहे होंगे । परन्तु उनकी कृतियों में या किसी अन्य परम्परा से इस तथ्य का आभास न मिलने के कारण इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इस में सन्देह नहीं कि यह पावन भूमि अति प्राचीन काल से कवियों तथा मनीषियों को प्रेरणा प्रदान करती रही है। इसीलिये कालिदास अपने **मेघदूत** में मेघ को अपने घर का मार्ग बताते हुए **ब्रह्मावर्त**, पर से गुजरने का उपदेश देता है :—

ब्रह्मावर्तं जनपदमधश्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्का
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य ! सारस्वतीनाम्
अन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥

हरियाणा का प्राचीन हिन्दी साहित्य

–डॉ० देवेन्द्र सिंह 'विद्यार्थी'–

हरियाणा प्रदेश और परम्परा :—भारतीय आर्यायी सभ्यता का पालना यदि 'सप्तसिन्धु' देश है तो हरियाणा निश्चय ही वह प्राङ्गण है जिसमें आर्य-जीवन की बाल-सुलभ लीलाओं का विकास हुआ । सरस्वती और यमुना की पावन नदियों के बीच का यह भू-खण्ड भारतीय इतिहास के अनेक युग-युगान्तरों की कहानी के विकास-विस्तार का भागीदार रहा है, इसमें किसी अतिशयोक्ति को दखल नहीं है ।

यद्यपि जिस भू-भाग विशेष को हम आजकल 'हरियाणा' संज्ञा से अभिहित करते हैं, वह हमारे जीवट के इतिहास में महत्व का योग प्रदान करता आया है। तथपि उसका यह नाम बहुत अधिक पुराना नहीं है । ऋक संहिता (6-2-25-2) में मिलने वाला पाठ :—

हरियाणो हरमाणयानः रजतं हरयाण इत्यपि निगमो भवति

निश्चित् रूप से देशवाची सिद्ध कर पाना कठिन है। कुछ विद्वान् जो इस श्लोक में किसी राजा के रथ का सदा चलते रहने के अर्थ का बोध करते हैं, यह भी मानते हैं कि राजा का रथ सदा चलते रहने से उसका एक नाम 'हरयाण' भी प्रसिद्ध हो गया होगा और फिर आगे चलकर उसके राज्य क्षेत्र का नाम 'हरियाण राज्य', 'हरयाण-क्षेत्र' अथवा 'हरयाण भूमि पड़ गया होगा । यही नाम कालान्तर में घिसपिट कर 'हरयाणा' कहलाने लगा होगा, जैसे राजा 'दिलीप' अथवा 'दलीप' की राजधानी का नाम दिलीप-नगर और पीछे 'दिल्ली' प्रसिद्ध हुआ, कहा जाता है ।

संहिता काल से उतर कर रामायण काल से भी हरियाणा के नामकरण का नाता जोड़ा जाता है। हरियाणा के हिसार जिला में एक तीर्थस्थान 'राम ह्रदय' नाम का है। कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहां पर परशुराम ने क्षत्रियों को इक्कीस बार परास्त करके बलिवेदी पर बांध कर परशुधार के घाट उतारा था । इसी आधार पर इस स्थल विशेष का नाम हरि+यानः ("हरि" के अर्थ विष्णु अथवा मारने वाला और 'यान' के अर्थ स्थान अथवा एकत्रित करना है । परशुराम ने, जो हरि अथवा विष्णु के अवतार थे, इस स्थान पर क्षत्रियों को एकत्रित कर उनके प्राणों का अपहरण किया, इस आधार पर यह नाम) हुआ जो आगे चलकर प्रदेश विशेष पर लागू हो गया।

एक अन्य लोक मान्यता है कि इस प्रदेश को अयोध्या के प्रसिद्ध पौराणिक महाराजा हरिश्चन्द्र ने बसाया था, जिससे इस नए बसे प्रदेश का नाम 'हरि+आना' हो गया।

और इधर महाभारत काल में भी हरियाणा नाम की सार्थकता की चूल बिठाने के प्रयास हुए हैं। आभीरों (अहीरों) की बस्तियां इस क्षेत्र में होने से कल्पना की गई है कि मूल में इस प्रदेश विशेष का नाम 'अभीरायण' (आभीरों का घर) रहा होगा जो आगे चलकर अहीरायण>अहिराधण>हिरायण>हरायण>हराणः और फिर घिसते-पिसते हरआणा तथा हरयाणा हो गया होगा।

कुछ अन्य लोग इसे भगवान् श्री कृष्ण के नाम 'हरि' से जोड़ते हैं। उनका कहना है कि ब्रज से द्वारिका जाते समय भगवान के 'यान' (रथ) का मार्ग इस क्षेत्र से होकर गया था जिससे इसका नाम हरियाण-पथ हुआ जो पीछे 'हरियाणा' रह गया। एक अन्य मत के विजित 'मुरु' की राजधानी 'मुरुथल' को जीतकर श्री कृष्ण द्वारा उसके राज्यक्षेत्र को मथुरा राज्य में एकत्रित कर लिए जाने की क्रिया में इस का उत्स खोजते हैं। उनकी दृष्टि में हरियाणा (हरि+यान) हरि द्वारा एकत्रित प्रदेश है।

कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध हुआ तो पाण्डवों की सहायता के लिए भगवान् श्री कृष्ण उसमें सम्मिलित हुए। पाण्डवों की रण में जीत हुई तो भगवान् के कारण। लोक-मानस ने इसे भगवान श्री कृष्ण का विजित प्रदेश मान कर इसे हरियानः (हरि का स्थान) कहना शरू कर दिया।

इसी प्रकार हरियाणा नाम की कुछ और व्युत्पत्तियां भी सुझाई गई हैं। 'वेदधरातल' ग्रन्थ में लखनऊ के पण्डित गिरीशचन्द्र अवस्थी ने, ऋग्वेद में एक ही राजा के लिए 'हरयाण और उक्षणायन' विशेषण प्रयुक्त हुए देखकर उक्षणायण अर्थ किया है (पृ० 779) अक्षणयं अयनम् अर्थात् "बैलों के लिए कल्याणकर है घर जिसका"। हरियाणा की भूमि अच्छे बैलों के लिए आज भी प्रसिद्ध है और 'हरयाण' की जिसका रथ सदा चलता रहा है, बैलों के लिए कल्याण-कारक घर का स्वामी होने की चूल भी ठीक बैठ जाती है।

हरिश्चन्द्र द्वारा 'हरियाणा' प्रदेश बसाए जाने की कथा में यह भी कहा जाता है कि बसाए जाने के पूर्व यहां घना निर्जन जंगल था और हरिश्चन्द्र द्वारा बसाए जाने पर इसका नाम पहले 'हरियावन' पड़ा फिर यही हरियावन उलट-पुलट कर हरियाणा हो गया।

यौधेय-गण के राज्यकाल में उनकी राजधानी रोहतक के आस-पास का क्षेत्र 'बहुधान्यक' अथवा हरिधान्यक कहलाता था। यही नाम अपभ्रष्ट होकर 'हरिधान्यक>हरिहानक>हरिआनक>हरिआनअ और फिर हरिआना' हो गया।

एक अन्य ग्रन्थ में इस क्षेत्र का नाम 'हरिवाणक' बताया गया है। जिसका अर्थ 'हरि-इन्द्र' की अधिक आकांक्षा रखने वाला किया है। यह हरिवाणक ही 'हरिवाणअ' और 'हरिआणअ' में प्रवर्तित हो गया होगा।

भगवान् शिव शंकर के 'हर' नाम से भी हरयाणा को जोड़ा जाता है। पौराणिक कथाओं में रोहितकारण्य (रोहतक के आस-पास का वनैला प्रदेश) कार्त्तिकेय का प्रिय क्रीड़ा-स्थल बताया जाता है। तथा कुमार को प्रिय होने से यह भूमि शिव को भी प्रिय थी। स्थान-स्थान पर शिव मन्दिरों की प्रचुरता प्रमाण रूप से प्रस्तुत की जाती है।

यह सब व्युत्पत्तियां और ऐसी ही कई दूसरी व्युत्पत्तियां भी कल्पना और अनुमान पर आश्रित हैं। इनकी पुष्टि में अकाट्य प्रमाणों का अभाव है तो भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस क्षेत्र में, मेधाकांक्षी परन्तु अच्छी नसल के बैलों के कारण पर्याप्त धन-धान्य-युक्त कोई बस्तियों का समूह अवश्य रहा है।

देश विशेष के अर्थ में हरियाणा शब्द का स्पष्ट प्रयोग हमें बहुत पीछे चौदहवीं शताब्दी के एक शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख 'सारवन' नाम के गांव से मिला था। इस से 47 वर्ष पहले के एक अन्य शिला-लेख में 'हरियानक' शब्द भी प्रयुक्त हुआ मिलता है। यह दूसरा शिलालेख पालम की एक बावड़ी से मिला था। विद्वानों का मत कि 'हरियाणक' में 'क' स्वार्थवाची प्रत्यय के रूप में ही आया है, वस्तुतः प्रदेश नाम–'हरियान' ही रहा होगा। सारवन गाँव से उपलब्ध शिलालेख 1384-85 ई० का लिखा है।

इतिहास में हरियाणा प्रदेश की राजनैतिक परिस्थितियों का क्रमिक वर्णन नहीं मिलता किन्तु यह निश्चित है कि इसका पर्याप्त अंश कभी कुरुवंशी राजाओं के अधिकार में था और उनके द्वारा पाण्डवों को दिया गया था। इसी प्रदेश में पाण्डवों ने अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ बनाई थी। जब पाण्डवों और कुरुओं में कलह छिड़ी तो उसकी उपशान्ति के हेतु पाण्डवों ने जिन पांच नगरों की मांग की थी उनमें से तीन 'इन्द्रप्रस्थ', 'पाणिप्रस्थ' (पानी-पत) तथा 'श्रोणिप्रस्थ' (सोनीपत) थे। इसी प्रदेश का एक अन्य पुरातन नगर-रोहतक यौधेयों की राजधानी रहा था। यौधेयों का उल्लेख हमें पाणिनी के यहां मिलता है। कुरुक्षेत्र तो महाभारत के लिए प्रसिद्ध ही है। एक अन्य नगर स्थाण्वीश्वर (थानेसर) वर्धनवंश की राजधानी था। हर्षवर्धन का नाम आज भी हमारे इतिहास की उज्ज्वल निधि है। तोमर और चौहान वंशी राजाओं ने भी 8वीं से 13वीं शताब्दी तक यहां शासन किया। फिर मुसलमानों ने पानीपत के मैदान में पृथ्वीराज चौहान को पराजित किया। मुग़लों को भी यहीं विजय मिली। 1857 में इस प्रदेश का पर्याप्त खण्ड पंजाब की सिख रियासतों को दे दिया गया। शेषांश को पंजाब की अंग्रेजी अमलदारी में ले लिया गया। 1947 में देश के स्वतंत्र हो जाने पर भी 1966 तक यही स्थिति बनी रही। आखिर 1 नवम्बर, 1966 को हरियाणा का एक विशिष्ट राजकीय इकाई के रूप में अलग अस्तित्व स्वीकार

कर लिया गया।

जैसा कि हमने ऊपर देखा है 'हरियाणा' नामधारी किसी प्रदेश विशेष का संकल्प हमारे पुराने लेखकों के मन में निश्चित नहीं था, अतः पुराने ग्रन्थों के आधार पर उसकी निश्चित सीमाएं निर्धारित कर पाना सम्भव नहीं। किन्तु इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इस प्रदेश की पूर्वी सीमा दिल्ली के आस-पास और पश्चिमी सीमा घग्गर अथवा सरस्वती नदी रही है। उत्तर में आर्यवर्त और दक्षिण में शूरसेन तथा डिंगल आदि देश रहे हैं।

आज का हरियाणा तीन मुख्य उप-भागों में बंटा हुआ है। एक मूल हरियाणा जो वर्तमान हिसार जिले के पूर्व-दक्षिण भाग में घग्गर नदी से पूर्व में फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत हांसी की पूरी तहसील, हिसार तहसील का पूर्वार्द्ध भाग और फतह-आबाद तहसील का पूर्वी भाग शामिल है। हिसार जिले के गैजेटियर में हरियाणा की लम्बाई बहादुरगढ़ से अग्रोहा तक 65 कोस और चौड़ाई जींद से दादरी तक 57 मील दर्ज है किन्तु आज इस खण्ड का क्षेत्रफल कहीं अधिक बैठता है। दूसरा उपभाग बांगड़ कहलाता है, यह ऊंची भूमि है जो अरब सागर की ओर बहने वाली तथा बंगाल की खाड़ी की ओर बहने वाली नदियों के बीच जल-विभाजक का काम देती है। तीसरा भाग यमुना का खादर कहलाने वाला प्रदेश है। खादर और बांगड़ के बीचों बीच ग्रांड ट्रंक रोड पड़ती है। इनके अतिरिक्त राजस्थान की सीमा से लगता बागड़ी प्रदेश और अम्बाला जिला के उत्तर का पहाड़ी प्रदेश तथा गुड़गांव जिले का मेवाती क्षेत्र भी है। दिल्ली के आस-पास का बहुत सा इलाका आज वृहत् दिल्ली का अंग बनता जा रहा है। नयी बस्तियां और कारखाने इन गांवों तथा उपनगरों में बनादन उभर रहे हैं।

हरियाणा प्राचीन प्रदेश है। इसने अनेक शासकीय तथा सीमा परिवर्तन देखे हैं।

हरियाणवी प्रतिभा का नैसर्गिक विकास :—किसी भी क्षेत्र विशेष की प्रतिभा का विकास जैसा कि स्थानीय 'बतोई', क्षेत्रीय उपभाषा अथवा जनपदीय भाषा में होता है, अन्यत्र किसी प्रकार संभव नहीं हो पाता। फिर भी देखा गया है कि विद्वान लोग 'सीखेकी' अर्जित अथवा अताई कही जाने वाली भाषाओं में भी उत्तम अभिव्यक्ति कर लेते हैं। ऐसे अर्जित भाषाओं में प्रमुख ठहरती हैं शासन की भाषा और संस्कृति की भाषा। शासन तथा संस्कृति से सम्बन्धित बहुविध व्यापक समस्याओं के साथ जूझने से इन भाषाओं में कुछ ऐसी शक्ति सम्पन्नता आ जाती है कि दुरूह होते हुए भी वे जन-मन के अंतस तक को छूने की सामर्थ्य पा लेती हैं। यही सामर्थ्य उनकी सबलता तथा उपयोगिता की सूचक हुआ करती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हरियाणा क्षेत्र की अपनी कई उपभाषाएं हैं जैसा कि हरियाणवी या जाटू; बागड़ी तथा बांगरू; कौरवी; अहीरवाटी; मेवाती तथा चमखा आदि। इनमें से हरियाणवी और बांगरू को उप-भाषाई महत्व प्राप्त है शेष की स्थिति 'बतोई' से अधिक नहीं है। इन दोनों उपभाषाओं की पर्याप्त रचनाएं हैं किन्तु उनकी मान्यता अभी लोक साहित्य के अन्तर्गत ही की जाती है। शिष्ट साहित्य की पदवी उन्हें अभी नसीब नहीं हो पाई। स्थानीय तथा क्षेत्रज धरातल से ऊपर उठकर प्रतिष्ठा पाने के इच्छुक संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू और हिन्दी में लिखते रहे हैं। सिखों तथा निर्मला साधुओं की रचनाओं में छिटपुट पंजाबी भाषा के अंश अथवा लघु-रचनाएं मिल जाती हैं। इन सब में प्रमुखता हिन्दी की रचनाओं को प्राप्त है।

हरियाणा का प्राचीन हिन्दी साहित्य लगभग सारे का सारा ही ब्रज भाषा के साहित्य के अन्तर्गत गिना जाना चाहिए क्योंकि इसकी भाषा का मूल ढांचा ब्रजभाषा पर आधारित है, किन्तु इसे ब्रजभाषा के खरे भाषायी धर्मकांटे पर नहीं आंका जा सकता। जहां-तहां उसमें स्थानीय प्रयोगों हरियाणवी तथा पंजाबी अथवा उर्दू-फारसी शब्दावली की पुट मिलेगी और कई स्थलों पर तो ये रचनाएं पूर्णतः खड़ी बोली का रूप ले लेती हैं परन्तु उनकी मात्रा नगण्य है।

हरियाणा जैसे कि मैं पहले कह आया हूं आर्यायी सभ्यता के उदय-काल की लीलाभूमि है तथा ब्रह्मावर्त अथवा ब्रह्मर्षिदेश के निकटस्थ होने से अनेक ऋषियों-मुनियों का क्रीड़ा-स्थल रहा है। इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि यहां लौकिक तथा वैदिक साहित्य की पुष्ट-परम्परा विकसित हुई होगी। फिर यही परम्परा प्राचीन संस्कृत की रचनाओं में परिवर्तित हुई होगी। केवल इस आधार पर कि हम तत्कालीन साहित्य में अपने देय को आज इंगित करने में समर्थ नहीं हैं, उस के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। हर्षवर्धन जैसे प्रतापी बौद्ध राजाओं की राजधानी यहां होने से यह भी अनुमान किया जाता है कि मागधी तथा पाली भाषाओं के

साहित्य को भी इस क्षेत्र की प्रतिभाओं का पर्याप्त योगदान मिला होगा। जैन आचार्यों का विपुल हिन्दी साहित्य यहां मिलता है । अतः प्राकृत भाषाओं के युग में भी अनुमानित किया जा सकता है कि हरियाणा के सपूतों ने प्राकृत साहित्य को भी कुछ न कुछ मूल्यवान भेंट प्रस्तुत की होगी। अपभ्रंश काल में भी अभिमान-मेरू कवि पुष्पदन्त जैसे तथा कवि रइधू जैसे इसी धरती में उत्पन्न हुए थे। ये लोग अपभ्रंश काल के इस छोर पर स्थित हैं। अतः कहना गलत न होगा कि ऐसी साहित्यिक विभूतियां किसी क्षेत्र में एकदम अकेले में नहीं पनपा करतीं, उनके पीछे पर्याप्त परम्परा रहती है। आगे चल कर शौरसेनी की उत्तराधिकारी ब्रजभाषा यथासंभव सारे उत्तर भारत की संस्कृति तथा साहित्य की भाषा के रूप में फैल जाती है। स्वाभाविक ही था कि उसके निकटतम का प्रदेश हरियाणा उसकी बढ़ती-महती के साथ सहयोग बढ़ाने में भी सब से आगे रहा हो।

जहाँ तक निकटतम प्रदेश की भाषा से प्रभावित होने का प्रश्न है दो मत नहीं हो सकते किन्तु ब्रजभाषा के हरियाणा में प्रसार-विस्तार के और भी कई कारण हैं । जिनमें प्रमुख है श्री कृष्ण का ब्रज और हरियाणा से समान सम्बन्ध का होना । ब्रज यदि भगवान् की केलि भूमि रही है तो हरियाणा उनकी कलाभूमि कहलायेगी । हरियाणा का कुरुक्षेत्र ही तो वह स्थल है जिसने श्री कृष्ण को मथुरा के शासक से उभार कर भारत भर का जननायक बनने का अवसर दिया । भगवान् श्री कृष्ण की भारत को सब से बड़ी देन गीता है जिसका उच्चारण कुरुक्षेत्र की युद्धस्थली में ही संभव हो सकता था। भगवान् के प्रति जितनी श्रद्धा और सम्पृक्त होने की भावना ब्रजवासियों में है, हरियाणावियों में उससे किसी प्रकार न्यून नहीं आंकी जा सकती। भगवान् श्री कृष्ण के प्रति भक्ति का जितना साहित्य रचा गया है उसके मूल में ब्रज भाषा के साहित्य की ही चेतना है। चाहे वह पूर्व के कामरूप देश में 'ब्रजबुली' की संज्ञा प्राप्त करे और चाहे पश्चिम में पंजाब में 'ब्रजी' कहलाए और चाहे दक्षिण के भक्तों की रचना में आंशिक प्रयोगों तक सीमित हो, है वह सर्वत्र ब्रजभाषा का ही विकास ।

अरबी में जो कुछ लिखा गया वह धार्मिक सीमाओं से आगे नहीं बढ़ा । फारसी अकबर के राज्यकाल से राजा टोडर मल के परामर्श से शासन की भाषा हो गई थी । सूफी कवियों में से अनेक ने तथा शासन से सम्मानित विद्वानों आदि ने फारसी में पर्याप्त मात्रा में रचनाएं की हैं जिनका अधिकांश ग़जलों के दीवानों, कसीदों, प्रेमकथाओं, मसनवियों और साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित विषयों के ग्रन्थों के रूप में मिलता है । फारसी लेखकों में अनवर रोहतकी, अबदुलवासय हांसवी, बूअली कलन्दर पानीपती, शेख गुलाम कादिर जीलानी, झज्जर के शेख महबूबेआलम आदि प्रमुख हैं ।

उर्दू में भी हरियाणवी शायरों की काफी रचना मिलती है । शेख अब्दी, शेख अब्दुल्ला अनसारी, शेख महबूबे आलम, अकरम रोहतकी, शाह अब्दुल रहीम, शाह गुलाम जीलनी, अब्दुल्ला वासय हासवी, मीर बज़फ अली बेबाक, सिकंदर तथा जाअफर जाटल्ली आदि प्राचीन उर्दू लेखकों में प्रमुख गिने जा सकते हैं । फारसी तथा उर्दू के लेखकों में कितने ही एसे हैं जो हिन्दी में भी लिखते थे । हरियाणा की नैसर्गिक प्रतिभा अनेक भाषाओं में प्रतिफलित हुई है किन्तु हिन्दी में उसका विकास सर्वाधिक हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा हरियाणा के हिन्दी साहित्य की उपेक्षा :—कहने को तो हिन्दी साहित्य के इतिहासकार कहते यही रहते हैं कि "हिन्दी वास्तव में उस भाषा समूह का नाम है जिसके अन्तर्गत पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, अवधि, मैथिली, भोजपुरी, मगही, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू तथा प्रादेशिक भाषाएं और शैलियां आती हैं, जिस शैली का नाम आज उर्दू है वह भी पहले 'हिन्दी या हिन्दवी' कहलाती थी।" किन्तु इतिहास की रूप-रेखा आंकते समय उनकी दृष्टि गंगा और जमुना के पार झांकने से झिझकती है।

ऊपर पंजाबी, राजस्थानी आदि जिन प्रादेशिक भाषाओं के नाम हिन्दी भाषा के अन्तर्गत गिनाए गए हैं उनके निपट प्रादेशिक साहित्य की तो बात ही क्या, इन तथा अन्य प्रादेशिक सीमाओं की चौहद्दी के घेरे में उपजे ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली आदि में रचे गए विशुद्ध हिन्दी साहित्य कहलाने वाले अंश को भी आंखों से ओझल रखा जाता है । यह तो कुछ ऐसी ही बात है जैसे कोई कहे कि "इस मुहल्ले के सभी बालक-बालिकाएं मेरे अपने परिवार से हैं। इस संयुक्त परिवार का 'कर्ता' मैं ही हूं किन्तु आप जानते हैं, आज की महंगाई में इतने बड़े परिवार का पालन-पोषण करना कितना कठिन है । अतः खान-पान-पहिरान का प्रबन्ध करते समय मैं उन्हीं बच्चों का ध्यान रख सकता हूं जो सदा मेरे ही कमरे में मेरे साथ बने रहते हैं और अपनी वसीयत में

भी मैंने लिख दिया है कि मेरे ऊपर जितना किसी का देना है वह तो सारा परिवार मिलकर चुकाएगा परन्तु 'पावने' के अधिकारी वे ही होंगे जिनके भरण-पोषण का दायित्व मैंने जीवन भर उठाया है।"

वे दिन दूर नहीं है जब हरियाणा की मनीषीमण्डली हरियाणा में रचित सभी भाषाओं के समूचे साहित्य को खोज निकालेगी और उसकी भूमिका का पूर्ण ब्यौरा जुटा कर 'हरियाणा' में रचित साहित्य की भूमिका और उसका बृहद इतिहास दे सकेगी। हरियाणा के लोक साहित्य का जैसा सुन्दर अध्ययन डॉ० शंकर लाल यादव ने लिखा था वैसे कई अध्ययन ऊपर सुझाए गए ग्रन्थ की पीठिका का काम देंगे और फिर एक दिन हिन्दी साहित्य का राष्ट्रव्यापी इतिहास भी लिखा जाएगा जिसमें सभी प्रदेशों की देन का उचित समादर तथा वर्णन रहेगा। हरियाणा का हिन्दी साहित्य अपेक्षित रहा है किन्तु उसका अध्ययन आरम्भ हो गया है।

हरियाणा के हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की समस्या :—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम के अपने ग्रन्थ में हिन्दी साहित्य के नौ सौ वर्षों की लम्बी परम्परा को इतिहास की दृष्टि में चार कालों में विभक्त किया था। ये चार काल थे वीरकाल, सम्वत् 1050-1375; भक्तिकाल सम्वत् 1375-1700; रीतिकाल, सम्वत् 1700-1900; गद्यकाल, सम्वत् 1900-1984 तक। कुछ लोग इन कालों को प्रवृत्तियों के आधार पर नामांकित करना उचित नहीं समझते। उनका तर्क यह है कि ये प्रवृत्तिया चिह्नित सम्वत्सरों में बन्धी हुई नहीं हैं अपितु हरेक प्रवृत्ति अपनी सीमा का अतिक्रमण करती हुई सतत् आगे बढ़ती रही है। अतः यह काल-विभाजन भ्रामक है।

हरियाणा के हिन्दी साहित्य की अभी पर्याप्त छानबीन सम्भव नहीं हो पाई :—सभी कवियों और उनकी रचनाओं के नाम तक ज्ञात नहीं हैं। फिर साहित्य का इतिहास कवियों और उनकी रचनाओं की नामावलियों तक ही तो सीमित नहीं हुआ करता, न ही सभी नाम उसमें शामिल किए जाते तथा जा सकते हैं। रचना की व्यावहारिक उपयोगिता उसके काव्य स्वरूप तथा स्तर को भी आंकना होता है। कवि विशेष का उत्तरवर्ती कवियों पर प्रभाव भी उसके महत्व का निर्णय करने में एक आवश्यक 'तत्व' हुआ करता है। यह सब कुछ तभी संभव होता है जब ग्रन्थ सामने हों, कवि का जीवन वृत्त सुलभ हो, लोक मानस पर कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व की छाप का स्पष्ट निर्देश मिलता हो, इत्यादि अनेक झमेले हैं, जिन्हें पार कर पाने के पश्चात् ही किसी कवि विशेष को उस की रचना समेत साहित्य के इतिहास में स्थान दिया जा सकता है।

समुचित सामग्री के अभाव में हम किसी निर्णायक विभाजन की सीमाएं निश्चित करने के पक्ष में नहीं हैं, फिर सुविधा के लिए हमने अब तक की उपलब्ध सूचनाओं को मोटे तौर पर दो खण्डों में विभाजित कर लिया है। इन दोनों को 'प्राचीन साहित्य' और 'अर्वाचीन साहित्य' नाम दिया है। आरम्भ से बीसवीं शताब्दी (विक्रम की) के अन्त तक प्राचीन और तत्पश्चात् के काल को अर्वाचीन में रखा है। अर्वाचीन काल तो हिन्दी साहित्य के इतिहासों से मेल खाता ही है। प्राचीन काल आगे चलकर सुलभ जानकारी के आधार पर उपखण्डों में बंटा होगा। तब तक के लिए इस सारे काल को एक ही सामूहिक काल में अभिहित करना समीचीन होगा। इस कारण प्राचीन हरियाणा के हिन्दी साहित्य का अभी समुचित काल विभाजन सम्भव नहीं। अतः उसे प्राचीन अर्वाचीन में बांट लेना समीचीन होगा।

इसमें काल विभाजन के स्थान पूर्णतः ज्ञात और अज्ञात को सीमा रेखा बनाया गया है। प्राचीन काल की लगभग समस्त सामग्री अप्रकाशित है और अर्वाचीन की प्रकाशित।

हरियाणा के प्राचीन हिन्दी कवि :—हरियाणा की पुण्य भूमि उर्वरा है, वीर-प्रसू है, अन्नदा है और वृषभ-वल्लभा है, यह तो सभी जानते हैं किन्तु हिन्दी साहित्य के विकास तथा संवर्धन में हरियाणा का जो अमित योगदान रहा है उसका सामयिक अवलोकन अभी सम्भव नहीं हो पाया है। यह उस दिशा में एक पग आगे बढ़ने का प्रयास भर है।

पुरानी हिन्दी के कवि : सिद्धनाथ :—भारतीय साहित्य-चिन्तन, सदा से, किसी न किसी रूप में धार्मिक चेतना का ही अनुसरण करता आया है। यह और बात है कि हमारी धर्मपरायण बौद्धिकता कट्टर न हो कर अधिकतः उदार तथा समन्वय-पंथी रहती आई है। यूरोप वालों का सा धर्म-निरपेक्ष चिन्तन हमारे लिये कभी ग्राह्य नहीं हो पाया। हमारे काव्य का भीरू साहित्य तो स्वभाव से धार्मिक होना ही था, वीर साहित्य भी स्वत्व तथा स्वधर्म रक्षा की ही

भिति पर अवलम्बित है। हमने तो शृंगार की भी अत्यन्त मानवीय भावनाओं को, राधा-माधव के व्याज से, देवार्पित कर पावन बना लिया है।

सरस्वती-सिंचित हरियाणा की धरती का भारतीय धर्म साधना के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। अतः आश्चर्य नहीं होगा, यदि हरियाणा का पहला हिन्दी कवि भी धर्म-क्षेत्र की देन सिद्ध हो।

आदि कालीन हिन्दी काव्य का उद्गम अपभ्रंश के माध्यम से हुआ और अपभ्रंश काव्य में जैन-धर्मी कवियों की गति विशेष थी। हरियाणा का पहला हिन्दी कवि कौन था यह तो आज बताना सम्भव नहीं रह गया। अनुमान किया गया है कि वह कोई सिद्ध या नाथ रहा होगा। अस्थल बोहरादि संस्थानों की स्थिति इस अनुमान को श्रेय प्रदान करती है।

जन श्रुति में अस्थल बोहर मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य तथा गोरखनाथ के गुरुभाई चौरंगी नाथ की तप-स्थली रहा है। चौरंगी नाथ का जन्म पंजाब में स्यालकोट के राजा शालिवाहन के घर हुआ था। बारह वर्ष इन्हें माता-पिता से दूर एक गुफा में पाला गया। तत्पश्चात् जब ये माता-पिता से मिले तो इनकी एक नवयौवना विमाता इनके रूप पर रीझ गई। उसने इन्हें धर्मच्युत करने के लाख यत्न किए परन्तु सफल न हो पाई, तिक्ष्य रक्षिता के समान ही उसने भी प्रतिशोध की भावना से पति के पास झूठी चुगली खाई कि बालक राजकुमार ने बलात्कार किया है। राजा कामांध था ही उसने बिना कोई पूछ-ताछ किए पुत्र के हाथ-पाँव कटवा कर कुएँ में डलवा दिया, जहाँ से मत्स्येन्द्र नाथ द्वारा उसका उद्धार हुआ और वे जोगी हो गए। अस्थल बोहर के स्थान पर कहा जाता है उन्होंने गहन तप किया था। चौरंगी नाथ का अन्य नाम पूर्ण भक्त भी प्रसिद्ध है। विमाता द्वारा लांछन लगाए जाने की इनकी करुण-कथा लोक में खूब प्रसिद्ध है। हरियाणवी तथा राजस्थानी के अनेक लोक-कवियों ने इस गाथा को वाणी देकर अपने कृतत्व को सफल किया है। उनके अनेक पद नाथों, जोगियों में प्रचलित हैं।

चौरंगी नाथ की परम्परा में अस्थल बोहर के महन्त मस्तनाथ जी भी अच्छे कवि हुए हैं। इनका समय 18वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। इनकी ख्याति एक समाज सुधारक के नाते लोक मानस में गहरी पैठी हुई है। इनका रचा भी कोई ग्रन्थ नहीं मिला। विनती के पद लोगों को याद हैं। इनकी भाषा और अभि-व्यक्ति पर हरियाणवी लोक साहित्य की गहरी छाप है।

बाबा मस्तनाथ की शिष्य परम्परा आज भी अस्थल बोहर की गद्दी पर अधिकार बनाए है किन्तु फिर उनमें चौरंगी नाथ या मस्त नाथ के पाए का कवि हुआ दिखाई नहीं देता।

पुरानी हिन्दी या अपभ्रंश के जैन कवि पुष्पदंत हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में हिन्दी के जिन आदि-कालीन कवियों का उल्लेख हुआ है, उनमें कवि पुष्प या पुष्पदंत का भी नाम आता है। यह जैन मतावलम्बी थे। यद्यपि इनका कार्य-क्षेत्र माल्यखेट या मालवखेड़ (दक्षिण में) रहा तो भी आचार्य चतुरसेन शास्त्री के मत से यह रोहतक के किसी निकटवर्ती गांव में ही पैदा हुए थे। अतः हरियाणा को इनकी कार्य-भूमि होने का न सही, कम से कम जन्म-भूमि होने का श्रेय अवश्य प्राप्त है।

कवि पुष्प या पुष्पदंत जाति से ब्राह्मण और धर्म से जैन मतावलम्बी माने गए हैं। इनकी तीन रचनाएं प्रकाश में आ चुकी हैं। 'तिसठि महा पुरिस गुणालंकार' बम्बई से श्री पी०एल० वैद्य द्वारा सम्पादित हो कर, श्री मणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला में छप चुका है। इसी प्रकार इसी ग्रन्थ माला में वैद्य जी द्वारा ही सम्पादित होकर, एक अन्य रचना 'जसहर चरिउ' भी छपी है। तीसरी रचना "नाय कुमार चरिउ" का सम्पादन श्री हीरालाल जी ने किया है और यह भी देवेन्द्र जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो चुकी है। एक अन्य रचना महिमन स्तोत्र महाराजा पटियाला के संग्रह में है।

यद्यपि कवि पुष्प की गणना राज्याश्रयी कवियों के अन्तर्गत की जाती है तो भी इन पर चाटुकार होने का आरोप कहीं नहीं लगाया गया। इसके विपरीत इनकी ख्याति "अभिमान मेरु" के रूप में पाई जाती है। स्वाभाविक है कि वह हरियाणा में जन्मे होने के नाते आत्म-सम्मानावलम्बी रहे हों और उपजीविका के दाम अपनी स्वतन्त्रता बेचना इन्हें कभी न रुचा होगा जिस से राज्याश्रयजीवी कवियों में इन्हें अभिमानी कहा जाता होगा।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी ने इनकी वाणी से उद्धरण देकर एक स्थान पर लिखा है कि एक बार जब ये दुर्लंघ्य वन-पर्वतों को चीर कर अपने प्रशासक तथा माण्यखेट के मन्त्री श्री भरत के यहां पधारे तो इनके धूल-

धूसरित कृप शरीर को देखकर भरत ने पूछा "आप क्यों किसी सुन्दर विशाल नगर में प्रवेश करते' तो आपका कोरा उत्तर था कि मैं 'धनियों और सामान्तों की नाजबरदारी करने की जगह गिरी कन्दरा के कसेरु खाकर कानन की शरण लेना अधिक पसन्द करता हूँ।" ऐसे अभिमानी पुष्प को राजदरबार में 'अभिमानमेरु' न कहा जाएगा तो और क्या कहा जाएगा । इतना ही क्या कम है कि इन्हें कला-मर्मी राजाओं के यहां आश्रय मिलता रहा। वे परिवार मुक्त थे जिससे उनको किसी के सामने अधिक झुकने के लिये विवश नहीं होना पड़ता था।

कलाकार का स्वाभिमान उसकी कला में चार चांद लगाने वाला होता है। कवि पुष्प की रचना में ललित तत्व की प्रचुरता बताई गई है। यह उनके स्वभाव की सहृदयता का प्रमाण है। उनकी रचना में विरह का वर्णन अति सुन्दर हुआ है, ऐसा आलोचकों का मत है। इससे उनके कवि-चित्त की सूक्ष्मान्वीक्षणता तथा आर्द्र एवं व्यापक सम्वेदना का पता चलता है। यह गुण उन्हें महाकवियों की श्रेणी में ला खड़ा करता है।

पुष्प का रचना काल 959–972 ई० माना गया है। यह राष्ट्र कूट कृष्ण के समकालीन कहे जाते हैं। शुक्ल जी ने इन्हें सम्वत् 1029 में उपस्थित माना है। डा० प्रेम सागर जैन ने भी शुक्ल जी के मत का ही प्रतिपादन किया है।

पुष्पदंत ने "नाय कुमार चरिउ" में अपनी सरस्वती को 'नि:शेष देशभाषा को बोलने वाली' कहा है। डॉ० प्रेम सागर के मत में पुष्पदन्त अपभ्रंश को ही देशभाषा मानते थे किन्तु डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल ने धर्म-शास्त्री नारद का मत देकर इसे पुरानी हिन्दी माना है। वस्तुत: पुष्पदन्त ऐसे युग के कवि थे जब अपभ्रंश के कवि-गण अपनी वाणी को जनभाषा का पुट देने लगे थे। अपभ्रंश उन दिनों लोक की सहज भाषा न रहकर साहित्य की परिनिष्ठ भाषा बनने लगी थी। तत्कालीन सुविज्ञ कवियों की बुद्धि पर भले ही अपभ्रंश का साम्राज्य छाया हो परन्तु उनका मन बरबस उदीयमान जन-संस्कृति की द्योतक पुरानी हिन्दी की ओर झुक गया था।

हरियाणा के पुरानी हिन्दी के पुजारी तथा अपभ्रंश के उन स्वनामधन्य कवियों में जिन का कुछ उल्लेख प्राप्त है, यह सर्वोपरि हैं।

जैन मतावलम्बी हिन्दी कवि :—हरियाणा के जैन कवियों के विषय में बहुत ही कम समाचार मिले हैं।

डॉ० प्रेम सागर जैन ने अपने ग्रन्थ "हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि" में जिन कवियों का उल्लेख किया है उनमें से हरियाणा के कवि बूचराज प्रमुख कहे जा सकते हैं।

कवि बूचराज ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में केवल इतनी सूचना दी है कि वे मूल संघ के भट्टारक पद्मनन्द की परम्परा से सम्बद्ध हैं तथा 'संतोष तिलक जयमाल' नाम की अपनी रचना में उसकी रचना हिसार में हुई दर्ज की है।

इनके अन्य नाम ब्रह्मा बूचा, वल्ह, बील्ह तथा वल्हव आदि भी हैं। ये ब्रह्मचारी थे और घूम फिर कर उपदेश दिया करते थे। डा० प्रेम सागर इन्हें, इनकी भाषा में राजस्थानी प्रभाव देखकर राजस्थान निवासी मानने के पक्ष में हैं। इनके ग्रन्थों से इनका रचना काल 16वीं शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

कवि बूचराज की रचनाओं का विवरण इस प्रकार दिया गया है :—

1. "मयणा जुझ" में, कामदेव और ऋषभदेव का युद्ध वर्णन किया गया है। कामदेव बसंत की सेना लेकर आया है और ऋषभदेव आत्म-संयम से उसका मुकाबला करते हैं। अन्त में जीत संयमी ऋषभदेव की ही होती है।

2. दूसरी रचना है "संतोष जय तिलक"। इस ग्रन्थ की रचना 1551 के चौमासा में हिसार नगर में की गई थी। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख ग्रन्थ में किया गया है।

"संतोषहं जय तिलउ पंपिउ हिसार नयर मंझ में" ॥ 120 ॥ तथा रचना सम्वत् का भी साफ उल्लेख किया गया है।

"संवत् पनरई इक्याण, भद्रवि सिव पाक्खि पंचमी दिवसे
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेउ तहं जाणि बंभणा मेण ।।" ।। 121 ।। इस रचना के कुल 123 पद हैं।

3. तीसरी रचना है "चेतन पुद्गल ढमाल"। इस रचना में 136 पद हैं। इस रचना द्वारा चेतन को विविध प्रकार से सावधान कर पुद्गल की संगति से हटा कर चिदानन्द की भक्ति की प्रेरणा दी गई है।

4. चौथी रचना है "टांडाणा गीत"। यह वणजारा जाति के लोक गीतों के ढंग की रचना है। इस में जीवन का रहस्य वणजारा वृत्ति के रूपक से बताया है। मानव जीवन एक व्यापार है। मनुष्य वणजारा है। कर्म-केलि उस की पूंजी है और होशियार रह कर नफ़ा कमाना है। नफ़ा सत्याचरण में तथा संयम में ही मिलता है।

5. पाँचवीं रचना है "नेमि नाथ वसंतु" जिस में श्रीनेमिनाथ के अकस्मात् वैराग्य लेने पर, प्रथम वसन्त आगमन के समय उन की विरहिनी पत्नी राजोमती की मनोदशा का वर्णन है । इसी ग्रन्थ में लिखा है कि कवि बूचराज मूल संघ के भट्टारक पद्म नन्द की परम्परा में हुए थे।

6. छटी रचना का नाम है "नेमिश्वर का बारह मासा" । यह राजोमती की विरहावस्था का वर्णन है। राजोमती ने भी पीछे वैराग्य ले लिया था।

7. सातवीं रचना कवि के स्फुट पदों का संग्रह है। इन पदों के नायक हैं जैन आचार्य तथा मुनि जन। कुछ पदों में सहज उपदेश भी है।

8. श्री अगर चन्द नाहटा ने कवि वल्ह की एक रचना 'कूकड़ा मंजारी चउपई' प्रकाशित की है। यद्यपि कवि बूचा का भी एक नाम वल्ह रहा है तो भी ये किसी दूसरे कवि की रचना जान पड़ती है क्योंकि उसका रचना काल 1662 वि० है। कवि के पिता का नाम बाल और निवास का गाँव लाटोह है।

श्री हेम विजय सूरी अकबर द्वारा "सवाई हीर विजय" की उपाधि से विभूषित श्री विजय सेन सूरी के शिष्य थे। ये प्रज्ञाचक्षु थे और हिन्दी तथा संस्कृत में अच्छी कविता कर लेते थे । इनकी रचना में हृदय की गहरी अनुभूति तथा प्रौढ़ कवित्व झलकते हैं। अपने गुरु सवाई हीर विजय तथा दादा गुरु श्री हीर विजय सूरी के स्तवन तथा अन्य स्फुट विषयों पर रचे इनके अनेक पद मिलते हैं । इनकी एक रचना 'पदनेमि नाथ' भी मिलती है ।

भट्टारक रत्न कीर्ति का जन्म वागड़ खण्ड के धोधा ग्राम में 1600 वि० में हुआ। पिता का नाम सेठ देवी दास तथा माता का सहजलदे था। बाल्यावस्था में ही इन्हें प्रतिभावान देखकर भट्टारक अभय नन्द ने अपना शिष्य बना लिया। ये बड़े रूपवान, चरित्रवान् और बुद्धिमान् निकले। सं० 1613 में भट्टारक की पदवी पर अभिषेक हुआ और 1656 तक भट्टारक की गद्दी को सुशोभित करते रहे। भट्टारक रहते हुये भी इनका स्वभाव बड़ा सरस तथा द्रवणशील था। इनका शिष्य परिवार काफी बड़ा था। सं० 1659 में अपने एक शिष्य कुमुद चन्द को भट्टारक की गद्दी सौंप कर आप वीतराग हो गये। इनकी रचनाओं में राजुल देवी विरह, नेमिनाथ फागुसाक्षि तथा नेमि बारहमासा प्रमुख हैं। बारह मासे की पुष्पिका में उसके हांसोट (हांसी कोट) में रचे जाने का स्पष्ट उल्लेख है।

सिरसा निवासी कवि मालदेव ने सं० 1612 के आसपास 'कल्पान्तर वाच्य' नाम की एक संस्कृत रचना की थी, इसी आधार पर उनका समय 17वीं शताब्दी का पूर्वार्ध आंका जाता है। ये संस्कृत, प्राकृत तथा राजस्थानी के अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी में जैन कथानक तथा लोकाख्यान विषय पर इनकी कई रचनाएं बताई जाती हैं।

इसी शताब्दी के एक कवि आनन्द घन का भी उल्लेख मिला है। कवि आनन्द घन का दूसरा नाम लाभानन्द भी बताया गया है। इनका जीवन-वृत सुलभ नहीं। किन्तु यह 1680 से 1745 सम्वत् तक विद्यमान रहे ऐसा इनकी रचना के आधार पर अनुमान किया गया है। यह सिरसा के आस पास किसी गांव के थे। यह भी अग्रवाल जाति के बनिया ही थे।

श्री मनसुख लाल रजबी भाई मेहता ने इनके पदों की भाषा को आधार बना कर इन्हें गुजरात निवासी घोषित किया था, जिसका खण्डन आचार्य क्षिति मोहन सेन द्वारा किया गया। आचार्य सेन इन्हें राजस्थान निवासी मानते थे। इनका अन्त समय भी मेड़ता में बीता था। यहीं पर इनका साक्षात्कार मुनि यशो विजय जी से हुआ। मुनि जी ने इनकी उपमा में एक अष्टपदी की रचना की थी। यह अष्टपदी प्रकाशित भी हो चुकी है। परन्तु श्री नाथू राम प्रेमी साक्षात्कार की कथा को सत्य नहीं मानते।

आनन्द घन जी की शिक्षा-दीक्षा जैन मार्ग में हुई थी। जैन तत्व के प्रति उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी तो भी श्रुतदेवकी के उपरांत जैन धर्म में फैलने वाली दम्भ और पाखण्ड की धांधली को उन्होंने कभी नहीं माना।

आचार्य सेन के मत से आनन्द घन पर मरमिया सहजवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था और उन्होंने जैन वेष त्याग कर मरमी साधुओं का आचरण अपना लिया था। वे यती विवर्जित दिलरुबा, सितार आदि संगीत यंत्र हाथ में लेकर घूमा करते थे। किन्तु यती ज्ञान सागर की रची एक टीका के अनुसार वे जीवन पर्यन्त जैन वेषधारी ही रहे थे।

इनकी एक रचना आनन्दघन **बहत्तरी** सत्वावली बहुत प्रसिद्ध है। सं० 1705 में श्री बुद्धिसागर ने आनन्दघन पद संग्रह को सम्पादित किया था। यह ग्रन्थ अब छप चुका है।

कवि घन आनन्द नाम के एक और कवि जो पंजाब के रहने वाले थे, तथा जिनके रचे गुरुवाणी के अनेक टीके यत्र-तत्र मिलते हैं इनसे भिन्न ही थे। यह हिन्दी के प्रसिद्ध प्रेमी कवि घनानन्द से भी भिन्न हैं। इसी प्रकार यह नन्द गांव के घनानन्द कवि, जिनका साक्षात्कार चैतन्य महाप्रभु से हुआ था तथा कोकमंजरी के रचयिता आनन्द कवि से भी भिन्न हैं।

कवि रूप चन्द का समय 1680 से 1694 तक रचना काल के रूप में दिया गया है। यह कुरु प्रदेश के सलेमपुर नाम के गांव में उत्पन्न हुए थे, ऐसा इनकी रचनाओं में उपलब्ध अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध होता है। इनके पिता का नाम भगवान दास बताया गया है। यह जाति के अग्रवाल बनिया थे।

श्री नाथु राम प्रेमी ने चार कवि, रूप चन्द नाम के गिनाए हैं। एक वे जिन के साथ बैठकर कवि बनारसी दास अध्यात्म चर्चा किया करते थे। दूसरे वे जिनसे बनारसी दास ने 'गोम्मट कांड' पढ़ा था। तीसरे संस्कृत कवि "समव-शरणपाठ" तथा चौथे "समयसार" नाटक के टीकाकार हैं। डॉ० प्रेम सागर प्रथम तथा द्वितीय को अभिन्न मानते हैं तो नाथु राम प्रेमी दो भिन्न व्यक्ति। दूसरे कवि रूप चन्द को बनारसी दास ने 'गुरु' अथवा 'पाण्डे' संज्ञाओं से अभिहित किया है। उन दिनों भट्टारकों के शिष्य पांडे कहलाते थे।

कवि रूप चन्द पांडे ने काशी में शिक्षा पाई थी। काशी से लौटते समय वे दरियापुर में तिहुनाशाह के मन्दिर में ठहरे थे। वहां केवल भट्टारक और उनके प्रशिष्य ही ठहर सकते थे। पांडे रूप चन्द का देहावसान सं० 1694 में हुआ।

इनकी रचनाओं के निर्माण काल का उपलब्ध प्रतियों के आधार पर निश्चित कर सकना सम्भव नहीं। इन्होंने अपने जीवन-वृत्त के विषय में भी कुछ अधिक सूचना नहीं दी।

उपलब्ध रचनाओं के नाम इस प्रकार दिये गये हैं :—

(1) परमार्थी दोहा शतक अन्य नाम रूप चन्द शतक
(2) गीत परमार्थी
(3) मंगल गीत प्रबन्ध
(4) नेमि नाथ रासा
(5) लघु मंगल
(6) खटोलना का गीत
(7) सोलह स्वप्न फल
(8) जिन स्तुति

पांडे जी के दृष्टांत बड़े भव्य तथा वितण्डावादियों का मुंह बन्द करने वाले होते थे। उन में बिम्ब-प्रतिबिम्ब

भाव बड़ी सफलता से समुचित रूप में प्रतिबिम्बत होता रहता है। रचना शैली में कुछ ऐसा सौन्दर्य होता है कि आज भी पाठक को आकर्षित किये बिना नहीं रहता। भाषा प्रसाद गुणयुक्त और सीधे-साधे भाव मर्म को रस विभोर कर देने वाले होते हैं। उनमें निर्गुणवादी सन्तों के समान उपदेश देने की प्रवृति भी कभी-कभी उभरती दिखाई देती है।

बूड़िया के बांसल गोत्रीय अग्रवाल कवि भगवती दास ने 23 काव्य ग्रन्थ रचे थे। यह भट्टारक महेन्द्र सेन के शिष्य थे।

भगवती दास के पिता का नाम था बिसन दास, उन्होंने वृद्धावस्था में मुनिव्रत ले लिया था। पीछे भगवती दास अपने जन्म के गांव बूड़िया से उठकर जोगिनी पुर जा बसे थे। मोती बाजार, दिल्ली के पार्श्व में मन्दिर के पास ही इनका एक मकान था। भगवती दास ने अपनी प्रत्येक रचना में महेन्द्र सेन का उल्लेख किया है। कवि की अधिकांश रचनाएं जहांगीर के शासन काल में सम्पन्न हुई थीं। कवि ने जहांगीर की प्रशंसा भी की है। उन की रचनाओं में 20 से अधिक साहित्यिक हैं जो आध्यात्मिकता और भक्ति से भरी हैं। भाषा सरल और सरस है।

उन की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

1. **सुमति रमणी चूनरी** :—1680 में बूड़िया में रची गई। यह 35 पद्यों का एक रूपक है, जिस में सुमति रमणी की चूनरी ज्ञान-सलिल में भिगो कर 'सम्यकत्व' के रंग में रंगा है।

2. **सीता सत** :—एक खण्ड काव्य है जिसकी रचना 1684 में हुई। इस में रावण तथा मन्दोदरी के मानसिक घातों-प्रतिघातों का सुन्दर चित्रण है।

3. **लघु सीता सत** :—1688 में रचा बारहमासा की पद्धति में सीता, मन्दोदरी का सम्वाद। मन्दोदरी, सीता को प्रेरणा देती है कि वह रावण को पति रूप में वर ले। सीता सतीत्व पर अडिग रहती है।

4. **मनकरहा रास** :—मन को ऊंट से उपमा देकर रचा गया एक रूपक-काव्य जिसमें मन के ऊँट को संसार के मरुस्थल में भटकना दिखाया गया है।

5. **जोगी रास** :—38 पद्यों में इन्द्रिय-सुख में भटकते जीव को घट-घट वासी शिव के भजन का उपदेश है।

6. **चतुर बनजारा** :—35 पद्यों का रूपक जिसमें जीव को बनजारे की भूमिका में चित्रित किया है।

7. **वीर जिनिंद गीत** :—भगवान् महावीर की स्तुति।

8. **राजमती नेमीसुरढमाल** :—21 पद्य राजमती विरह वर्णन।

9. **टाडाणां रास** :—आध्यात्मिक रचना, जिसमें ज्ञान की प्राप्ति, स्वच्छ जीवन तथा ध्यान धारण द्वारा बताई है।

10. **मृगांक लेखा चरित** :—सं० 1700 में हिसार नगर में रचित चन्द्रलेखा और सागर चन्द की प्रेम कथा। अन्य रचनाओं के नाम ये हैं :—

11. आदित्य व्रत रासा ; 12. पखवाड़ा रास ; 13. दस लक्षण ; 14. खिचड़ी रास ; 15. साधु समाधि रास ; 16. रोणणीव्रत दास ; 17. द्वादश अनुप्रेक्षा ; 18. सुगन्ध दशामीकक्ष ; 19. आदित्यवार कथा ; 20. अनथमी कथा ; 21. सज्ञानी ढमाल ; 22. आदित्य नाथ स्तवन् ; 23. शांति नाथ स्तवन् ;

ये ग्रन्थ लघुकाय तथा साधारण कोटि के हैं ।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा चालित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज में कवि राइ चन्द्र जैन की रचना "सीता चरित्र" की कई प्रतिलिपियां उपलब्ध हुई हैं। रचना रविसेण के पद्म-पुराण के आधार पर की गई है। रचना सम्वत् 1713 वि० दर्ज है । यह ग्रन्थ लखनऊ और बाराबांकी के जैन मन्दिरों में सुरक्षित बताया गया है। ऐसे ही नारनौल निवासी लूनराज के पुत्र कवि खड़गसेन की रचना "त्रिलोक दर्पण" मिली है। ये भी 1713 के आसपास वर्तमान थे और आगरा के चतुर्भुज वैरागी थे। इन के पितामाह मानू सिंह तथा बड़े भाई धर्मदास थे। सं० 1742 में कवि लाभवर्धन ने सिरसा के स्थान पर 'धर्म बुद्धि चौपाई रास' की रचना की थी जिसकी सातवीं ढाल में सूरदास की एक पंक्ति टेक के रूप में आई है। कवि नत्थ मल्ल बिलाला ने 'नाग कुमार चरित्र' (1810 वि०) जम्बू स्वामी चरित्र (1824 वी.), जीवनधर चरित्र (1834 वि०) आदि कई सुन्दर ग्रन्थों की रचना की थी। इनकी रचना में भावावेश और भाषा की सरल सुखद अभिव्यक्ति पर जोर रहता है। श्री कृष्ण विरह का प्रसिद्ध "बारहमासा" लिखने वाले भक्त नत्थ मल्ल इनसे भिन्न व्यक्ति हैं ।

पानीपत के कवि हरि जी मल्ल जैन ने 1842 वि० के आसपास 'चर्चाशतक की बचनिका' नाम से एक रचना की थी । बचनिका गद्य-पद्य मिश्रित शैली में लिखी गई है । इनके गुरू का नाम विदि चन्द लिखा है। उक्त ग्रन्थ की 1912 वि० तथा 1955 वि० की लिखी प्रतियां नागरी प्रचारिणी सभा को खोज में प्राप्त हुई हैं। ये प्रतियां आबूपुर तथा बारावंकी के जैन मन्दिरों में सुरक्षित हैं ।

रिवाड़ी के कवि लाल चन्द जैन का रचा एक ग्रन्थ "संमेद शिखर महात्म" नाम का मिला है। इस ग्रन्थ की रचना 1842 वि० में हुई थी । इसमें जैन तीर्थ "संमेद पर्वत शिखर" का महात्म वर्णन किया गया है। ग्रन्थ की एक हस्त-लिखित प्रति मुजफर नगर के जैन मन्दिर में सुरक्षित बताई गई है।

कुरुजांगल प्रदेश के खतौली ग्राम में उत्पन्न कवि हरगुलाल जैन की रचना "सज्जन चित्त विलास वल्लभनामा" भी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा संचालित हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के सिलसिले में मिली है। कवि हरगुलाल की जाति वैश्य थी वे जीविका के लिये सहारनपुर में रहते थे। श्रुतियों में उनका प्रवेश पंडित बालमुकुन्द द्वारा करवाया गया था। जैसा कि पहले उल्लेख हुआ है कि श्री अगर चन्द नाहटा द्वारा एक लघु रचना कूकड़ा मंजरी चौपाई रास नाम की प्रकाशित करवाई गई है। इस रचना की हस्तलिखित प्रति उन्हें पूना की भण्डारकर रीसर्च इन्स्टीच्यूट के संग्रह से मिली थी। रचना में 178 पद्य हैं। प्रमुख छन्द चौपाई है, कहीं-कहीं दोहा और वस्तु छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। नाहटा जी ने इसका रचना काल 16 वीं शताब्दी अनुमानित किया है परन्तु रचना में ही दिया गया रचना काल 1662 भी दर्ज है। कवि वल्लह के पिता का नाम रचना में ही 'पाल' दिया गया है और उसका गांव लाटौह बताया गया है। उक्त रचना में नीति की विषद चर्चा कूकड़ और मंजरी के माध्यम से हुई है। भाषा में अपभ्रंश और उदीयमान लोकभाषा का अच्छा मिश्रण है। उसमें भी लोक भाषा का पलड़ा भारी दिखाई देता है। ये कवि बूचराज से, जिनका एक नाम वल्लह भी है, भिन्न प्रतीत होते हैं ।

श्री सत्यपाल गुप्त ने एक जैन कवि सुन्दर दास का उल्लेख किया है और उनकी रचनाओं में सुन्दर शृंगार, सुन्दर बिलास, सुन्दर सतसई तथा पाखण्ड पंचाशिका आदि की गणना की है। इस कवि का उल्लेख उन्हें नागरी प्रचारिणी सभा की तीसरी खोज रिपोर्ट में मिला है, जहां इन्हें करनाल जिले का रहने वाला बताया गया है। कम से कम सुन्दर शृंगार का नाम इनकी रचना सूची में आ जाने से सन्देह का अवसर उत्पन्न हो गया है। सुन्दर शृंगार के रचयिता कवि महाराजा सुन्दर दास से हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक भली-भांति परिचित हैं। वे शाहजहां के प्रसिद्ध दरबारी थे और न वे साधु और न ही जैन मतावलम्बी थे ।

सूफी तथा अन्य पीर-फ़कीर हिन्दी कवि :—फ़रीद साधारणत: पंजाबी की उप-भाषा लहंदा के कवि माने जाते हैं किन्तु उन्होंने हिन्दी को भी, अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में, अपनाया था। शेख फ़रीद के दीक्षा गुरु दिल्ली

के ख्वाजा कुतुबुद्दीन कहे जाते है। ख्वाजा साहब ने शेख फरीद को कुछ समय के लिये सिरसा और हांसी की पीरी की बलायत पर नियुक्त किया था। ख्वाजा साहब का विसाल जिस समय हुआ था शेख फरीद उस समय हांसी में ही उपस्थित थे। यहीं के लोगों की अपने में अधिक अनुरक्ति देख कर, इस भय से कि कहीं उपासकों की अतिरंजित रागात्मक भावना उन्हें अहमन्यता का शिकार न कर दे, आप पाकपटन आ गये थे।

शेख जी की हिन्दी रचनाएं सम्भवतः उन के सिरसा, हांसी और दिल्ली वास के दिनों की ही कृतियां हैं। गुरु ग्रन्थ साहब में शेख फरीद के दो पद भी हैं। जहां फ़रीद जी के श्लोक लहंदा भाषा में हैं वहां पदों की भाषा पर हिन्दी की छाप स्पष्ट है। कुछ अन्य संग्रहों में फ़रीद की हिन्दी प्रधान कृतियां भी मिलती हैं। किन्तु इन रचनाओं की प्रामाणिकता अभी सन्देह का विषय है और स्वतन्त्रतान्वीक्षण की अपेक्षा रखती हैं।

शेख जी की एक गद्य रचना भी मिलती है जिसमें तुक का आग्रह है। यदि यह किसी अन्य शेख फ़रीद की रचना नहीं तो अवश्य हिन्दी गद्य का सब से पुराना नमूना सिद्ध होगा। अब तक राम प्रसाद निरंजनी का योगवासिष्ठ खड़ी बोली गद्य की सब से पुरानी रचना मानी जाती है। शेख जी रचित 'पद्धति नामा' उससे शताब्दियों पहले की रचना है। वस्तु के आधार पर इ शेख फ़रीद की कविता से अलग कर पाना संभव नहीं। फिर भी इतने पुराने समय में इतनी सुष्ठु भाषा का प्रयोग सन्देह उत्पन्न करता है। कविता में कहीं भी उस प्रकार की भाषा का न होना भी द्रष्टव्य है। शेख फ़रीद नाम के दो कवि, पिछले दिनों गुजरात में भी मिले बताये जाते हैं। शेख जी खड़ी बोली के आदि गद्य लेखक न भी सिद्ध किये जा सकें, तो भी उनके हिन्दी प्रधान पदों को तो उन के सिरसा और हांसी निवास के समय की रचना मानने में विशेष नानु-नच की गुंजायश नहीं।

शेख फ़रीद का जन्म मुलतान के समीप खेतवाल नाम के कस्बा में हुआ। इनके पिता महमूद गजनवी के भानजे थे और माता अली के वंशज तथा मुलतान के रईस मौलाना वजीहुद्दीन की पुत्री थीं। यह पहले मुलतान के मौलाना मिनहीजुद्दीन के और फिर ख्वाजा कुतुबुद्दीन के शिष्य हुए थे। अजमेर के पीर ख्वाजा मुईनुद्दीन, ख्वाजा कुतुबुद्दीन के मुर्शद थे, फरीद ने उनके चरणों में भी कुछ दिन बैठ कर शिक्षा ग्रहण की थी। इन के गुरु ने इन्हें हांसी का वली नियत किया था। दिल्ली के निजामुद्दीद औलिया को आप के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। यह शेखूलइसलाम की उपाधि से विभूषित थे। जहां मुलतान की भूमि का नाम इन के नाम से उजागर हुआ वहीं हरियाणा को भी इनकी शिक्षा-स्थली होने का सौभाग्य प्राप्त है।

मुसलमान सूफी कवियों ने जन-मानस तक पहुंचने के लिये स्थानीय लोक भाषाओं को अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। शेख फ़रीद इस परम्परा में अग्रणी थे। उन के पीछे आने वालों में अनेक ऐसे हैं जिन्होंने हिन्दी को अपनाया था।

शेख फ़रीद के बाद हरियाणा के सूफी फकीरों में दूसरा प्रमुख नाम शेख शरफुद्दीन पानीपती का है, यह हजरत शेख बू अली शाह कलन्दर के लकब से प्रसिद्ध थे।

शेख शरफुद्दीन, बू अली शाह कलन्दर के पूर्वज इरान और इराक से आकर पानीपत में बसे थे। इन के घराने की भाषा फारसी थी। भारत के जन्म-जात होने से शेख जी को नित्य प्रति के प्रयोग की हिन्दी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान हो गया था, अतः फारसी के साथ-साथ आप हिन्दी में भी कविता करते थे। इनकी भाषा सरल, दैनिक बोलचाल की और मुहावरेदार होती थी जो लोक मानस में सीधी बैठती थी। न तो इन्हें फारसी के अपच और अस्वाभाविक शब्दों को थोपने का शौक था और न ही वे संस्कृत की भारी, मसनुई विद्वत्ता बघारने वालों की सी, शब्दावली का प्रयोग करने के पक्षपात का आग्रह करते थे।

शेख जी सूफी विचारधारा की चिश्ती परम्परा के अन्तर्गत कलन्दरी शाखा के मुखिया थे। विरह वेदना का वर्णन सूफियों का प्रिय विषय रहा है। शेख जी भी इसका अपवाद नहीं थे। इनकी विरह भावना बड़ी तीव्र तथा प्रगल्भ होती थी और आप उसको अत्यन्त मार्मिक ढंग से शब्दों में अभिव्यक्ति दे पाने में समर्थ थे।

लोक में इन के अनेक दोहे प्रसिद्ध हैं। किन्तु अभी तक आप का रचा कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया न ही आप के दोहों का कोई संग्रह ही मिल पाया है। इन की रचना का लिखित सूत्र तथा मौखिक स्रोत द्वारा संकलित

यदि कोई संकलन प्रस्तुत किया जा सके तो तत्कालीन भाषा विकास तथा भाषा के ऐतिहासिक स्वरूप का अध्ययन करने वालों के लिये बड़े महत्व की वस्तु सिद्ध होगा।

दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन तुगलक को इन पर बहुत श्रद्धा थी। उसने अपने पुत्र शहज़ादा मुबारक को शिक्षा-दीक्षा पाने के लिये इन की सेवा में भेजा था। शहज़ादा बहुत कुशाग्र बुद्धि तथा आज्ञाकारी था। पीर को उस से बेहद प्यार था। एक बार जब वह कहीं जाने लगा तो शेख जी ने उसे निम्नलिखित दोहा भेजा :—

सजन सकोरे जायेंगे नैने मरेंगे रोई।
विधना ऐसी रैन कर भोर कभूं न होई।

प्रो० महमूद शीरानी ने लिखा है कि यह दोहा मुबाज़ा खां को सम्बोधित है। उन्होंने साथ ही इस दोहे का कवि द्वारा किया गया फारसी अनुवाद भी उद्धृत किया है :

मन शुनीदम यारे मन फर्दा खद राहे शताब।
या इलाही ता कयामत बा न्यायद आफ़ताब।।

एक और दोहा भी प्रसिद्ध है :—

पी फटतहिं सखि सुनत हों पिय परदेसहि गौन,
पिय में हिय में होड़ है पहले फटि है कौन।

शीरानी के कथन के अनुसार दोहों में ही इनकी दिल्ली के शेख निज़ामुद्दीन औलिया के साथ हुई एक गोष्ठी का विवरण मिलता है। यह, अथवा कोई दूसरा हिन्दी ग्रन्थ इनका रचा हमारे देखने में नहीं आया। फ़ारसी में इनकी ग़ज़लों का एक दीवान और एक मसनवी श्रीखमपुर के नवाब श्री रहमतुल्ला खां शखानी के संग्रह में देखने को मिली थी। शेख शरफ़ुद्दीन साहब का जन्म सम्वत् 1263 वि० में हुआ बताया जाता है।

एक दूसरे मुसलमान फकीर शेख जमालुद्दीन हांसवी थे। यह भी नसल से ईरानी थे। शेख जमाल अपनी रचना में उस प्रकार हिन्दी को रचा नहीं पाए जिस प्रकार कि शेख बू-अली शाह कलन्दर। सम्भवतः इनका जन्म और लालन-पालन भारत में नहीं हुआ था, अतः हिन्दी इन्होंने मां के दूध के साथ नहीं प्राप्त की थी। इनकी रचना में हिन्दी और फारसी की शब्दावली अलग-अलग एक ही छन्द के एक ही चरण में कन्धे से कन्धा जुटा कर चलती दिखाई देती है। तुक का पहला आधा हिस्सा तो फारसी में मिलता है और अन्त का आधा अंश हिन्दी में। तुकांत का अनुप्रास तो सर्वत्र हिन्दी में प्रयोग किया मिलता है। यह ढंग, भारतीय मुसलमान लेखकों को अमीर खुसरो की देन समझा जाता है।

शेख जमालुद्दीन, अपनी काव्य-छाप 'जमाली' करते थे। इनका रचा कोई ग्रन्थ अथवा कोई सम्पादित संग्रह नहीं मिला है। जहां-तहां पुराने घरानों में संग्रहीत सूफी कवियों की वाणी के साथ-साथ इन के भी कतिपय छन्द मिल जाते हैं। इन की रचना का छन्द विधान ग़ज़ल की परम्परा के अनुसार है।

शेख जमाली, बादशाह हुमायुं के समकालीन बताए जाते हैं।

शेख अब्दुलकद्दूस गंगोही के पौत्र शेख अब्दुलनबी की कबर नारनौल में पाई जाती है, इस आधार पर कुछ विद्वान इन दोनों को ही नारनौल में उत्पन्न हुआ मानते हैं। ये दोनों अच्छे सरस कवि थे। इनके दोहे आदि बड़े-बूढ़ों को पर्याप्त मात्रा में कण्ठस्थ हैं किन्तु इनकी रचना का (हिन्दी भाषा में) कोई संग्रह नहीं मिला। ये 15वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुये थे।

अकबर का शासन काल भारतीय इतिहास की उन गिनी-चुनी सुखद घड़ियों की निधि है जिन में हमारी आत्मा ने मानवता को पहचाना था। यही वह काल है जिस में हिन्दु देवताओं के प्रति मुसलमान कवियों ने श्रद्धा के फूल समर्पित किये थे। रसखान और ताज इसी स्वर्ण-युग की देन हैं।

रसखान के विषय में तो अन्तःसाक्ष्य से ही यह निर्विवाद रूप से सिद्ध किया जा सका है कि वे मुगलराज्य वंश से संबंधित थे। किन्तु ताज के विषय में अभी विवाद बना है। कुछ दिन तो यह चर्चा भी रही कि ताज पुरुष है

अथवा स्त्री । अब खैर यह तो सब मान गये हैं कि ताज वस्तुत: स्त्री ही थी, पुरुष नहीं।

गत वर्षों में हुई शोध के आधार पर यह माना गया था कि ताज झुंझनूं के चौहान वंशी राजा फदन खां की पुत्री तथा बादशाह अकबर की बेगम थी। किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि फदनखां के वंशज कवि जान कायम-खानी अपनी रचना में कहीं पर भी ताज से अपनी रिश्तेदारी की बात नहीं कहते। यद्यपि 'क्यामखां रासो' में अकबर के उक्त घराने में विवाह की बात स्पष्ट लिखी मिलती है। यदि यह ताज बीबी अकबर की पत्नी से अभिन्न होती तो, जान कवि को जो स्वयं एक उत्तम कवि थे यह कहते संकोच न होता कि उन की पूर्वज ताज बीबी एक अत्यन्त सफल कवि तथा परमादृत कृष्ण भक्त थीं।

ताज बीबी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे हज करने जा रही थी और मथुरा में ठाकुर जी के द्वार पर भक्तों की भीड़ देख कर मचल गईं और आग्रह किया कि जिस देवता के दर्शनों के अभिलाषी इतने लोगों की भीड़ है उसके द्वार पर से बिना दर्शन किये वे कदापि आगे न बढ़ेंगी। उन्हें बताया गया कि उनका इस्लाम धर्मानुयायी होना उन के रास्ते में रोक है और उन्हें अपने पैतृक धर्म का मार्गी रहते मन्दिर में प्रवेश पाने का अधिकार नहीं मिल सकेगा। किन्तु उन्होंने हठ धारण कर लिया और प्रण किया कि श्री ठाकुर जी का दर्शन किये बिना वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगी। फलत: उन की आशा पूर्ण हुई और वे फिर मुरली मनोहर की ही भक्त हो के रह गईं। ताज की रचना से अन्त:साक्ष्य के रूप में उन की यह तुक पेश की जाती है—

हौं तो मुगलानी पै हिन्दवानी ह्वै रहूंगी मैं।

ताज बीबी ने 1642 के आसपास गोस्वामी विट्ठल नाथ जी का शिष्यत्व ग्रहण किया था। गोकुल के पास ही इन की समाधि बताई जाती है। रसखान की भी समाधि इन के निकट ही है।

इनका एक ग्रन्थ "बीबी बांदी का झगरा" प्रसिद्ध है। गुजरात के हिन्दी सेवी कवि गोविन्द गिल्ला भाई को एक और ग्रन्थ भी इनका रचा मिला था। गोविन्द जी इन्हें करौली वासिनी मानते हैं जबकि मिश्रबन्धु इनकी रचना में पंजाबी शब्दों का प्राचुर्य देख कर इन्हें पंजाबिन बताते हैं।

हमारा विश्वास है कि यह हरियाणा की थीं। हरियाणा ब्रज और पंजाब दोनों के बीच में स्थित है और यही पंजाबी भाषा तथा ब्रज की संस्कृति के व्यापक मिलन का अवसर हो सकता है। हमारी दृष्टि में कवि ताज, अकबर की बेगम न हो कर किसी सरदार से संबंधित थीं वरना लोकश्रुति से यह बात छुपी नहीं रह सकती थी। अकबर का युग ऐसी किसी श्रुति के फैलने में किसी प्रकार से बाध्य भी नहीं था।

अन्यथा ताज बीबी कोई चतुर पातुरा हो सकती हैं। सम्भवत: उनका संबंध कलावत की प्रसिद्ध नर्तकियों के परिवार से रहा होगा। यह परिवार अपनी कलामर्मज्ञता के लिये विख्यात था। यद्यपि ऐसे कलावान परिवारों ने इस्लाम धारण कर लिया था किन्तु उनके मानसपटल से हिन्दुत्व के वंशगत संस्कार एकदम धुल नहीं पाये थे। ऐसे किसी परिवार में उत्पन्न ताज बेगम, ताज बीबी अथवा ताजबाई का कृष्ण प्रेम किसी के लिये अचम्भे की बात नहीं हो सकता था अन्यथा किसी सम्भ्रांत मुसलमान बेगम के खुल्लमखुल्ला कृष्ण भक्ति का दम भरने से कट्टर लोगों द्वारा पर्याप्त होहल्ला मच जाता जिसका उल्लेख समकालीन इतिहास ग्रन्थों में निर्विकल्प रूप से हुआ होता।

हरियाणा में सूफी कवियों की एक खासी अच्छी परम्परा चली आई है। इन में से कितने ही ऐसे हैं जिन्होंने लोक-मानस तक पहुंचने के यत्न में हिन्दी में लिखा किन्तु इन लोगों की न तो रचनाएं ही सुलभ हैं और न इन के जीवन वृत्त ही मिलते हैं। तो भी इन का कुछ न कुछ उल्लेख कतिपय ग्रन्थों में ही मिल जाता है।

तजक्करए मख्ताते उर्दू में एक पुस्तक 'पोथी कानूने मार्फत' नाम से मिली है। पुस्तक की भाषा हिन्दवी भी बताई गई है और लेखक का नाम अनवर रोहतकी दिया है। लेखक के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं दी गई। रचना के आधार पर कवि कोई सूफी मार्ग का अनुयायी फकीर जान पड़ता है। ग्रन्थ के आरम्भ और इति पर फारसी बैत दिये गये हैं जिनसे उसके पढ़े-लिखे होने का पता चलता है। वह फारसी में भी अच्छे शेर कह सकता था।

पोथी में इस्लामी ढंग की अद्वैत पोषण और प्रचार है। रचना में सरल खड़ी बोली के 188 बैत दर्ज

हैं। प्रत्यक्षतः पोथी साधारण सूझबूझ के मुसलमानों के लिये लिखी गई है। भाषा के आधार पर अनुमान किया गया है कि ग्रन्थ की रचना 17वीं शताब्दी में हुई होगी।

उपलब्ध प्रति की प्रतिलिपि 1878 ई० में रिवाड़ी में की गई। पुष्पिका से ऐसा आभास होता है कि यह पोथी या तो मूलग्रन्थ का कोई खंड विशेष है अथवा उसका सारा लिपिक की सूचना इस प्रकार है। (फारसी से हिन्दी अनुवाद) :—

"धन्यवाद है अल्ला का कि पवित्र पोथी जो 'कानूने मार्फत' नाम की रचना में दर्ज थी, (उसे) इस टेढ़ा-मेढ़ा लिखने वाले लघुमानव की कलम द्वारा, जिसका नाम सैयद मुहम्मद जाफरी आली गरदेजी देहल्लवी है, रिवाड़ी के कसबा में जो गुड़गांव के जिले में तथा देहली खंड में स्थित है लिपि के बेश में आबद्ध कर लिया गया है।" पोथी के आरम्भ में पोथी का नाम "कानूने मार्फत" न लिख कर "पोथी ला इला इल्ल इल्ला" ही दरज किया गया है।

इन्ही दिनों में रोहतक के एक बुर्जुग फ़कीर मुल्लां अनवर विद्यमान थे, जो विख्यात सूफी फकीर शेख बहाउद्दीन चिश्ती के गुरु तथा शेख अल्लादास पानीपती के शिष्य थे। हो सकता है कि उक्त रचना के रचयिता अनवर रोहतकी से मुल्ला अनवर रोहतकी अभिन्न व्यक्ति ही हों। अभी इस विषय में अधिक सूचनाओं की आवश्यकता है, तब तक अनुमान केवल अनुमान ही रहेगा।

17वीं शताब्दी के शेख बहाउद्दीन चिश्ती ऐसे ही बुर्जुगों में से हैं जो जीवन भर कहीं एक जगह के हो कर नहीं रहे बल्कि, घूम फिर कर मानवता का शुभ सन्देश सब तक पहुंचाना अपना आदर्श रखते हैं। यह सरहिन्द, हांसी, हिसार, रोहतक, पानीपत आदि शहरों में वर्षों रह कर एकता तथा सौन्दर्योपासना का प्रचार करते रहे थे।

रोहतक के मुल्ला अनवर तथा पानीपत के शेख अल्ला दाद इनके गुरु थे। शेख बहाउद्दीन कुछ दिन उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात तथा दक्खिन में भी रहे थे। इन्हें राग-विद्या से प्रेम था। कव्वालों की महफिलें, यह जहां भी जाते, जमती ही रहतीं थीं। आप भी भारतीय संगीत विद्या में निपुण थे। इनकी रचना राग-रागनि के ही पदों के अन्तर्गत मिलती है।

शाह मीरां भीख जाति के सैय्यद तथा सूफी परम्परा के हिन्दी कवि थे। इन के पुरखे घुड़ाम निवासी थे, परन्तु ये सेउआना, जिला करनाल में आ बसे थे। अज़ीनत्तुल असफिया (गुलाम सरवर लोहारि रचित) में कहा गया है कि ये प्रसिद्ध पीर थे और इनके छन्द सूफियों की महफिलों में गाये जाते थे। भाई संतोष सिंह ने लिखा है कि शाह मीरां भीख शासन के कोष की परवाह न करते हुये गुरु गोबिन्द सिंह के जन्म की सूचना पाते ही उन के दर्शनों के लिये पटना पधारे थे।

इनकी भाषा सरस और सरल तथा भावपूर्ण होती थी। रचना में नैतिक तथा आध्यात्मिक अंश प्रबल होने पर भी कहीं नीरसता फटकने न पाती थी। इसी कारण कव्वाल बच्चे इनकी रचनाएं बड़े चाव तथा भाव-विभोर होकर गाते थे। ये गुरु गोबिन्द सिंह के जन्म के समय विद्यमान थे, इस आधार पर इनका रचना काल 17वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है। इनकी एक रचना 'सिहफीं' प्रसिद्ध है। और कोई ग्रन्थ इनका नहीं मिला। इनका एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है और लोकोक्ति बन गया है :—

भीखा बात अगम्म की कहन सुनन की नाहि,
जो जाने सो कहे न कहे सो जाने नाहिं।।

शाह मीरां भीख की शिष्य परम्परा काफी दूर-दूर तक फैली थी, उन में से शेख जीवन जो महबूबे आलम (जगत प्रिय) कहलाते थे। महबूबे आलम की एक हरियाणवी प्रधान रचना "दरद नामा मुहम्मद" प्रसिद्ध है।

हरियाणा का प्रथम प्रेमाख्यानक लिखने वाले कवि मुहम्मद अफजल कादरी का अन्य नाम गोपाल था। यह केवल कवि अथवा सूफी ही नहीं था, वस्तुतः प्रेमी भी था। कहते हैं कि अफजल की मथुरा की किसी हिन्दू रमणी से प्रीत हो गई। जब अफजल ने देखा कि उस का प्रेम धर्म की चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाने वाला है तो उसने अपनी प्रेमिका को धोके में रखना ही उचित समझा और अपना नाम गोपाल तथा जाति ब्राह्मण बताई। कुछ समय के लिये

मथुरा के किसी मन्दिर में ही पुजारी का काम करता रहा। आखिर किसी दिन भेद खुल ही गया और उसे अधिक दिन मथुरा में रहना सम्भव दिखाई न दिया । लाचार विरही गोपाल फिर से अफजल हो गया और दक्कन चला गया । अपनी विरह की कथा को उसनें एक बारहमासा के रूप में अंकित किया है। उस रचना का नाम 'विकट कहानी' है।

दक्कन में मुहम्मद अफजल कादरी ने किसी मीरां शाह मारूफ़ से सम्पर्क किया और सूफी पंथ में आ गया । यह मीरां शाह मारूफ़ किन्हीं महीउद्दीन कादरी के बेटे या खलीफे थे और इन्होंने मुहम्मद अफजल की सपुर्दगी अपने एक खलीफा मुहम्मद सुलतान को सौंपी थी। यह समाचार हम को मुहम्मद अफजल की दक्खिनी में लिखी रचना महीउद्दीन नामा से प्राप्त होते हैं। महीउद्दीन नामा की एक प्रति हैदराबाद के अदारा-ए-अदबियाते उर्दू के संग्रह में सुलभ है । वहीं उसके धार्मिक अभिभावक शेख सुलतान का कलाम भी सुरक्षित है । मुहम्मद अफजल ने कितने ही मर्सिए भी लिखे थे।

उनकी रचना 'विकट कहानी' की एक प्रति जो 1103 हिजरी की लिखी है, एडनबरा विश्वविद्यालय के संग्रहालय में है तथा दूसरी प्रति फारसी लिपि में लिखी हुई हैदराबाद के पूर्वोक्त संग्रहालय में है। 'महीउद्दीन नामा' का पता पहली बार योरुप में ही मिला था। ब्रिटिश म्यूजियम तथा इंडिया आफिस में इस रचना की प्रतियां सुरक्षित थीं। बलूमहार्ट की सूची में पहली बार इस रचना का उल्लेख हुआ था। अफजल रचित मर्सियों का पता "यूरोप में दक्खिनी मखतूतात" नाम की रचना में दर्ज है।

प्रो० शीरानी के मत से अफजल अपना बारहमासा दिल्ली में शाहजहां द्वारा लाल किला बनवाए जाने के पूर्व लिख चुके थे। कुछ अन्य विद्वानों ने अनुमान किया है कि 'विकट कहानी' की रचना 1035 हिजरी तथा 1722 ई० के पूर्व हो चुकी थी। वह इस के बाद ही दक्कन गया जान पड़ता है। यह कुछ पता नहीं चलता कि उस की प्रेमिका भी उस के साथ गई थी या नहीं। अनुमान तो यही है कि घनानन्द की प्रेमिका सुजानराय की भांति अफजल की प्रेमिका ने भी घर-गृहस्थी को प्रेम के कष्टमय जीवन पर तरजीह ही दी होगी। नहीं तो 'विकट कहानी' की कथा विरह की पीड़ा से न कसकती होती।

कुछ लोग इनका जन्म शुनज्ञाना, जिला मेरठ में हुआ मानते तथा लिखते आए हैं। परन्तु अली कुली खां ने अपनी रचना "रियाज-उल-शुअरा" में मुहम्मद अफजल को साफ शब्दों में पानीपत का जन्मजात सिद्ध किया है। अतः उनके मत से न सहमत होने का कोई कारण नहीं ।

सैयद यूसफ अली खां रिवाड़ी के रहने वाले थे। अपनी रचनाओं की सूची इन्होंने स्वयं इस प्रकार दी है :—

सभा विलास और नेह निवास
रस प्रकाश और विकट निवास
नेह चुटकला, गुलशने हिन्द
सैन चुटकला चूं अरिविन्द
भँरों सैन, चटकला ज्ञान
जिन देखा जीवन रस कपान
यूसफ अष्टसिद्ध ये कहे
जो समझे बूझे सुख लहे।

अंतिम रचना 'सैन चुटकला' 1847 विक्रम में लिखी गई थी। ये फारसी में भी रचना करते थे। इन की सभी रचनाएं मनमोहक हैं।

साअदुल्ला का जन्म मेवात में अठारवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। इनके जन्म का गांव अकहड़ा है। इन्हें इस्लाम के साथ-साथ हिन्दू संस्कृति का गहरा अनुभव था। इन्होंने अनेक धार्मिक तथा पौराणिक कथाओं को अपनी कविता में ढाला था। इनका रचा 'महाभारत' हरियाणा में खूब विख्यात हुआ बताया गया है। हमने इन की कोई रचना नहीं देखी।

सैयद अब्दुलमासा हांसवी उन बुर्जुगों में से हैं जिन्होंने तत्कालीन दरबारी प्रभावों के अधीन फारसी के साथ-साथ हिन्दी में भी लिखना शुरू किया । शाहजहानी काल में दरबार में अधिकार, सत्कार को लेकर सरदारों में तनाव पैदा होने लगा था जो प्रतिदिन बढ़ता ही गया । दरबार में फारसी के कारण विदेशी अहलकारों का महत्व कुछ अधिक बना था । नव्य प्रवर्तित भारतीय मुसलमान सरदार अब पीछे रहना नहीं चाहते थे । इस जलती में तेल का काम दिया फारसी विद्वानों द्वारा भारतीय फारसी लेखकों की रचनाओं के हेय समझे जाने ने । अतः शक्ति हस्तांतरण के लिये होने वाला प्रतिरोध अब हिन्दी-फारसी के तनाव में उभरने लगा था। इस प्रभाव के अधीन कितने ही फारसीदानों ने हिन्दी लिखना सीखा था। हांसवी साहब भी ऐसे ही लेखकों में से थे। उन्होंने केवल फारसी का चोला ही नहीं उतार फेंका अपितु अपने हिन्दी-फारसी कोष (शराबबुललुगाते हिन्दी) में ब्रज के मुकाबले पर हरियाणवी तथा खड़ी बोली के शब्दों को मानकसिद्ध करना आरम्भ किया । इस प्रवृति का खंडन और ब्रजभाषा के मानक रूप का पुनः प्रतिपादन शेख सराजुद्दीन अली खां आरजू ने किया। इनकी हिन्दी रचना का कोई संग्रह अभी देखने में नहीं आया ।

रोहतक के शेख गुलाम कादर जीलानी इस पीढ़ी के अन्तिम प्रसिद्ध सूफी कवियों में थे, जिनकी लड़ी शेख फरीद तथा शेख बू अली शाह कलन्दर से आरम्भ हुई थी । बचपन इनका अपने मामा के यहां बीता । वे धार्मिक प्रवृत्तियों के बुर्जुग थे । अतः बालक गुलाम कादर के मन पर उन के साधु-स्वभाव की गहरी छाप पड़ी । गुलाम कादर ने युवावस्था में, कुछ दिन जीवन यापन की दृष्टि से शाही फौज में नौकरी कर ली थी किन्तु नौकरी का बन्धन उससे बहुत दिनों तक निभाया न गया और वह फकीर हो गया ।

फकीर होकर गुलाम कादर जीलानी फिरके में दीक्षित हुआ । फकीरी में इन्होंने घोर तपस्या का मार्ग अपनाया । अल्पाहार की साधना में अपना दैनिक आहार केवल 11 तोले भर अनाज तक घटा लिया था । लोगों में इनके नाम के साथ अनेक सिद्धियां जुड़ी हुई हैं । किन्तु यह करामात दिखाना पसन्द नहीं करते थे ।

इनके प्रभाव में आकर बहुत लोगों ने इस्लाम ग्रहण किया था तो भी यह गैर-मुस्लिमों को किसी प्रकार हेय या संकीर्ण दृष्टि से नहीं देखते थे। इन्होंने दो बार हज यात्रा की थी ।

इनकी रचना का कोई ग्रन्थ-विशेष देखने में नहीं आया न कोई अच्छा संग्रह ही मिलता है। जहां-तहां लोगों के घरों में मिलने वाले फुटकर संकलनों में इनके रचे छन्द भी मिल जाते हैं । इनके छन्दों को लोग चौपाइयां कहते हैं किन्तु छन्द की दृष्टि से उन्हें किसी प्रकार भी चौपाई छन्द में नहीं गिना जा सकता ।

दक्कन हैदराबाद से प्रकाशित तजक्करए उर्दू मख्तूतात में किसी हरियाणवी फकीर का एक छन्द मिला है । कवि का उपनाम अली है । उसके बारे में कोई और सूचना अभी सुलभ नहीं । छन्द इस प्रकार है :—

बिजली चमकत डर मुहि को
कित अधम दल बादल शाम घटा ।
लिख भेजूं किताबत पीतम कूं
जब आवे बाजत मेरे हटा ।
बहोत दिना अली बीत गए ।
झनकार बजे जमुना की ठटा ।
मैं तो हारसिंगार सभी तज दौंगी
जोगिनि बनौंगी बांध जटा ।।

शेख नसीरुलहक्क एवं करनाल के नूर मुहम्मद चिश्ती आदि और भी कितने ही सूफी फकीर या पीर शेख हिन्दी में रचनाएं करते रहे हैं जो आज लोगों को कण्ठस्थ तो हैं किन्तु उन्हें लिपि-बद्ध नहीं किया जा सका। इन लोगोंकी पर्याप्त जानकारी भी अब सुलभ नहीं है। गांव-गांव घूम कर बहुत सी जानकारी जुटाई जा सकती है । आखिर अंग्रेजी राज के प्रभाव से सूफी तथा मुसलमान कवियों की हिन्दी रचना कट्टरता की मरुभूमि में खो गई ।

हिन्दु साधु-सन्त कवि:—औरंगजेब की कट्टरपन्थी नीति के विरोध में सशस्त्र टक्कर लेने वाले धार्मिक आंदोलनों में सतनामी पंथ का नाम भी आता है । 1672 में सतनामी साधुओं के आंदोलन ने एक बलवे का रूप धारण कर लिया था । रणक्षेत्र में इन के 2,000 वीर खेत रहे थे ।

सतनामी पंथ के सेवकों का आदर्श गुरु तेगबहादुर जी के उस कथन का ही एक रूप है, जिस में गुरु जी ने ज्ञान का यह लक्षण बताया है :—

भै काहू को देत नहिं, नही भै मानत आन ।

प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार खफी खां ने सतनामियों की बड़ी प्रशंसा की है । उस ने लिखा है—"ये भक्त की वेश-भूषा में रहते हैं, पर कृषि और व्यापार करते हैं यद्यपि अल्प-मात्रा में ही धर्म के संबंध में उन्होंने अपने आप को सतनाम से विभूषित कर रखा है। ये सात्विक रूप से ही धन प्राप्त करने के पक्ष में हैं। यदि कोई अन्याय या अत्याचार करता है तो ये उसे सहन नहीं कर सकते । बहुत से तो शस्त्र भी धारण करते हैं।"

सतनामी विचारधारा में न तो मूर्तिपूजा को स्थान है और न जातिगत भेदभाव का ही चलन है। सभी सतनामी आपस में भाई-भाई का सा व्यवहार करते हैं । सभी सतनामी एक साथ खान-पान कर सकते हैं और बिना किसी भेदभाव के रिश्ते-नाते बना सकते हैं । ये लोग सिर पर बाल या चोटी आदि बिल्कुल नहीं धारण करते। अतः इस कारण मुंडिया भी कहे जाते हैं । जात-पात छोड़ इन के यहां हिन्दू-मुस्लिम का भी कोई अन्तर नहीं किया जाता ।

सतनामी पंथ के केन्द्र दिल्ली, रोहतक, आगरा, फर्रुखाबाद, जयपुर और मिर्जापुर में हैं। इस पंथ के आदि प्रवर्तक वीरभान तथा दूसरे मुखिया जगजीवन दास तथा दूलन दास माने जाते हैं।

पंथ के प्रवर्तक श्री वीरभान का जन्म नारनौल में बिजेसर ग्राम में, सम्वत् 1600 में हुआ था। ये दादू के समकालीन थे और सन्त रैदास की परम्परा में ऊधोदास के शिष्य थे । इसीलिये अपने को ऊधो का दास लिखते थे । इनकी वाणी पंथ की धर्म पुस्तक 'पोथी' में संग्रहीत है । पोथी को जुमलाधर या चौकी में सिक्खों के गुरुग्रंथ साहब के समान ही पूर्ण सत्कार के साथ रखा जाता है। चौकी पर से ही उसे पढ़ा जाता है । इस पोथी की अनेक शिक्षाओं में 12 हुक्म प्रधान हैं, जिन्हें "आदि उपदेश" की संज्ञा दी जाती है।

वीरभान जी के सहोदर जगजीवन राम भी उत्तम कवि थे । उन की वाणी भी पोथी में शामिल मानी जाती है। इनका नाम कुछ लोग जोगी दास भी बताते हैं।

इनके गुरु सन्त ऊधो दास भी नारनौल ही के थे । वे रैदासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे । उन की सम्राट औरंगजेब से कई बार झड़प हुई । आज इनकी वाणी सुलभ नहीं है।

कवि काशी राम ने कवि हृदयराम के 'हनुमन्नाटक' में कतिपय त्रुटिपूर्ण अंशों की पूर्ति करते समय राम-परशुराम संवाद में एक जगह कहा था "गाय बामन सो लरिये तो पांय कां के परिए"? ब्राह्मण के प्रति यहां श्रद्धा तथा उपासना की भावना इसलिये थी कि ब्राह्मण विद्यावान था, कर्मकांड का आचार्य था। ब्राह्मण भी इस नुक्ते से भली-भांति परिचत था । उसकी विद्वता का रहस्य उसके संस्कृत के अध्ययन में छुपा था । चिरकाल से जनता को राजनीतिक उथल-पुथल ने देश की सांस्कृतिक धारा से हर प्रकार दूर रखा था। उसका संस्कृत के साथ जो थोड़ा बहुत सम्पर्क कभी था वह भी छूट गया था । अतः अब वे ब्राह्मण केवल ब्राह्मण के सहारे अपने धर्म-कर्म निभा सकते थे । ब्राह्मण जो कभी उदारता की मूर्ति समझा जाता था, अत्यन्त तंगदिल हो गया । उसने ब्राह्मण पुत्रों के सिवाय और किसी को संस्कृत पढ़ाना लिखाना छोड़ दिया । किन्तु ज्ञान की पिपासा जिन्हें है वे बन्धनों में कब बांधे गये हैं ।

ऐसा ही एक ज्ञान का पिपासु जिला हिसार के कूंगड़ ग्राम में एक जाट के घर पैदा हुआ । माता-पिता ने उसका नाम निश्चल दास रखा । बड़ा होकर वह बालक सचमुच अपने ध्येय की प्राप्ति में निश्चल सिद्ध हुआ । बचपन में ही उसके मन में लालसा हुई कि वह संस्कृत सीख कर धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करेगा। किन्तु जाट का बेटा था, इसलिये ब्राह्मणों ने इसे पढ़ाने से इन्कार कर दिया । बालक रंगरूप से अब्राह्मण नहीं दीखता था, अतः उसने काशी जाकर अपने को ब्राह्मण का बेटा बता कर संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की और वह भी इस हद तक कि वह स्वयं अभिमान से कह उठा :—

सांख्य न्याय में श्रम कियो पढ़ि व्याकरण अशेष ।
पढ़े ग्रन्थ अद्वैत के रह्यो न एको शेष ।
कठिन जो और निबन्ध है जिनमें मत के भेद ।
श्रम तें अवगाहन कियो निश्चल दास सवेद ।।

कहते हैं कि इनकी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर एक ब्राह्मण ने इन्हें अपनी पुत्री का दान करना चाहा परन्तु निश्चल दास ने अपना रहस्य खोल दिया। ब्राह्मण देवता ने नाराज होकर शाप दिया कि तुम्हारी दो शादियां होंगी।

गृहस्थी से कब और किस की प्रेरणा से यह दादू के पंथ में प्रविष्ट हुए। इसका सप्रमाण कोई उल्लेख नहीं मिलता। अपने गांव में ही रह कर ये वेदांत का उपदेश देने लगे। बूंदी नरेश राम सिंह जी इन से दीक्षित हुये थे।

इनकी रचनाएं "विचार सागर", "वृत्ति प्रभाकर" तथा "मुक्ति प्रकाश" हैं। "विचार सागर," मराठी, बंगला तथा अंग्रेजी में अनूदित मिलता है। स्वामी विवेकानन्द ने "विचार सागर" के विषय में कहा था कि "यह भारत के अन्तर्गत गत तीन शताब्दियों में लिखे गये किसी भी भाषा के ग्रन्थ से अधिक प्रभावशाली है।"

इनका जन्म 1760 में तथा निधन 1820 में हुआ बताया जाता है। स्वर्गवास के समय आप किहड़ोली गांव में थे।

हरियाणा में दादूपंथी साधुओं की काफी गहरी साख रही है। उनके कितने डेरे इस प्रांत में बिखरे हुए हैं और दादूपंथी साधुओं में वाणी रचना की प्रथा भी पुरानी है। इनकी वाणियों में राजस्थानी प्रभाव प्रचुरता से देखा जा सकता है। कुछ अन्य उल्लेखनीय दादूपंथी सन्तों के नाम-धाम इस प्रकार हैं:—

जिला महेन्द्रगढ़ के राणीला के संस्थापक पहले, कहा जाता है, बटमार थे। उधर से किसी प्रकार मन फिरा तो 'उमरा' गांव के महात्मा नारायण दास से दीक्षा लेकर हरिसिंह से हरि दास बन गये। आप जन्म से जाति के रजपूत थे।

इसी प्रकार मण्डोठी तथा रतिया के दादू द्वारों के संस्थापक सन्त बनवारी दास भी पर्याप्त प्रसिद्धी के स्वामी हुए हैं।

नांगी सम्प्रदाय के प्रवर्तक डेढ़राज का जन्म नारनौल में 1828 में हुआ था। इनका पन्थ शिष्य परम्परा प्रभावशालीन व्यक्तित्व के अभाव में बहुत प्रगति नहीं कर पाया।

रामस्नेही कवि नारायण दास की वाणी आज भी ग्रामीण भक्त जनों को भाव-विभोर किये बिना नहीं रहती।

इन और ऐसे ही अनेक सन्तों की वाणी ने जनजीवन में नैतिकता, धर्म परायणता की रुचियों को जीवित रखा है। किन्तु साहित्य की दृष्टि में उनका अधिक महत्व नहीं।

उहरा गांव (मेवात) के चरणदास का पन्थ काफी चला। ये सात वर्ष की अवस्था में ही अपने ननिहाल दिल्ली आ गये थे। इनके 14 ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इनके शिष्य मण्डल में सहजों और दयाबाई की वाणी बड़ी लोक प्रिय है। किन्तु हमारे मत से इन्हें हरियाणा की सन्त-परम्परा में खींच लाना उचित नहीं होगा। चरणदास पर अवश्य हरियाणा को गर्व है और होना भी चाहिये। चरणदास के गुरु शुकदेव किसी समय गुरुगोविन्द सिंह के कविमण्डल से भी संबंधित रह चुके थे। चरणदासी मार्ग शब्दमार्ग है परन्तु इस में गुरुचरणों की महिमा भी बहुत है।

हरियाणा के लोगों ने मनीषियों के बताए पन्थों का अनुसरण ही नहीं किया अपितु नये पन्थ भी खोजे हैं और उनका प्रचार भी किया है।

रोहतक जिले के छुड़ानी गांव में एक साधारण जाट घराने में सम्वत् 1774 वैशाख सुदी 15 को एक असाधारण बालक का जन्म हुआ। इस बालक का नाम पड़ा गरीब दास। गरीब दास की शिक्षा-दीक्षा औपचारिक ढंग से कभी नहीं हुई। छोटी अवस्था में गांव के अन्य समवयस्क बालकों के समान यह भी ढोर चराने जाया करता था। जहां कोई साधु-सन्त मिलता यह बालक तन-मन से उसकी सेवा करता था। कहते हैं कि ऐसे ही उसे एक दिन भक्त कबीर ने साक्षात् दर्शन देकर अपना शिष्य बना लिया।

अपनी वाणी में गरीब दास, कबीर को ही अपना गुरु मानते हैं।

"दास गरीब कबीर का चेरा, सत लोक अमरापुर डेरा" किन्तु शारीरिक रूप से तो कबीर का मिलन सम्भव नहीं हो सकता था, अवश्य यह भावना का मिलन होगा । गरीब दास जी अपनी वाणी में ही इसका संकेत करते हैं :

ऐसा सतगुरु हम मिला तेज पुंज के अंग,
झिलमिल नूर हजूर है रूप रेख नहिं रंग।

इनकी रचना का नाम 'हिखर बोध' है । इसमें 24,000 पद कहे जाते थे, किन्तु आजकल 7,000 से अधिक नहीं मिलते । उपलब्ध वाणी में साखी, सवैया, रेखता, झूलना, अरिल्ल, बैत, रमैनी, आरती और अनेक प्रकार के राग हैं। कबीर की रचना के ढंग पर ही गरीब दास की रचना भी बहुमुखी है। भाषा के विषय में इन के प्रयोग बहुरूपी हैं। अरबी, फारसी, पंजाबी, राजस्थानी, बांगरू आदि के शब्द उन्मुक्तभाव से प्रयुक्त हुये हैं । अध्यात्मवाद की दृष्टि से भी गरीबदास की वाणी कबीर की वाणी के बहुत निकट आ जाती है । 'सद्गुरु' और 'स्मरण' पर गरीबदास की वाणी में बहुत जोर दिया गया है।

गरीबदास, सुखदेव मिश्र के शिष्य चरणदास रणजीत के समकालीन थे । यह "घर ही मांहि उदास" की विचारधारा के पक्षधर थे । इन्होंने अपने गांव छुड़ानी में ही घर गृहस्थी का जीवन बिताते हुये अपने सिद्धांतों का उपदेश दिया था । 1835 में छुड़ानी गांव में ही जीवन लीला समाप्त की । इन के जूते, लोटा, कटोरा तथा पलंग आदि अभी तक मठ में सुरक्षित हैं। प्रति वर्ष उन की स्मृति में मेला लगता है।

ऐसे ही एक सन्त सन्तदास जी के शिष्य सन्त चतुर दास हो गये हैं, जिन्होंने अपने गुरू की आज्ञा से श्रीमद्-भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय तथा श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध का भाषानुवाद किया था । यह अनुवाद सम्वत् 1652 में किया गया था।

हरियाणा ने हमें एक ऐसा सन्त तथा कवि रत्न भी दिया है जिसकी होड़ का दूसरा संसार भर में मिलना कठिन है । यद्यपि काल-क्रम के नाते उसका उल्लेख सब से पहले होना चाहिये था, मैंने जानबूझ कर उसका नाम सब से पीछे रखा है क्योंकि माला में मेरू की गिनती एक नहीं 108 ही होती है।

धर्म जीना सिखाता है तो नीति जूझना। जीवन संग्राम में जो घाव लगते हैं उन पर मरहम पट्टी करना काम है, साहित्य और कला का । कभी-कभी वे उत्तेजना भी देते हैं, धैर्य भी बंधाते हैं ।

धर्म से हमने सीखा था अनुशासन और अनुशासन ने चाट लगाई शासन की । पृथु को हम ने राजा चुना, अतिबल जैसे दुराचारी राजा का दलन भी हम ने धर्म से ही सीखा था । यह पुण्यमयी राज्य की प्रथा आगे बढ़ती थी और बढ़ती ही गई। रामायण इस उत्थान का शिखर हमारे सामने प्रस्तुत करती है। किन्तु शिखर पर कोई सदा कैसे टिक सकता है । हम भी फिसले और बुरी तरह फिसले महाभारत इस स्थिति की आरम्भिक कथा है।

पतन तभी होता है जब आदर्शों की अवहेलना होती है, जब अभीष्ट की वांछा में भले बुरे, उचित अनुचित का विवेक भूल जाता है । नैतिकता की डोरी ढीली पड़ते ही स्वामित्व की पकड़ भी ओछी पड़ जाती है । हमारे इतिहास में भी यही कुछ हुआ । स्वाधीनता खो कर हमने पराधीनता को अपने ऊपर लाद दिया ।

आक्रांताओं ने, साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार के हथकण्डों से हमारा साहस कुचला, हमें हतोत्साहित किया। हमारा अहं दला-मला गया । इस जीर्णशीर्ण ममत्व के उद्धार के लिये आवश्यकता थी दुलार की, कोमलता की । यह दुलार, यह कोमलता हमें मिली अवश्य । और मिली भी साहित्य के माध्यम से । पुनरुत्थान के इस सन्देश का वाहक था एक भक्त । यानि कि धर्म हमें फिर से जीवन सिखाने आया था। महाभारत में अनिष्ट को रोकने का प्रयत्न करने वाला सफल चिन्तक कृष्ण हमारा मसीहा हुआ ।

कृष्ण का रसिक रूप तो बहुत दिनों से धार्मिक चेतना के क्षेत्र में हमारी श्रद्धा-पात्र था । परन्तु प्रौढ़ कृष्ण की रसिक कलामयी कल्पना से कहीं अधिक हमें दुलार और कोमलता दरकार थी। इसी दुलार और कोमलता का प्रति-पाद्य बना बाल तथा नवयुवक कृष्ण और इस दुलार तथा कोमलता के स्फूर्ति-दायक संगीत का कुशल गायक हुआ जन्मान्ध सूरदास ।

सूरदास को अपने जीवन में न बाल-सुलभ दुलार मिला था न नव-यौवन की निश्छल चंचलता। किन्तु वात्सल्य का उन से बढ़ कर कोई कवि हिन्दी साहित्य तो क्या शायद समूचे संसार साहित्य में भी न मिलेगा। सच है मीरा ने ठीक ही कहा था "घायल की गति घायल जाने और न जाने कोई।"

आधुनिक शोध ने यह मान लिया है कि कवि सूरदास जी हरियाणा के गांव सीही में उत्पन्न हुए थे।

पितृकुल निरस्त तथा निरक्षि सूरदास को उत्थान के सन्देश का माध्यम बना कर शायद विधना ने भी एक रूपक की रचना की थी। सूरदास हमारी तत्कालीन जीवन चेतना के प्रतीक थे और कंस की दुष्टछाया में अनिष्ट की सम्भावनाओं के रहते भी उत्तरोत्तर सफलता के मार्ग पर बढ़ते जाने वाला बाल तथा नवयुवक कृष्ण था हमारे भविष्य के स्वप्न का प्रतीक।

जीवन की सबसे बड़ी साध गुण की वृद्धि की जा सकती है और पुराने आचार्य इस बात से अज्ञात नहीं थे। इस मार्ग में मनुष्य की स्वतः प्रवृत्ति रहते भी ऐसे आदर्श-मार्ग के निदेश की आवश्यकता रहती है। इसी भावना ने शायद पहले-पहल लोक-विद्या के ग्रंथ प्रणयन की ओर मनीषि-गण का ध्यान आकर्षित किया था। यह दूसरी बात है कि पीछे के अनाधिकारी तथा कुमार्गी लोगों ने इस विद्या को ऐसा बदनाम किया कि वह विज्ञान के पद से लुढ़क कर कामुकता के गर्त में जा धंसी।

निर्मला पंथी सिख-सन्त कवि—किंवदन्ति है कि जब गुरु गोबिन्द सिंह ने संस्कृत में उपलब्ध समूचे ज्ञान भंडार को हिन्दी में अनुवादित करवाने की योजना बनाई तो स्थानीय ब्राह्मणों ने सहयोग देने से इन्कार कर दिया। गुरु जी ने एक ओर जहां हंस राम वाजपेयी तथा कुंवरेश जैसे इतरप्रांतीय ब्राह्मणों को अपने यहां रख कर कार्य चलाया, वहां अपने कुछ शिष्यों को संस्कृत विद्या प्राप्त करने काशी भेजा। कहते हैं कि उन्हें यह भी आदेश था कि यदि आश्यकता पड़े तो अपने को द्विज अथवा विप्र कहने में भी संकोच न करें। जब यह लोग शास्त्र विद्या में पारंगत होकर लौटे तो इन्हें प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन, अध्यापन तथा अनुवाद करने का कार्य सौंपा गया। इन को खालसा पन्थ में एक विशिष्ट स्थान मिला और उनका अलग सम्प्रदाय चला, जिसे निर्मल सम्प्रदाय कहा जाता है। यह निर्मला साधु खालसा पन्थ तथा सनातन विचारधारा के बीच सेतु का स्थान रखते हैं। यह पंजाब तथा हरियाणा में वेदांतीय ढंग के साहित्य का प्रचार तथा प्रणयन करते आए हैं।

कुरुक्षेत्र निर्मला सन्तों का अच्छा खासा केन्द्र रहा है। इसी जगह पर एक माननीय सन्त मान सिंह थ। इनके शिष्य गुलाब सिंह का इस क्षेत्र के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक विकास में पर्याप्त योगदान रहा है।

सन्त गुलाब सिंह का जन्म पंजाब के सैखों नाम के गांव में हुआ था किन्तु इनका कार्यस्थल कुरुक्षेत्र ही रहा, जहां इनके गुरु सन्त मान सिंह जी का निवास था। सन्त गुलाब सिंह की माता का नाम गौरी तथा पिता का नाम राईया, उनके अपने ग्रंथों के अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध होता है। सन्त गुलाब सिंह विद्या अध्ययन के लिये काशी भी गये थे। वह स्वयं लिखते हैं :—

गौरी राईया मात पित सेखव नगर उदार,
गुलाब सिंह कुलदीप सुत करयो ग्रन्थ विस्तार।
"भावरसामृत"—छ० सं० 125

एक ओ एरावती द्वितीय विपासा जान
सेखव नगर सुमध्य तिन्ह नगरन में प्रधान।
तहिं उपजे, बनारसी पढ़े सुविद्या जाय।
"स्वप्न अध्यायी"——छ० सं० 58, 59।

"श्री गुरु गोबिन्द सिंह हैं" पूर्ण हरि अवतार,
रच्यो पन्थ भव में प्रगट द्विविधि को विस्तार,
एकन के कर खड्ग द्वेव भुजबल बहु विस्तार,
पालन भूमि को करयो दुष्टन मूल उखार।
औरन को पिख विमल मति दीनों परम विवेक,

निर्मल भाखे जगत तिह हेरे ब्रह्म सुएक
तिन पदपंकज नीर लहि पायो मोहि विचार
"मोखपंथ प्रकास"—छ० सं० 86-89 ।

जिन अज्ञान निवारयो दीनो मोख अपार,
मान सिंह गुरु चरण को बंदी बारम्बरार ।
"प्रबोध चन्द्रोदय नाटक"

इनकी रचनाओं की संख्या 25 से ऊपर कही जाती है, किन्तु अभी तक केवल 'भावरसामृत', 'मोखपन्थ प्रकाश', 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक', 'स्वप्न अध्यायी', 'रामगीता', तथा 'रामहृदय' ही मिली है । स्वप्न अध्यायी का एक दूसरा नाम स्वप्न वृत्तांत भी मिला है । रचना दोनों नामों की प्रतियों में समान ही दर्ज है । सम्भवत: यह दूसरा नाम किसी लेखक ने प्रतिलिपि करते समय दर्ज कर दिया होगा । मामूली पाठ भेद और भी हैं । एक अन्य रचना 'अध्यात्म रामायण' भी है जो संस्कृत ग्रंथ का अनुकरण है ।

इनकी भाषा प्रौढ़ तथा रचना प्रांजल है ।

गुरुमुखी लिपि में तो इनके सभी ग्रंथ कई कई बार छप चुके हैं । देवनागरी में प्रबोध चन्द्रोदय तथा अध्यात्म रामायण छपी थी जो अब अप्राप्य हैं । भावरसामृत पंजाब के भाषा विभाग द्वारा और कलकत्ता से हल-वासिया स्मृति ग्रंथ में छपा है । स्मृति ग्रन्थ में छपे संस्करण में हमने यथायोग टिप्पणियां भी दी हैं और लघु भूमिका भी ।

सन्त आत्मा सिंह थानेसर के सन्त राम सिंह जी के शिष्य थे । इनका जन्म कहां हुआ था तथा माता-पिता का नाम क्या था इसका कुछ भी पता नहीं मिलता । किसी ग्रंथ-सूची तथा किसी साहित्य के इतिहास ग्रंथ में भी इनके बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती । केवल इनका रचा एक ग्रंथ "वेदान्त प्रश्नोत्तर माला" हमारे निजि संग्रह में है । पूरे ग्रंथ में कुल 268 छन्द हैं, जिनमें वेदांत के विषय में प्रश्नोत्तर पद्धति से चर्चा की गई है ।

कवि ने अपने गुरु के विषय में ग्रन्थ में ही सूचना दी है—

ज्ञान योग वैराग युत श्री गुरु राम मनिंद,
मुण्ड तुण्ड भुजदण्ड सो बंदन दण्ड मृगिंद । ॥19॥

ग्रन्थ रचना का सम्वत् 1891 में दिया है—

—अहो अचच्भे पिखो तुम भाई ।
ससि के पाछे निधि उठधाई ।
गण उठ लागे निधहु पछारी ।
नाम लियो सम्वत तहि धारी ।" ॥ 268 ॥
जां दिन ऐस अच्चम्भो जोयो ।
ता दिन ग्रन्थ समाप्त होयो । ॥ 269 ॥

ग्रंथ की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"इति श्रीमति राम सिंह चरण सिष्यतात्मसिंहेन विरचिते प्रश्नोत्तरमाला जीवन मुक्त विदेह मुक्त निरणौ नाम प्रकरणौ । ॥सुभमसत ॥

सन्त आत्मा सिंह कविता में अपना नाम जिन्द मृगेश भी और जीवमृगेन्द्र भी रखते थे ।

कुरुक्षेत्र निवासी एक राम सिंह रचित लघु रामायण की सूचना ज्ञानी शमशेर सिंह अशोक ने 'पंजाबी हत्थ लिखितां दी सूची" में दी है । यह रचना सम्वत् 1924 में हुई थी । ये राम सिंह जी किन्हीं कृपा सिंह के शिष्य तथा ठाकुर हरिदयाल के पौत्र शिष्य थे । ग्रंथ में अन्त: साक्ष्य विद्यमान हैं :—

राम सिंह मम नाम कृपा सिंह मम गुरवर ।
छेत्र परम पुनीत अति कुरुक्षेत्र तिहि नाम . . .
तिहि तट कीन बयान में सुनो पुरुष मतिमान ।

तथा :—

श्री ठाकुर हरिदयालु सिमरों तांको पादुजग ।
तास शिष्य कृपालु सिंह बखानों गुरु मम ।

आत्मा सिंह की रचना के 33 वर्ष पीछे ग्रन्थ रचना करने वाले राम सिंह को आत्मा सिंह का गुरु मानना अनुमान का अतिक्रम सा लगता है । अतः ये कोई दूसरे ही राम सिंह होंगे ।

कुरुक्षेत्र के निकट एक गांव है बढ़ी, इस गांव में गुरु तेगबहादुर जी की पुण्य स्मृति में एक गुरुद्वारा है और इस गुरुद्वारा के पुजारी थे निर्मला सन्त भाई उज्ज्वल सिंह । इनकी दो रचनाएं मिलती हैं :

पहली रचना है "श्री गुरु नानक नारायण ध्यान" और दूसरी का नाम है, "आत्म अनात्म विवेक ।"

"श्री गुरु नानक नारायण ध्यान" मौलिक रचना है और सम्वत् 1910 में लिखी गई थी। "आत्म अनात्म विवेक" संस्कृत से अनुवाद की गई है और 1911 में अनूदित हुई थी।

भाई उज्ज्वल सिंह अनुवादक के लिए आवश्यक मानते हैं कि वह अनुवाद किए जा रहे ग्रन्थ की मूल भाषा का ज्ञाता हो, दूसरे से पूछ कर किया गया अनुवाद तो यथार्थ नहीं हो सकता—

पूछ संस्कृत अवर ते भाषा करे बखान ।
नहीं यथार्थ अर्थ है भाषा नहीं प्रमाण ।4।

कवि होने के लिए भी वह चाहता है कि कवि बनने का इच्छुक बहुविद हो :

पढ़े व्याकरण, काव्य पुनि कोष, न्याय, वेदान्त,
अलंकार पिंगल पढ़ै, संस्कृत हु एकान्त ।। 2 ।।
बहुर सर्व भाषा पढ़ै, कविता कहि है सोई ।
जैसे दो पंखन बिनां, पंखी उड़े ना कोई ।। 131 ।।
—"आत्म अनात्म विवेक"

कवि की एक अपूर्ण साध है कि वह कवियों को इकट्ठा करे और उनसे उनके अनमोल छन्द सुनता रहे :—

हे विधि यह वर दे मुहि कर कवियन की गोल ।
सुनूं छन्द बहु मोल के बोल बोल निर्मोल ।। 3 ।।

इससे एक अनुमान होता है कि कवि काव्य मर्म की पिपासा लिए है और साधु होने के कारण कवि जनोचित सत्कार सम्मान देने में असमर्थ है ।

और भी कई निर्मला तथा विहंगम सिख पंथानुयायी साधुओं ने हरियाणा में रहकर छन्दबद्ध रचनाएं की हैं किन्तु उनमें अधिक रचना अध्यात्म, ज्योतिष तथा आयुर्वेदिक तथा नीति विषय हैं जिनकी साहित्यकता संदिग्ध है। आजकल निर्मला साधुओं में विद्याधारी होने से कहीं अधिक मठाधारी होने की ललक बढ़ रही है ।

दरबारों के आश्रित हिन्दी कवि : नारनौल हरियाणा का एक पुराना नगर है । यहां कितनी ही पुरानी हवेलियां हरियाणा के सफल सपूतों की यादगार हैं । इन हवेलियों में एक हवेली अकबर के नौरत्नों में श्रेष्ठ राजा बीरबल की भी है । यद्यपि राजा बीरबल के जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है तो भी इस हवेली के राजा जी की सम्पत्ति होने में किसी ने कभी कोई सन्देह प्रकट नहीं किया । अतः यह मानना उचित होगा कि राजा जी का काफी समय इस हवेली में बीता होगा । कवि गंग रचित एक छन्द में इस ओर एक झीना सा संकेत भी मिल जाता है । गंग के छन्द का प्रथम चरण है :—

मालती सकुंतला सी को है काम कन्दला सी,
हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरें ।

यहां नटी शब्द में नार का पर्याय अनुमानित किया गया है और आगे का नौल शब्द उसमें मिलाकर नगर का नाम नारनौल व्यक्त करता है । ऐसा मान लेना कोई बहुत दूर की कौड़ी लाना न माना जावेगा ।

बीरबल का नाम महेशदास अथवा ब्रह्म दास, पिता का नाम गंगादास, जाति ब्राह्मण बताई जाती है : इनके पुरखा साधारण हैसियत के तथा कालपी के पास किसी जगह के बसने वाले बताए जाते हैं। बीरबल पहले रीवां के राजा रामचन्द्र के दरबारी थे। यह अकबर के दरबार में 1563 से 1569 के बीच किसी समय आए। 1572 में अकबर ने इन्हें कांगड़ा में नगरकोट का परगना जागीर में दिया था। कड़े में भी इन्हें जागीर मिली हुई थी। यह बड़े गुणपारखी तथा दानी थे। गंग कवि ने लिखा है —

ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा बीरवर,
गंग क है गूंगी हुवै कै रही है गिरा गरे ।।

खूब चन्द ने लिखा है, "बीरवर दै छःकोट केशव कवित्तन में" और कवि हालराय ने कहा :—

मान ते न राजा औ न दाता बीर वर ते ।

वे केवल गुणिजन-वल्लभ ही नहीं थे, स्वयं भी उत्तम कवि बताए जाते हैं। महाकवि केशव दास को जिस छन्द पर बीरबल ने छ: लाख दिया था उसमें केशव ने लिखा है :—

रच कै नर नाह बलीबलबीर भयो कृतकृत्य महांव्रतधारी
दै करतापन आपा तांहि दियो करतार दुहूं कर तारी ।

यहां, "करतापन" संज्ञा में कवि गुण का भी श्लिष्ट उल्लेख देखा जा सकता है।

कवि बीरवर को अकबर ने कविराय की उपाधि से उस समय विभूषित किया था जब कि उन के दरबार में नरहरि तथा कविगंग से उत्तम कवि विद्यमान थे और अकबर साधारण कोटि का रसिक नहीं था। बीरवर कविता में "ब्रह्म" उपनाम करते थे। इनके स्वर्गवास पर कहा गया अकबर का यह सोरठा प्रसिद्ध है :—

दीन देख सब दीन एक न दीन्यो दुसह दुख।
सो अब हम कहुं दीन कछु न राख्यो बीरबल ।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध रीतिकालीन कवि देव भी अपने जवानी के दिनों में दादरी के रईस सीता राम के आश्रय में रहे थे। यह बात उनके सुविख्यात रीति ग्रन्थ "भवानी विलास' के अन्त: साक्ष्य में सिद्ध है :—

श्रीपति जिहिं सम्पति दई संतति सुमति सुनाम
आदरीक अति दादरी पति नृप सीताराम ।
सबल सिंह पति धर्मधुज सीताराम नरेन्द्र ।
ता सुत इन्द्र कुबेर सम वैस्य सुबंस महेन्द्र ।

डॉ० नगेन्द्र के मत से देव दादरी में आठ-दस वर्ष रहे होंगे और भवानी विलास का रचना काल 1750—1800 के बीच, यथा संभव 1780 के पूर्व अथवा 1750—55 में निर्धारित किया जा सकेगा। अनुमान किया गया है कि देव दादरी में तब आए थे जब उनके दिल्ली निवासी आश्रयदाता आजमशाह दक्कन को गए थे।

भवानीदास जिन के लिए यह ग्रन्थ रचा था, संभवत: ये राजा सीताराम के उत्तराधिकारी थे।

'भवानी विलास' काव्य गुणों की दृष्टि से एक अधकचरा ढंग की कालेज के अध्यापकों की आलोचना ग्रन्थों अपरिपक्व तथा आरम्भिक कहीं जाने वाली रचनाओं जैसी है। देव की अन्य कोई रचना दादरी में की गई प्रतीत नहीं होती।

'भवानी विलास' एक बार भारत जीवन प्रेस काशी से छपा था। अब वह संस्करण अप्राप्य है, हस्तलिखित प्रतियां सूर्यपुरा, गंधौली, लखनऊ तथा टीकमगढ़ आदि में सुलभ बताई जाती हैं।

दरबारी कवियों की परम्परा में कवि ब्रह्म-राजा बीरवर—तथा देव कवि के बाद कैथलवासी राजा जुगल किशोर भट्ट का नाम आता है। यह दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के बड़े मुसाहबों में से थे। बादशाह ने इन्हें राजा

की उपाधि से विभूषित किया था तथा काफी जागीर भी दी थी। इनके अपने कथानुसार इनकी सभा में चार कवि-जन रहा करते थे। अपने आश्रित कवियों के नाम राजा जुगलकिशोर ने इस प्रकार गिनाए हैं :

1. रुद्रमणि, 2. सुखलाल, 3. सन्तजीव और 4. गुमान कवि।

इनका रचा अभी तक केवल एक ग्रन्थ "अलंकार निधि" मिला है। दो कवित्त संग्रह इनके सम्पादित हैं। अलंकार निधि की रचना 1805 में हुई, अन्त:साक्ष्य से सिद्ध है।

सर नभ बसु ससि सहित है सम्वत् फागुन मास
कृष्ण पक्ष नौमी बुधौ पूज्यों ग्रन्थ विलास। ।।42।।

इस ग्रन्थ में 96 अलंकार उदाहरण समेत वर्णन किए गए हैं। कवि ने अपने वंश के विषय में भी सूचना दी है :

ब्रह्म भट्ट हौं जाति को निपट अधीन नदान।
राजा पद मो को दियो महमद शाह सुजान।1।
चारि हमारी सभा में कवि कोविद मति चारु।
सदा रहत आनन्द बड़े रस को करत विचार।2।
मिश्र, रुद्रमणि, विप्रवर और सुख लाल रसाल।
सन्तजीव सु गुमान है सोभित गुनन बिसाल।3।
जुगुल किशोर सु नाम है बालकृष्ण मो तात।
दादो निहचल राम है छ: अमल सुत अवदात।4।
कैथल जन्म स्थान है दिल्ली है सुखवास।
जा में विविध प्रकार है रस को अधिक विलास।5।

इनके आश्रित कवियों का कोई उल्लेख कहीं नहीं मिला। सांडी जिला हरदोई के निवासी मिश्र गुमान इनके आश्रित कवि गुमान से भिन्न मालूम होते हैं क्योंकि उनके रचे अब तक उपलब्ध तीनों ग्रन्थों में कहीं भी राजा जुगल किशोर का कोई उल्लेख नहीं मिलता। नैषध की रचना तो मोहम्मदी नरेश अली अकबर के लिए और अलंकारदर्पण तथा गुलाल चन्द्रोदय, बिसवां जिला सीतापुर के ताल्लुकेदार गुलाबचन्द की आज्ञा से लिखे गए थे। ऐसा अन्त:साक्ष्य से ज्ञात होता है।

कैथल नगर केवल राजा जुगुल किशोर की जन्मस्थली होने से कवियों में आदर का अधिकारी नहीं अपितु इस नगर को एक ऐसे कवि की आश्रय-स्थली होने का भी श्रेय है, जिसने हिन्दी साहित्य को श्रेष्ठ रचना द्वारा समृद्ध किया है और विशेष कर परिमाण में इतना अधिक दिया है, जितना किसी दूसरे कवि ने नहीं दिया होगा। आज महाकवियों में उसकी गणना सहज है और एक लाख से भी अधिक छन्द उसके सुलभ हैं।

इस कवि का नाम है भाई संतोष सिंह। यह कैथल अधिपति राजा उदय सिंह के आश्रित थे। और यहीं इन्हें तीन गांव, जागीर में, राजा ने दिए थे। उनके स्वर्गवास तक रही यह जागीर। कवि संतोष सिंह का जन्म, 1788 सम्वत् में, अमृतसर के निकट एक गांव "सराए नूर दीन" में हुआ था। इनके पिता का नाम देवा सिंह तथा माता का नाम राजो था।

इनकी प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा ज्ञानी सन्त सिंह जी की देख-रेख में अमृतसर में ही हुई। विस्तृत विद्या अध्ययन के लिए इन्हें काशी भेजा गया। वहां के लाहौरी टोला के तत्कालीन श्री महन्त जी की देख-रेख में आपने अनेक काव्य-शास्त्र के ग्रन्थ तथा न्याय-शास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

सम्वत् 1820 में यह काशी से आकर अपने पुरखों के गांव बूड़िया में आ बसे। यहीं पर इन्होंने जाति के बन्धन तोड़ कर स्वेच्छा से एक साधारण घराने में विवाह करवा लिया। बूड़िया के रईस आपका यथोचित आदर सत्कार करते थे तथा आपको उपजीविका की चिन्ता से मुक्त रखते थे।

सम्वत् 1821 में आपने 'अमर कोष' का भाषा अनुवाद प्रस्तुत किया और 1823 में 'नानक प्रकाश' की रचना कर

ली । नानक प्रकाश शीघ्र ही लोक-प्रिय हो गया था । इनके काव्य गुण तथा पाण्डित्य की चर्चा सुन पटियाला के काव्य-मर्मी राजा कर्म सिंह इन्हें सादर अपने यहां लिवा लाए । किन्तु पटियाला का वातावरण इन्हें बहुत देर बांध नहीं पाया । पटियाला में रहकर इन्होंने 'आत्मपुराण' का भाषानुवाद किया था ।

सम्वत् 1825 में कैथल नरेश राजा उदय सिंह महाराजा पटियाला से मिलने आए तो जाते समय कवि संतोष सिंह को भी साथ लिवा ले गए । कैथल में कवि का मन रम गया फिर वह जीवन पर्यन्त वहां से उठ कर कहीं और नहीं गये ।

उन दिनों एक उदासी महात्मा आनन्दघन सिख गुरुओं की वाणी पर कुछ इस ढंग से टीका कर रहे थे जो सिक्ख-पन्थ के अनुयायियों को मान्य नहीं थी । सन्त जी सब को शास्त्रार्थ के लिए ललकारने में भी दक्ष थे । अतः भाई उदय सिंह के आग्रह पर 1829 में "जपुजी" पर "गर्वगंजनी" नाम से टीका का 1831–33 में कवि जी ने "वाल्मीकीय रामायण" का भाषानुवाद तथा 1835 में अपनी महानकृति "गुरु प्रताप सूरज" की रचना की । "गुरु प्रताप सूरज" समाप्त होने के थोड़े ही समय पीछे आप की इहलोक लीला भी समाप्त हो गई ।

बावल नगर के कवि मुकुन्द दास महाराजा कर्म सिंह पटियाला नरेश के आश्रित थे । इनका रचा एक ग्रन्थ 'रस शिरोमणि' अथवा 'रसिक शिरोमणि' तथा दूसरा "सूर्य संग्रह" मिला है । इसमें से 'रस शिरोमणि' ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने अपना परिचय दिया है :—

> आदि गौड़ द्विज बंस में मुद्गिल गोत्र सुजान
> कवि मुकन्द इहि नाम निज बावल नगर सुथान ।। 2 ।।

ग्रन्थ की रचना राजा कर्म सिंह के आदेश पर 1849 वि० को हुई थी ।

> .....बड़े ग्राम धनधाम रथ गज तरग सिंगार ।
> कंचन नग कंकन दिए जड़त जवाहर जाल,
> भूषण वसन अनेक दें श्री मुक्ताहल माल ।। 20 ।।

और राजा ने इस प्रकार कवि को भरपूर सम्मान दिया है ।

बूड़िया के रईस द्वारा भाई संतोष सिंह की प्रतिपाल की बात हम पीछे कह आए हैं । जब से गुरु दरबारों में कवियों के सम्मान की परिपाटी देखी सुनी थी सिक्ख राजा महाराजा ही नहीं छोटे-बड़े खाते पीते सरदार तथा अहलकार और मान-यश के अभिलाषी रईस सभी अपने ही कवियों का मान-सम्मान करने में एक दूसरे से आगे रहते थे । जो काम राजस्थान में चारण, भाट तथा बन्दीजन करते थे पंजाब तथा हरियाणा में वही आश्रित कवियों को करना होता था । अन्तर केवल इतना था कि भाट जहां स्तुति के लिए स्तुति करने लगे थे वहां आश्रित कवि गुण देख कर ही किसी की प्रशंसा करते थे । कारण था कि यह कवि जन भी बहुधा जाट जमींदार ही होते थे और इन्हें अकारण की प्रशंसा करना भी नहीं आता था । इन लोगों की मनोदशा समझने के लिए हमें आदि-कालीन अरब कवियों की प्रवृत्ति ही ध्यान में रखनी होगी । जब मैणद्वाव के रईस राजा जोध सिंह, उनके पुत्र हरि सिंह तथा पौत्र देवा सिंह की उपमा में निम्नलिखित छन्दों की रचना हुई तो कुछ उसी ढंग की भावना ने कवि को यशगान पर प्रेरित किया था :—

> सैन के संजुगत जिन्हूं जैन खा को जंग हन्यो
> लूट कै सरद कोट कोप कै गिरायो है ।
> दिल्ली परी ढेल्ली जौ चंदौसी सिंघं लूट लीनी
> भरतपुर लजानी टके डींक पै चुकायो है ।
> नैहण हूं की बात कछु कहण में न आवै
> सिंघ जीत कै पहाड़ राजनीति सी निवायो है ।
> ऐसा राजा जोध सिंह मैणद्वाब राज कीनों
> जीत कश्मीर फेर सुरपुरी सिधायो है ।।
> ता कौ सुत हरि सिंह सुन्दर सुरिन्द सम ।
> नैन अरबिन्द भाल चन्द सो सुहायो है ।

बड़ों उमराक चुन सुन्दर पुशाक पहरें ।
ता के सम दूसरी तो देखनी न पायो है ।
भारी बखशिन्द देत कंकन दुशाले धने ।
ता पै आन नौकर न नौकरी सिधायो है ।
तैसे ही दलेर श्री देवा सिंह सुनयौ तुम ।
ताही ते कबीसर तिहारे ढिग आयो है ।।

अथवा

राजन को राज देवा सिंह सिरताज राज
काज को सुहाग चमूं मध्य ही सुहायो है ।
नागर सुख सागर उजागर चहूं चक्क जान्यो ।
दर्शन के किए मल मन ते चलायो है ।
दासन को तारन उबारन गरार हूं ते ।
गनीमन को गारन उसारन सुगायो है ।
नैंक मृगेश भनै गुन नांहि जात गने,
मीत हूं न भीत तनै भूतन सुख छायो है ।।

नैंक मृगेश कवि की छाप है नाम उत्तम सिंह है । 'नैंक' श्रेष्ठ तथा 'उत्तम' का पर्यायवाचक है । 'मृगेश' सिंह का वाचक है । एक अन्य कवि उत्तम सिंह नाम के अमृतसर निवासी भी हैं । उनकी रचना अक्सर संगीत का सहारा लेकर चलती थी और वे निर्मला साधु थे ।

आज न वे यशस्वी राजा हैं न यशगायक कवि, किन्तु यश कायम है । इस यश का आधार चापलूसी नहीं थी । इतिहास का कठोर निपट सत्य था जो कभी मरता नहीं । इन कवियों का कुछ भी वृत्तान्त ज्ञात नहीं केवल पटियाला दरबार के कवि भगवान सिंह बनूड़ी रचित ग्रन्थ "भारती भण्डार" में यह छन्द मात्र मिलते हैं ।

लाडवा भी मैणद्वाव की एक छोटी सी रियासत थी । इन रियासतों को अंग्रेजी अमलदारी ने अधिकार च्युत कर दिया था और यह मामूली जागीरदार मात्र रह गए थे । रस्सी जल गई थी किन्तु बल बाकी था । ऐसे ही एक रईस थे लाडवा के टीका निहाल सिंह जी । इनके आश्रय में रह कर कवि बंगा सिंह तथा कवि उज्ज्वल सिंह ने राम कथा तथा कृष्ण चरित्र आदि स्वांगों की रचना की ।

स्वांगों की यह रचना रास मण्डली वालों के स्वांगों के अनुकरण पर हुई है । स्वांग के ढांचे में लोक-गीतकारों की रचना रीति सफल हो सकती है । यहां उत्कृष्ट साहित्यक भाषा और रचना शैली के लिए गुंजायश नहीं । अतः रचनाओं का स्तर साधारण ही कहा जा सकेगा फिर भी कलात्मक गुण से सर्वथा शून्य नहीं । राम कथा पर तो स्वांग रचना का यह इस क्षेत्र में पहला ही प्रयास देखने में आया है ।

कवि बग्गा सिंह अपना काव्य उपनाम सफेद केहरी रखते हैं और कवि उज्ज्वल सिंह की काव्य छाप कवि "श्रीं हरि" है । कवि उज्ज्वल सिंह ने अपने गुरू का नाम सन्त वीर सिंह लिखा है ।

कवि बग्गा सिंह राम कथा का स्वांग रचने वाले हैं और कवि उज्जवल सिंह ने दो स्वांग रचे हैं । एक कृष्ण कथा परक है तो दूसरा "ज्ञान गुटका" नाम से वेदान्त पर आधारित है । इन रचनाओं का रचना सम्वत् 1889 बताया जाता है ।

अपनी किसम की एक मात्र रचनाएं होने से राम कथा तथा ज्ञान गुटका का एक विशिष्ट स्थान है । इन रचनाओं का अध्ययन लोक-काव्य तथा नागरिक काव्य के बीच का अन्तर समझने-समझाने में बहुत सहायक हो सकता है ।

लाडवा में केवल स्वांग ही नहीं लिखे गए वीर काव्य भी रचे गए । भाई मनी सिंह शहीद के जीवन पर आधारित एक वीर कथा कवि सेवा सिंह रचित पिछले दिनों गुरुमुखी लिपि में छपी है । ग्रन्थ में रचना सम्वत् नहीं दिया गया । केवल इतनी सूचना दी गई है कि कवि सेवा सिंह गुरु अर्जुन के दरबारी भाट भिक्खा के वंश में, छटे स्थान पर, केसर सिंह कौशिक का पुत्र है । भाई मनी सिंह का पौत्र संग्राम सिंह अपने पांच पुत्रों और कवि के पिता के साथ लाडवाधीश के आश्रय में आए । ग्रन्थ की रचना लाडवा में आरम्भ हुई और समाप्ति इसकी भादसों गांव में हुई । यह गांव उन्हें राजा अजीत सिंह ने जागीर में दिया था ।

दादरी के शम्भु दयाल जींद दरबार के आश्रित थे । यह जाति के गौड़ ब्राहमण थे और महाराजा रणवीर सिंह जींद-पति के साथ शतरंज खेलने पर नियुक्त थे । इन को कविता करने का चसका था और राग विद्या से भी मस था । अतः यह राग रागनी के पदों में रचना करते थे । इन्होंने 1959 सम्वत् में "रुकमणी मंगल" की रचना की थी । इनके एक मित्र ने जिन का नाम यह मूलचरण लिखते हैं, इनकी इस रचना को इनके अपने शहर दादरी में ही कथा के रूप में बांचा भी था । यह कवि के लोकप्रिय होने की दलील है । ग्रन्थ एक बार लीथो पर 1967 में दिल्ली से छपा भी था । हमने इसकी छपी हुई प्रति ही संगरूर डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरी में देखी थी । छपाई अच्छी नहीं हो सकी, अतः आरम्भ के दो तीन पद पढ़े ही नहीं जाते ।

दादरी के ही कवि मनमोहन इन्हीं राजा रणवीर सिंह के आश्रित थे । वस्तुतः मनमोहन जी सितारिया थे और महाराज को सितार सिखाने पर नियुक्त थे । समय समय पर कभी-कभी छन्द रचना भी कर लेते थे । इनका रचा केवल एक ग्रन्थ बताया गया है । रचना का नाम रणबीर प्रकाश है और इस में महाराजा के यश के ही छन्द हैं, कुछेक स्फुट छन्द भी होंगे । यह कवि बहुत वृद्ध-अवस्था में अभी पिछले दिनों विद्यमान थे । यह अपना जन्म सम्वत् 1931 बताते हैं । अब इन्हें बात करने में भी कठिनाई होती है ।

अन्य कविजन—महाकवि तुलसीदास जी के शिष्य कवि आनन्द राय कोक विद्या पर लिखने वाले हरियाणवी हिन्दी कवियों में अग्रणी थे । उनके रचे 'कोक-मंजरी' तथा 'आसन-मंजरी' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध रहे हैं । इन्द्रजाल तथा सामुद्रिक शास्त्र पर भी आपने लिखा था । 'वचन विनोद' नाम का एक ग्रन्थ आपका काव्य रूपणादि के विषय में भी मिलता है । परमानन्द बोध नाम से गीता का अनुवाद भी किया था ।

अपने विषय में इन्होंने पर्याप्त जानकारी दी है । अपनी रचना 'कोक-मंजरी' में उन्होंने लिखा है—

कायथ कुल आनन्द कवि वासी कोट हिसार ।
कोक कला इति रुचि करन जिन यह कियो विचार ।

और अपने ग्रन्थ "वचन विनोद" में अपने गुरु के विषय में सूचना दी है :—

नभो कमल दल जमल पगथी तुलसी गुरु नाम ।
प्रगट जगत जानत सकल जहं तुलसी तहं राम ।। 2 ।।
कासी वासी जगत गुरु अविनासी रस लीन
हरि दरसन दरसत सदा जल समीप ज्यों मीन ।। 3 ।।

इस उद्धरण को देख कर कोई सन्देह नहीं रह जाता कि कवि आनन्दराम के गुरु रामचरित मानस के रचयिता तुलसी ही थे, कोई अन्य तुलसी दास नहीं ।

कोक-मंजरी ग्रन्थ में रचना सम्वत् का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

ऋतु बसन्त सम्वत सरस सोरह सौ अरु साठ,
'कोक मंजरी' यह करीधर्म कर्म कर पाठ ।।

कोक कला को भारतीय मनीषियों ने कला के दर्जे तक पहुंचा दिया था और कला हमारे यहां धर्म-कृत्य के समान ही पावन थी । तभी तो कवि आनन्दराय एतद्विषयक ग्रन्थ लिखते समय पहले धर्म-कर्म से निवृत्त होते हैं। तुलसी दास के शिष्य से हम किसी प्रकार के मर्यादा-च्युत व्यवहार की कल्पना भी नहीं कर सकते ।

'कोक-मंजरी' की रचना कवि के प्रकाशित सम्वत् उल्लेख के अनुसार 1660 में हुई थी । 'वचन विनोद' का प्रतिलिपि काल 1679 है और शिव सिंह सेंगर ने इन्हें 1711 में उपस्थित कहा है । जिससे अनुमान किया जा सकता है कि कोक-मंजरी कवि आनन्द राय की युवावस्था की रचना है । कवि का जीवन वृत्त ज्ञात नहीं । कोक-मंजरी की रचना के समय यदि उनकी आयु के बीस पच्चीस साल हुए हों तो उनका जन्म 1635–40 के लगभग माना जा सकता है । और अगर वे 1715 तक भी जीवित रहे तो मान लिया जाए कि उनकी आयु 80 वर्ष के करीब बैठती है, जो अनुचित नहीं ।

'कोक-मंजरी' का एक और नाम कोक-सार भी है । कई प्रतियों में कोक-विलास भी लिखा मिला है । कहीं-कहीं रचयिता का नाम भी आनन्द के स्थान पर मुकुन्द लिखा है । रचना सम्वत् भी भिन्न-भिन्न दिए हैं किन्तु तिथि और दिनमान का पूरा ब्यौरा न रहने से उनकी जांच भी तो संभव नहीं हो सकती । इससे केवल एक बात सिद्ध है कि यह ग्रन्थ बहुत जगह बहुत हाथों द्वारा लिप्यांतरित होता रहा है ।

धरौंडा के कवि हृदय राम मिश्र, कवि भानु दत्त कृत "रस तरंगिणी" के भाषानुवाद के लिए विख्यात हैं । 'सुदामा चरित्र' तथा 'धर्म समाध' नाम की इनकी दो रचनाएं और कही जाती हैं । 'रस तरंगिणी' के इनके द्वारा किए गए अनुवाद का नाम ग्रन्थ में ही 'रस रत्नाकर' भी लिखा है । इस ग्रन्थ का रचना काल 1731 वि० बताया गया है ।

रस रत्नाकर के आरम्भ में ही कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है :—

जनमेजय के यज्ञ में हरि आने जे विप्र,
इन्द्रप्रस्थ के निकट तिन ग्राम दए नृप क्षिप्र ।। 3 ।।
गौड़ देस ते आने के बसे सर्व कुरुखेत,
विप्र गौड़ हरियानिया कहै जगत इंह हैत ।। 4 ।।
तिन में एक भटानिया जोशी जग इहिं ख्यात,
यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा सहित सुजाति ।। 5 ।।
गोत्र कलित कौशल्ये गनो धरौंडा ग्राम,
उपजे निज कुलकमलरवि विष्णुदत्त जहं नाम ।। 6 ।।
विष्णुदत्त को सुत भयो नारायण विख्यात,
ता को दामोदर भयो जग में जस अवदात ।। 7।।
करी चाकरी बहुत दिन बैरमसुत के पास,
राम कृष्ण ता को तनय विद्या विविध विलास ।। 11 ।।
आसफखां जू को अनुज यातिकादखां वीर,
ताको करि कृपा महां जान गुणन गम्भीर ।। 13 ।।
रामकृष्ण के तन्य द्वै जेठे तुलसी राम,
मंझले माधवराम बुध लहुरे गंगाराम, ।।14 ।।
राम कृष्ण के पौत्र है हृदयराम कवि मिश्र,
उद्धव पुत्र प्रयाग द्विज दीक्षित को दौहित्र ।। 15 ।।
रामकृष्ण को पुत्र मणि माधव राम सुजान ।। 16 ।।
साहि सुजा की चाकरी करी बहुत दिनमान,
नन्दन माधव राम को हृदय राम अभिराम ।। 17 ।।

रस रत्नाकर की रचना कवि के कथनानुसार कृष्णदत्त के पठनार्थ हुई थी :

भानुदत्त-कृत संस्कृत रस तरंगिनी भाइ,
कृष्णदास के पढ़न को पोथी करी बनाइ ।। 60 ।।

यह कृष्ण सम्भवतः इनके पुत्र थे अन्यथा कोई प्रिय शिष्य । इन कृष्ण दास का एक ग्रन्थ 'भागवत दशम स्कन्ध' भाषा में मिलता है, जिसकी एक प्रति का लिपि-काल 1823 वि० दिया हुआ है ।

इनकी एक रचना 'ज्ञान प्रकाश' नाम की तथा एक अधूरी रचना 'श्री गिरधर लीला' भी मिलती है । ज्ञान प्रकाश के आरम्भ में रचयिता के रूप में कृष्णदास का नाम है तो पुष्पिका में खेमदास । "श्री भागवत गीता महात्म" नाम की एक और रचना है, जिसका भाषाकार किशोर दास है और पुष्पिका में लिखा है "चरन शरन दोनों पड़े है प्रभु परम प्रवीन, किशोरदास अरु क्रिशनदास दीन गरीब अधीन ।"

अब तक पंजाब में एक हृदयराम हनुमान नाटक के भाषाकार के रूप में विख्यात थे । उनको गुरु अर्जुन के ननिहाल के परिवार से जोड़ा तथा भल्ला खत्री कहा जाता था, किन्तु गुरु जी के ननिहाल की वंशावली में ऐसे किसी हृदयराम का पता ठीक से नहीं मिलता । उनकी निम्नलिखित रचनाएं खोज में मिली हैं :—

(1) रुकमणी-मंगल; (2) धर्म चरित्र; (3) बलिचरित्र; (4) चित्रकूट विलास तथा (5) हनुमान नाटक ।

हनुमान नाटक के अन्त में एक तुक आती है :—

कृष्ण दास तनु कुल प्रकाश जसदीपक रच्छण ।

जिसका अर्थ यह लगाया जाता है कि हृदयराम जी के पिता का नाम कृष्णदास था किन्तु सन्देह हो रहा है कि कहीं हृदयराम भल्ला वस्तुतः यही हृदयराम मिश्र ही न हो क्योंकि किसी ने अपने पिता को कुल प्रकाश तथा 'जसदीपक रच्छण' नहीं कहा। यहां 'तनु', तन्यज के अर्थ में प्रयोग भी ध्यान मांगता है।

विनोद में जिला हिसार के एक माधोदास कायस्थ नागरी का उल्लेख मिलता है। माधोदास का कविता काल 1837 वि० अनुमानित है। इनके पांच ग्रंथ :—(1) करुणावतीसी (2) नारायण लीला (3) दधि लीला (4) अवतार गीता तथा (5) मूहूर्त चिंतामणि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा की गई हिन्दी हस्त-लिखित ग्रन्थों की खोज में मिले हैं। इनका अधिक वृत्त कहीं नहीं मिला।

गार्सिन दि तास्सी ने 1867 में वर्तमान एक कवि हरि बखश मुंशी का भी उल्लेख किया है। 1867 में इनका रचा एक 'भक्तमाल' ग्रन्थ शहणा-गुड़गांव, के एक छापाखाना में छप रहा था जिस में मेरठ के 'अखबारे-आलम' के मुताबिक 900 पृष्ठ होने की संभावना थी।

बिधाणो (बिधासो) गांव के गौड़ ब्राह्मण रामरत्न लघुदास की ये तीन रचनाएं नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा चलाई जा रही, खोज में मिली हैं :—

1. श्री कृष्ण ध्यानाष्टक, 2. श्री गणेशजयति तथा
3. श्री हनुमान जयति। इनके पिता का नाम मनिराम तथा गुरु का मायाराम था। रचनाकाल 1856 के पूर्व का है।

1872 के पूर्व शाहबाद निवासी मतिराम के पुत्र कवि नन्दलाल ने जैमिनी पुराण भाषा की रचना की।

कानौड़ ग्राम वासी बलदेव दास का रचा वैद्यक ग्रंथ मिला है। छन्द की शुचिता को देखते हुए अनुमान होता है कि उसकी कुछ साहित्यिक रचना भी रही होगी।

नारनौल निवासी सैयद अब्बास के पुत्र मीर जाफ़र जटल्ली के नाम से प्रसिद्ध हुए। साहित्य में—'नान-सैंस' का पुट भरने वालों में ये अग्रणी हैं। उनके नाम पर साहित्य की एक विशिष्ट विधा जटल्लीयात के नाम से चालू हो गई। जटल्ल हांकना और उसमें ऐसा तारतम्य बनाये रखना कि श्रोता और पाठक ऊब न जाएं बड़ा कठिन कार्य है, उसके लिये लेखक को मनोविज्ञान की अच्छी खासी सूझ-बूझ होनी चाहिये। जटल्ली और जकखड़ी में व्यंग्य की एक पैनी तथा सूक्ष्म धारा प्रवहमान होती है जो चोट करती है और रूठने नहीं देती। इसके लिये सुघड़ सुधारक के मन-नैन दरकार हैं।

मीर जाफर (1068-1125 हि०) बाल्यावस्था में ही पिता से वंचित हो गया था। चाचा की देखरेख में पला कुछ थोड़ा पढ़ा लिखा था किन्तु विद्या-अध्ययन में उसका मन नहीं लगा। आखिर औरंगजेब के पुत्र कामबख्श की फौज में नौकरी कर ली। फौज के साथ उन्हें दक्कन जाना पड़ा। वहां वे काफी समय रहे। इन दिनों उन्हें हैदराबाद, गोलकुण्डा तथा बीजापुर के साहित्यिक समारोहों में आने जाने का अवसर मिला। स्वभाव में फक्कड़पन बहुत था। अपने प्रतिद्वन्दियों पर कीचड़ उछालना इन्हें खूब आता था। अच्छे साहित्यकों की संगत में उस में रंग भरना आ गया। फिर भी भड़ौआ बाजी और अश्लील कथन की लत, जिसका चसका बे-लगाम बचपन में लगा था, छूट न पाई। आखिर इसी व्यसन ने उनकी जान ली। बादशाह के दरबार में भी वह अपनी जबान को काबू में न रख सके और किसी फक्कड़ी पर रुष्ट हो कर फर्रुखसियर ने उन्हें कत्ल करवा दिया। उनकी रचना में उर्दू और हिन्दी के साथ-साथ दर्शन होते हैं। कल्पना की उड़ान उनकी भव्य थी।

उनके छोटे भाई अनवर जटल्ली ने भी इनके पद चिह्नों पर चलना आरम्भ किया था किन्तु उतने प्रसिद्ध न हो सके।

कवि दीदार सिंह अज्ञात किन्तु सरस उन कवियों में गिने जा सकते हैं जिनका पूरा पता ठीक से मिल

पाना कठिन हो जाता है। उनकी रचना में कुछ छन्द जहांगीरी शासन काल पर व्यंग्य कसते मिले हैं और एक साधारण सी रचना में दिया सम्वत् उन्हें 19 वीं शताब्दी में खेंच लाता है। हो सकता है यह सम्वत् रचना का न होकर लिप्यांतरण का ही हो। हमने इन के विषय में हरियाणा चित्र के नवम्बर, 1968 के अंक में विस्तार से लिखा है।

सम्वत् 1876 में कुरुक्षेत्र के कवि धर्म सिंह ने द्वादश स्कन्ध भाषा की रचना की। इनकी और रचना 'कथा राजे भरथरी की' भी मिलती है। दूसरी रचना का रचना काल नहीं दिया हुआ। पिछले दिनों कवि धर्म सिंह रचित एक वृहद्-ग्रंथ सिख इतिहास के विषय में आमरा की कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी इंस्टीच्यूट के संग्रह में भी देखा गया था।

द्वादश स्कन्ध भाषा ग्रन्थ में कवि ने राजा गोपी चन्द के योगी होने का वृतान्त पौराणिक ढंग से कहा है। इसी ग्रंथ में कवि ने कुछ सूचना अपने विषय में भी दी है :-

सत्य तनय मृगराज तनुज नाहर सिंह जानो,
कुरखेत्तर में बास जाति रघुबंसी मानो ॥1201॥

सम्वत् 1924 में कुरुक्षेत्रवासी कवि राम सिंह ने 'लघु रामायण' नाम से संक्षिप्त राम चरित्र की रचना की थी। कवि ने अपने बारे में जो सूचना इस रचना में दी है वह इस प्रकार है :—

श्री ठाकुर हरि दयाल, सिमरी ता के पाद जुग,
पुनः सिंघ कृपाल, ता के शिष्य रु गुरु मम ॥130॥

पण्डित जगद्धर शर्मा गुलेरी द्वारा सम्पादित 'ए सर्च रिपोर्ट फार हिन्दी मैन्यूसस्क्रिप्ट्स इन पंजाब' में नारनौल के एक कवि रामदत्त का उल्लेख है जिसने श्री कृष्ण के प्रेम में भक्ति-भाव के पद रचे थे।

गुलेरी जी ने ही नारनौल के एक दूसरे कवि श्रीधर का भी पता दिया है जो जाति का गौड़ ब्राह्मण था और वैद्य-शास्त्री बताया गया है। कवि श्रीधर ने सम्वत् 1977 में एक छन्दोबद्ध नाटक 'दया कुमार' की रचना की थी।

इस लेख में हरियाणा निवासी पचास से ऊपर कवियों का संक्षिप्त सा परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस सूची में केवल उन कवियों का ही नामोल्लेख किया गया है जिनके बारे में अन्तःसाक्ष्य से या बहिर्साक्ष्य से यह सिद्ध है कि वे हरियाणा के थे। इनके अतिरिक्त शताधिक कवि ऐसे रहे हैं जिन के बारे में पर्याप्त गुंजायश है कि उन को हरियाणवी माना जा सके किन्तु स्पष्ट साक्षी न होने से इस सूची में उन्हें शामिल नहीं किया जा सका।

प्रस्तुत विवरण यदि किसी शोधार्थी को दिशा निर्देशन दे सके तो हम प्रयास को सफल मानेंगे। लेख को विस्तार से बचाने के हेतु यहां कवियों की रचना के नमूने नहीं दिये जा सके। ऐसा हो पाता तो लेख की सरसता भी सम्भव हो पाती।

हिन्दी साहित्य को हरियाणा की देन

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'—

प्राचीन काल से आर्यणक, हरयाणक, ब्रह्मावर्त, धर्मक्षेत्र आदि विभिन्न नामों से विख्यात 'हरियाणा प्रदेश' जहां अपनी युद्ध-कुशलता के लिए अग्रणी कहा जाता है, वहां साहित्य के क्षेत्र में भी उसकी देन कम नहीं है। 'भगवद्गीता' जैसे अमर ग्रन्थ का अवतरण, जहां इसकी कुरुक्षेत्र की युद्धस्थली में हुआ वहां युद्ध इतिहासकार हिन्दी-साहित्य के आदिकवि चन्द वरदाई और भक्तकवि सूरदास को भी हरियाणा की ही देन मानते हैं। प्राचीन कवियों में इस क्षेत्र के पुष्पदन्त, सन्त ऊधोदास, वीरभान, जैन कवि मालदेव, महात्मा हरिदास, सन्त नित्यानन्द, बनारसीदास, जैन कवि सुन्दर दास, चरण-दास, सहजो बाई, दया बाई, गरीबदास, साधु गुलाबसिंह, कवि आत्माराम, साधु निश्चल दास, बनवारीदास, कवि उम्मेद और मस्तराम आदि ऐसे अनेक उल्लेखनीय नाम हैं, जिनकी रचनाओं से हिन्दी साहित्य अभिवृद्ध और समृद्ध हुआ है। मुस्लिम सन्तों में भी शेख बू-अली शाह कलंदर, मुहम्मद अफजल, शेख अब्दुल कद्दूस (अलखदास), सन्त सादुल्ला, शेख बहाउद्दीन चिश्ती, गुलाम नीलामी, नूर मुहम्मद तथा जन कवि हरनो आदि के नाम ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी भावनाओं का प्रकटीकरण हिन्दी तथा ब्रज भाषा के माध्यम से किया और इनकी रचनाएं हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि का कारण बनीं।

शेख बू-अली शाह कलंदर के ये दो दोहे भारतीय लोक मानस में उनकी लोकप्रियता को प्रस्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं :—

सजन सकारे जायेंगे, नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन का भोर कहीं ना होय ॥
पी फटतहि सखि सुनत है, पिय परवेसहि गौन।
पिय में हिय में होड़ है, पहले फटि है कौन ॥

कुछ ऐसे कवि भी इस क्षेत्र में हुए हैं जो कभी पंजाबी और कभी हिन्दी में अपनी रचनाएं किया करते थे। ऐसे कवियों में दीदार सिंह, भाई सन्तोख सिंह, साहिबा सिंह मृगेन्द्र, बग्गा सिंह तथा उज्ज्वल सिंह आदि के नाम विशेष महत्व रखते हैं। ये सभी नाम ऐसे हैं जिन्होंने आदिकालीन हिन्दी काव्य की समृद्धि में अपना अनन्य योगदान दिया था।

इनके बाद आधुनिक हिन्दी काल को विकसित करने में हरियाणा के जिन लेखकों ने अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया उनमें सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त, माधव प्रसाद मिश्र और राधाकृष्ण मिश्र के ऐसे नाम हैं, जिनकी देन को हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय माना गया है। बालमुकुन्द गुप्त मूलतः उर्दू के पत्रकार थे, किन्तु बाद में वे व्याख्यान वाचस्पति दीनदयालु शर्मा की प्रेरणा से हिन्दी-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। सबसे पहले वे महामना पं० मदनमोहन मालवीय के सम्पादन में कालाकांकर (उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित होने वाले दैनिक हिन्दुस्तान में चले गए और बाद में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले हिन्दी बंगवासी पत्र के सम्पादक बने। फिर उन्होंने वहां से ही 'भारत मित्र' पत्र का सम्पादन आरम्भ किया। 'भारत मित्र' के माध्यम से जहां उन्होंने हिन्दी निबन्ध को सुपुष्ट बनाने में अपना अनन्य योगदान दिया वहां देश की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं के विरोध में खुलकर व्यंग्य लेख लिखे। उनके द्वारा लिखे गए ऐसे लेख 'शिवशम्भु का चिट्ठा' नाम से विख्यात हैं। वे एक उत्कृष्ट निबन्धकार और जागरूक पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध होने के साथ-साथ प्रभावशाली कवि के रूप में भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भारतेन्दु युग के नव-जागरण का सन्देश देने में वे भी किसी से पीछे नहीं रहे। देश के गरीब किसानों और मजदूरों के प्रति उनकी कितनी सहानुभूति थी इसकी झांकी आप उनकी इन पंक्तियों से ले सकते हैं :—

जिनके कारण सब सुख पावें,

जिनका बोया सब जन खावें ।
हाय, हाय उनके बालक नित,
भूख के मारे चिल्लावें ।
अहा बिचारे दुख के मारे,
निस दिन पच-पच मरें किसान ।
जब अनाज उत्पन्न होय तब
तब उठवा ले जाय लगान ।

स्वदेशी-आन्दोलन के प्रति उनकी कितनी सहानुभूति थी, यह इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है :—

आओ एक प्रतिज्ञा करें
एक साथ जीवें, मरें
अपनी चीजें आप बनाएं
उनसे अपना अंग सजाएं
अपना बोया आप ही खावें
अपना कपड़ा आप बनावें
मात विदेशी दूर भगावें
अपना चरखा आप चलावें
बढ़े सदा अपना व्यापार
चारों दिसि हो मौज-बहार

धनी व्यक्तियों को धिक्कारते हुए उन्होंने जो लम्बी कविता लिखी थी उसकी ये पंक्तियां आज के वातावरण में भी ज्यों की त्यों सटीक बैठती हैं :—

हे धनिको क्या दीन जनों की
नहिं सुनते हो हाहाकार
जिसका पड़ौसी भूखा
उसके जीवन को धिक्कार
हे बाबा, जो यह बेचारे
भूखों प्राण गवायेंगे
तब कहिये, क्या धनी
गलाकर अशर्फियां पी जायेंगे ।

श्री बालमुकुन्द गुप्त के बाद हरियाणा के साहित्य-सेवियों में श्री माधव प्रसाद मिश्र का नाम आता है । इन्होंने कविता से अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया और धीरे धीरे अपनी लेखनी से ऐसी अनेक रचनाएं प्रस्तुत कीं—जिन्हें-देख और पढ़कर उनके प्रखर पाण्डित्य तथा अगाध ज्ञान का लोहा मानना पड़ता है । सबसे पहले उन्होंने श्री देवकी नन्दन खत्री के सहयोग से काशी से 'सुदर्शन' नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया । इसके माध्यम से उन्होंने साहित्य, धर्म और राजनीति के क्षेत्रों में फैली अराजकता और अन्धाधुन्धी के विरुद्ध खुलकर लिखा । यहां तक कि 'सरस्वती' के तत्कालीन सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से टकराने में भी वे न चूके । कविवर श्रीधर पाठक की 'उजड़ा, ग्राम' और 'एकान्तवासी योगी' नामक रचनाओं की खरी समालोचना करने में भी वे पीछे नहीं रहे । उनकी निबन्ध लेखन-शैली की उत्कृष्टता के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में यह ठीक ही लिखा है :—

"द्वितीय उत्थान के आरम्भ काल में एक बड़े ही प्रभावशाली लेखक के उदय की उज्ज्वल आभा हिन्दी-साहित्य गगन में कुछ समय के लिए दिखाई पड़ी, पर खेद है कि अकाल ही विलीन हो गई। 'सुदर्शन' सम्पादक पं० माधव प्रसाद मिश्र के मार्मिक और ओजस्वी लेखों को जिन्होंने पढ़ा होगा उनके हृदय में उनकी मधुर स्मृति अवश्य बनी होगी । उनके निबन्ध अधिकतर भावात्मक होते थे और धाराशैली पर चलते थे।"

हिन्दी के प्रति उनके मन में कितना दर्द था इसका परिचय उनके 'हिन्दी भाषा' शीर्षक निबन्ध की इन पंक्तियों से मिलता है.....

"खेद है कि आजकल बहुत से पुरुष हिन्दी भाषा को अधूरी समझ कर उसका अनादर करते हैं। जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें समझना चाहिये कि जिस भाषा में महात्मा सूरदास, तुलसीदास आदि भक्तजनों ने भक्तिभावमय पदों की रचना की है, जिस भाषा में बिहारी लाल, पद्माकर, आनन्दघन प्रभृति कवि वृन्द ने सरस प्रसाद-गुण विशिष्ट रचना द्वारा मूर्तिमान शृंगार रस को खड़ा कर दिखाया है और जिस भाषा में साधु निश्चलदास ने 'विचार सागर' जैसे दार्शनिक विचार से भरपूर ग्रन्थ दिया है, उस भाषा को अधूरी समझकर यह निश्चय करना कि इसमें अर्थ की व्यंजकता, वर्ण की सुन्दरता और विषय की गम्भीरता नहीं है, यह भारी भ्रम है।"

श्री माधव मिश्र के छोटे भाई राधाकृष्ण मिश्र भी हिन्दी के अच्छे प्रेमी और सुलेखक थे। अपने अग्रज के कुशल निर्देशन में आपने कई पत्रों का सम्पादन बड़ी सफलतापूर्वक किया था। इसी परम्परा में राजनीति-शास्त्र और नागरिक शास्त्र जैसे विषयों के विशेषज्ञ श्री भगवान दास केला का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका जन्म पानीपत तहसील के बाबैल नामक ग्राम में हुआ था। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ पत्र-कारिता से किया था और बाद में धीरे-धीरे राजनीति-शास्त्र और नागरिक-शास्त्र के उच्चकोटि के लेखकों में माने गए। इनके द्वारा संचालित 'भारतीय ग्रन्थ माला' नामक प्रकाशन संस्था कार्यालय पहले वृन्दावन में था और बाद में वह प्रयाग चला गया। अब वहां पर केला जी के सुपुत्र श्री ओम्प्रकाश केला 'भारतीय प्रकाशन' नाम से प्रकाशन-कार्य करते हैं। वे भी अपने पिता केला जी की भांति नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र की पुस्तकें लिखते हैं। परन्तु अब वे प्रकाशक अधिक हैं, लेखक कम। श्री भगवान दास केला अबोहर में सन् 1941 में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अन्तर्गत आयोजित 'समाज शास्त्र परिषद्' के अध्यक्ष मनोनीत हुए थे।

हिन्दी के प्रतिष्ठित कहानीकार श्री विशम्भर नाथ शर्मा कौशिक का जन्म भी अम्बाला छावनी में हुआ था और बाद में उनका परिवार कानपुर चला गया और वे वहीं के हो गए। कहानी तथा उपन्यास-लेखन के अतिरिक्त वे 'चांद' मासिक में "दुबे की चिट्ठियाँ" नाम से व्यंग्य तथा हास्य स्तम्भ भी लिखा करते थे। उनके इस स्तम्भ के अन्तर्गत तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक रूढ़ियों पर बड़ा तीखा व्यंग्य होता था। बालमुकुन्द गुप्त, प्रेम चन्द और सुदर्शन की भांति ही कौशिक जी पहले उर्दू में लिखा करते थे।

भिवानी के पं० नेकीराम शर्मा 'हरियाणा केसरी' के नाम से विख्यात थे। वे एक अच्छे वक्ता और नेता के रूप में प्रतिष्ठित थे, परन्तु अपने सामाजिक जीवन का आरम्भ उन्होंने भी पहले लेखन से ही किया था। पहले उन्होंने भिवानी से 'सन्देश' नामक पत्र भी हिन्दी में निकाला था। आपके लेख 'अभ्युदय' तथा 'वेंकटेश्वर समाचार' आदि पत्रों में प्रकाशित हुआ करते थे। हरियाणा में राष्ट्रीय जागरण लाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। इसी क्रम में ला० हरदेव सहाय का नाम भी उल्लेखनीय है। वे मूलतः समाज-सेवक और राज-नीतिक नेता थे, परन्तु हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार तथा प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योग रहता था। यहां तक कि उन्होंने अपनी जन्म भूमि सातरोड़ (हिसार) से 'ग्राम सेवक' नामक एक साप्ताहिक का संचालन और सम्पादन भी कई वर्ष तक किया और बाद में दिल्ली से अपने जीवन-काल तक 'गोसेवक' नाम साप्ताहिक का सफल सम्पादन करते रहे। यह पत्र अब भी विशम्भर प्रसाद शर्मा के सम्पादन में प्रकाशित हो रहा है। उन्होंने 'गोधन' नामक पत्र का सम्पादन और प्रकाशन भी किया था। उनकी 'गाय ही क्यों' नामक पुस्तक विशेष उल्लेखनीय है।

भिवानी के कवि तुलसीदास शर्मा 'दिनेश' की 'पुरुषोत्तम महाकाव्य', "भक्तभारती", 'मतवाली मीरा', 'श्याम सतसई' तथा 'सत्याग्रही प्रह्लाद' आदि अनेक काव्य-कृतियां हैं। मुनीमी जैसे कार्य को करते हुए भी उन्होंने सरस्वती की कठोर साधना की यह वास्तव में आश्चर्य की ही बात है। उनका अधिकांश समय बम्बई में ही व्यतीत हुआ और उनके कवित्व का विकास 'वेंकटेश्वर समाचार' के माध्यम से हुआ था। इसी स्थल पर भिवानी के कवि केहरी कृपाण (लक्ष्मी नारायण) का नाम भी अविस्मरणीय है। इन्होंने भी 50 से अधिक काव्य-कृतियां मां भारती के मन्दिर में समर्पित की हैं। इनका साधना-क्षेत्र, प्रारम्भ में भिवानी रहा, परन्तु आजकल उत्तर प्रदेश के सीतापुर नामक स्थान में रह रहे हैं। आपके 'शिशुपाल वध', 'नेता जी सुभाष' और 'कमलापति नेहरू' आदि काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं। भिवानी के गदरकालीन वीर 'कविरत्न प्रेमा सिंह' पर भी आपकी ओजस्वी रचना

का प्रभाव है । भिवानी के श्री मुरलीधर दिनोदिया, कन्हैया लाल मिण्डा 'शान्तेश' और फूलचन्द्र शर्मा 'निडर' की साहित्य-सेवा भी अविस्मरणीय है । दिनोदिया जी अपनी विशिष्ट संस्मरण लेखन-प्रतिभा के लिए ख्याति अर्जित कर चुके हैं । इन्होंने कभी भिवानी से 'एकता' नामक साप्ताहिक का सम्पादन किया था ।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन का जन्म भी अम्बाला के सोहना नामक ग्राम में हुआ था । इनका पूर्व नाम हरनामदास है । बौद्ध भिक्षु होने के उपरान्त ही इन्होंने पालि, संस्कृत तथा सिंहली आदि भाषाओं का विधिवत् अध्ययन किया और अनेक बार मलाया, जापान, बर्मा तथा लंका आदि देशों की यात्राएं कीं । आपके यात्रा वृत्तान्त और संस्मरणों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के मन्त्री के रूप में आपने राष्ट्रभाषा की जो महती सेवा की है, वह अविस्मरणीय है ।

उर्दू शायरी की चाशनी से हिन्दी के पाठकों को परिचित कराने वाले श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय का जन्म भी गुड़गांव जिले के बादशाहपुर नामक ग्राम में हुआ था । वे वर्षों तक हिन्दी की प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्था भारतीय ज्ञानपीठ के मन्त्री रहे हैं और आजकल सेवा-मुक्त होकर अपने पुत्र के पास सहारनपुर में रह रहे हैं । साहित्य तथा समाज के प्रति की गई सेवाओं के लिए हरियाणा सरकार ने आपका अभिनन्दन भी किया था । इनके समकालीन श्री माईदयाल जैन की हिन्दी सेवाएं भी अविस्मरणीय हैं । रोहतक जिले के गोहाना नामक स्थान में जन्म लेकर आपने अपना कार्यक्षेत्र दिल्ली को बनाया । अध्यापन करने के साथ-साथ लेखन के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया । आपकी 'हिन्दी शब्द रचना' नामक पुस्तक में हिन्दी शब्दों की उत्पत्ति और उनकी परम्परा का सुन्दर अनुशीलन किया गया है ।

हरियाणा के भूतपूर्व राजकवि श्री खुशीराम शर्मा वाशिष्ठ हिन्दी के उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ अच्छे पत्रकार और समालोचक भी हैं । उनकी 'प्रेमोपहार', 'रण निमन्त्रण', 'गुरु गोबिन्द सिंह' और 'बुद्ध चरित' आदि कृतियां उल्लेखनीय हैं । श्री देवराज 'दिनेश' का जन्म भी जाखल मंडी 'हरियाणा' में हुआ था । डॉ० किरण चन्द शर्मा का 'केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व' नामक अकेला ग्रन्थ ही ऐसा है, जो उनकी साहित्यिक गरिमा को प्रतिष्ठित करता है । इनका जन्म सोनीपत में हुआ था । नारनौल निवासी ऋषि जैमिनी कौशिक वरुआ यद्यपि अपने प्रदेश से बाहर ही रहे हैं, परन्तु हरियाणा के सांस्कृतिक इतिहास की खोज में वे अब भी संलग्न हैं और शीघ्र ही उनकी इस शोध का परिणाम हमारे सामने आने वाला है । जैमिनी प्रकाशन कलकत्ता के माध्यम से उन्होंने हिन्दी में ऐसे अनूठे अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत किए हैं, जिनसे उनकी सम्पादन कला की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है । उनके ऐसे ग्रन्थों में 'निराला अभिनन्दन ग्रन्थ', 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ', 'नगरी कलकत्ता की', आदि के नाम अविस्मरणीय हैं । उनके द्वारा लिखित माखनलाल चतुर्वेदी की अधूरी जीवनी भी उनकी शैली की विशिष्टता की द्योतक है । काश वे इसे अपने जीवन-काल में पूरा कर पाते ।

यहां के कुछ संस्कृत के विद्वानों ने भी अपनी क्षमता और सीमाओं के अनुरूप हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में जो योग दिया है, उसका भी हरियाणा के साहित्यक जागरण में कम महत्व नहीं है । ऐसे विद्वानों में छज्जूराम शास्त्री, विद्या सागर, डॉ० रामगोपाल, आचार्य भगवान देव (अब स्वा० ओमानन्द), श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती और पं० माधवाचार्य आदि के नाम विशेष स्थान रखते हैं । आचार्य भगवान देव द्वारा प्रस्थापित गुरुकुल झज्जर का संग्रहालय उनके संस्कृति और पुरातत्व-प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है । श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती का 'सर्वखाप पंचायत की यशोगाथा' नामक ग्रन्थ उनकी खोज का पावन अवदान है । डॉ० रामगोपाल के वैदिक व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ का हिन्दी जगत में बहुत स्वागत हुआ है ।

हरियाणा की लोक-संस्कृति और लोक कला के उत्थान तथा विकास के क्षेत्र में श्री राजाराम शास्त्री ने 'हरियाणा लोकमंच' के माध्यम से कार्य किया है । उनका 'झाड़ू फिरी' हरियाणवी भाषा का पहला उपन्यास है । श्री देवी शंकर प्रभाकर भी हरयाणवी संस्कृति और लोक-साहित्य की खोज के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं । इस स्थल पर यदि हमने श्री जसवन्त सिंह 'टोहानवी', लोक-कवि बस्ती राम, लखमीचन्द सांगी और धनपत सिंह के नाम का उल्लेख न किया तो हम अपने कर्त्तव्य से च्युत समझे जायेंगे । यदि ये सब विभूतियां अपनी रचनाओं और सांगों के माध्यम के रूप में हिन्दी को न अपनातीं तो हरियाणा में हिन्दी का वह प्रचार कदापि न होता, जो आज

दिखाई दे रहा है। अकेले श्री जसवन्त सिंह टोहानवी की 'आर्य संगीत रामायण' ही ऐसी कृति है, जिसने हरियाणा के जन-जन में राम के पावन तथा उदात्त चरित्र का प्रचार करने के साथ-साथ उसमें हिन्दी-प्रेम भी प्रचुर मात्रा में जगाया है।

सिरसा के शान्त शास्त्री 'शालिहास' भी हिन्दी-साहित्य और भाषा के प्रचार का कार्य कर रहे हैं। डॉ० रणजीत सिंह गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक और हिन्दी के गम्भीर लेखक हैं। उन्होंने हरियाणा के प्राचीन कवि सन्त निश्चलदास पर शोध करके पी०एच डी० की उपाधि प्राप्त की है। पंजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स ब्यूरो के मंत्री श्री बाल कृष्ण एम०ए०, रोहतक निवासी हैं। इनकी अनेक पुस्तकें हिन्दी साहित्य की गौरव-निधि हैं। कवियों में सर्व श्री बलदेवराज शान्त, ओम् प्रकाश 'आदित्य', दीपचन्द 'निर्मोही', अल्हड़ बीकानेरी, और विष्णुदत्त कविरत्न के नाम भी भुलाये नहीं जा सकते।

इस लेख का समाहार करते हुए हम अबोहर के साहित्य सदन और उसके कर्मठ संचालक स्वामी केशवानन्द का उल्लेख अवश्य करना चाहेंगे। हम अबोहर को हरियाणा का ही एक अंग मानते हैं। सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से वह हरियाणा का ही एक भाग है। अबोहर से श्री तेगराम के सम्पादन में प्रकाशित हो ने वाला 'दीपक' हिन्दी के प्रमुखतम मासिक पत्रों में गिना जाता था। इस श्रृंखला में रिवाड़ी के भक्ति आश्रम से प्रकाशित होने वाली 'भक्ति' पत्रिका भी अपने विषय की अद्भुत सामग्री प्रस्तुत किया करती थी। इन दोनों पत्रों के माध्यम से हरियाणा में पत्रकारिता का जो उत्थान हुआ, उससे अनेक लेखक हमें मिले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरियाणा के साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान तथा विकास के लिए जो योगदान दिया है, वह किसी भी प्रदेश की तुलना में कम नहीं कहा जा सकता।

हरियाणा के पन्थ-प्रवर्तक सन्त

—डॉ. रणजीत सिंह—

कबीर के व्यापक प्रभाव को देखकर अनन्तरकालीन सन्तों ने अपने-अपने सिद्धांतों की पुष्टि में अपनी शिष्य परम्परा को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। इन्ही शिष्यों की सैद्धांतिक अनैक्यता के कारण पन्थ-प्रवर्तन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। हरियाणा के पन्थ-प्रवर्तक सन्त उल्लिखित कोटि से भिन्न हैं। क्योंकि उनका मूल पूर्व-प्रवर्तित पन्थ न होकर स्वतः चिन्तन है। हरियाणा के पंथ-प्रवर्तक सन्त श्रोत और स्मार्त ग्रन्थों के पंडित न हो कर सामान्य ज्ञान के धनी और अनुभवी हैं।

वीर भान

अमेरिकन मिशनरी एलीसन ने "दि साधूज" नामक अपनी पुस्तक में साध-सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक के विषय में निर्णय देते हुए कहा है कि इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक वीर भान और जोगी दास हुए होंगे। वीर भान के विषय में ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में फरुखाबाद वाली शाखा का आश्रय लेकर कहा जा सकता है कि इनका जन्म नारनौल के निकट बजेसर ग्राम में हुआ और इन्होंने सम्वत् सौलह सो के आस-पास उदो दास से दीक्षा ली। परशु राम चतुर्वेदी भी यह मानते हैं कि वीर भान ने साध-सम्प्रदाय को उदो दास की प्रेरणा पा कर सम्वत् सौलह सौ के आस-पास प्रवर्तित किया। हमारे विचार से हरियाणा में प्रचलित तथ्यों के आधार पर साध सम्प्रदाय और सत्तनामी सम्प्रदाय एक ही दिशा के सूचक थे।

साध वस्तुतः हरियाणा के गृहस्थ किसान थे तथा इनका मूल मंत्र "सत्त नाम" था।

सत्त नाम सम्प्रदाय की तीन शाखायें प्रसिद्ध हैं। हरियाणा में नारनौल शाखा का ही प्रचलन है। नारनौल, जहां भारतीय सन्त-सम्प्रदायों की जन्म-भूमि रहा है वहां सूफी सम्प्रदाय का भी यह बड़ा भारी केन्द्र रहा है। हरियाणा के जिला महेन्द्रगढ़, रोहतक, करनाल, तथा जीन्द जिलों के अनेक ग्रामों में अब भी साध-सम्प्रदाय के अनुयायी विद्यमान हैं। सत्त नामी विद्रोह में जोगी दास का कितना हाथ था यह बताना असम्भव सा है। परन्तु इस बात को सभी विद्वानों ने स्वीकारा है कि जोगी दास का प्रभाव नारनौल क्षेत्र में था। हरियाणा में प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार पर कहा जाता है कि वीर भान और जोगी दास भाई-भाई थे। इनमें से वीर भान साधु स्वभाव का था तथा सारी खेती-बाड़ी देखने का काम जोगी दास ही किया करता था। सत्त नामी विद्रोह के किसी विशेष नेता का पता अभी तक नहीं लग सका है। सत्त नामी विद्रोह एक धार्मिक क्रांति थी अथवा अपनी शिकायतों को दूर कराने का प्रयास था। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह निश्चित है कि सम्वत् 1729-1730 में नारनौल क्षेत्र में इस सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था। इनकी सिद्धियों के विषय में विविध धारणायें समाज में घर कर चुकी थीं। इन्हें दिव्य शक्ति से ओत-प्रोत माना जाने लगा था। सत्त नामी विद्रोह को क्या संज्ञा दी जाये, यह एक ज्वलन्त प्रश्न है? परन्तु यह निश्चित है कि हरियाणा में किसी धार्मिक सम्प्रदाय को आधार मान कर राज्य के विरुद्ध लड़ा गया यह प्रथम युद्ध था। इसका परिणाम चाहे जो कुछ निकला हो पर इस सम्प्रदाय की विशेष ख्याति हुई और इनके अनुयायिओं की संख्या भी बढ़ने लगी। हरियाणा में सत्त नामी साधु (गृहस्थ) आज भी साध नाम से पुकारे जाते हैं। इनका परस्पर अभिवादन का शब्द "सत्त नाम" है। हरियाणा में नाथ पंथी, दादू पंथी साधुओं को भी साध नाम से जन साधारण पुकारता है। परन्तु भिन्नता के लिये बाबा आदि सम्बोधन भी लगाते हैं।

खफी खां ने सत्त नामियों के चरित्र बल की बड़ी प्रशंसा की है। इसी चरित्र बल के भरोसे पर सत्त नामियों ने औरंगजेब से काफी समय तक लोहा लिया था। सत्त नामियों की नारनौल शाखा के अनुयायी गृहस्थ

जाट किसान थे, जो कि प्राय: अनपढ़ होने के साथ खेती के कार्य में लगे रहते थे। अत: इस शाखा का प्रचार दूर-दूर तक नहीं हो सका।

सत्त नामियों की धार्मिक मान्यताओं के विषय में प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि इनकी दृष्टि में ईश्वर एक है। वह सर्वव्यापक तथा जगन्नियन्ता है। अन्य किसी की उपासना उपयुक्त नहीं। साधु-सन्तों का आदर करना चाहिये, पहले अतिथि को भोजन करा कर उसके बाद खाना चाहिये। हरियाणा में सत्त नामियों की एक अन्य शाखा भी मिलती है। इस शाखा के अनुयायी 'घीसा पंथी' कहलाते हैं। इन्हीं को सम्भवत: परशुराम चतुर्वेदी ने घासी दास के अनुयायी माना है। घीसा पन्थ के अनुयायी प्राय: चमार होते हैं।

गरीब दास

गरीब दास के नाम से भी हरियाणा में एक पन्थ मिलता है। ये छुड़ानी जिला रोहतक के रहने वाले थे तथा जाति के जाट। इनका जन्म वैशाख शुदी पन्द्रह सम्वत् 1774 में हुआ था। गरीब दास जी कबीर को अपना स्वप्न गुरु मानते थे। इनके नाम से अनेक पद प्रचलित हैं। इन सब पदों को मिला कर अजरानन्दरमता राम ने 'सद् गुरु ग्रन्थ गरीबदास की वाणी' नाम से एक ग्रन्थ प्रकाशित करवाया। वैलवैडियर प्रेस इलाहाबाद से भी इनकी वाणियों का संक्षिप्त संग्रह प्रकाशित हो चुका है। कबीर के समान ये भी राम नाम के उपासक थे परन्तु उनके राम कबीर के राम के समान निर्गुण होते हुए भी सगुण अवतार वादी दृष्टिकोण को लिये हुए थे। गरीब दास जी ने राम के अविकल, अतीन्द्रिय, अगम, अगोचर रूप को जहां अपनी वाणियों में स्थान दिया है वहां राम के सगुण रूप को भी उतना ही महत्व प्रदान करते हुए लोक वाणियों का आधार मान कर राम कथा को सामयिक रूप प्रदान किया है। बहुत से विद्वान कबीर पंथ और गरीब पंथ में नितान्त अभिन्नता का आश्रय लेकर दोनों को एक मानते हैं। परन्तु कबीर पंथ और गरीब पंथ की मान्यताओं में पार्थक्य इस प्रकार है :—

कबीर पंथ और गरीब पंथ की विभिन्नताओं का प्रथम पहलू यह है कि गरीब पंथ में सत्संग को सर्वोपरि माना है। सत्संग की महत्ता का आधार इस दृढ़ भित्ति पर है कि न जाने किस परिधान में भगवान के दर्शन हो जायें। इसके अतिरिक्त कबीर पंथ में अवतार वाद की पुष्टि कहीं भी नहीं की गई, जबकि गरीब पंथ में यह मान्यता है कि भक्तों के उद्धार के लिये भगवान अवतरित होते हैं। गरीब पंथ के अनुयायी प्राय: सवर्ण हिन्दू ही मिलते हैं जबकि कबीर पंथ के अनुयायी किसी वर्ण के होने के साथ मुसलमान भी हो सकते हैं। गरीब दास को हिन्दी साहित्य में निर्गुण कवियों की कोटि में रखा गया है। परन्तु मान्यताओं की दृष्टि से वे सगुण और निर्गुण से परे प्रतीत होते हैं।

गरीब पंथ के अध्यात्मिक विचारों पर अपने से पूर्ववर्ती सन्तों की गहरी छाप है। इसका प्रमुख कारण गरीब दास का अनपढ़ होना है। परन्तु उनके विचार पूर्ववर्ती सन्तों के समान होते हुए भी सामयिक और स्थानीय हैं। सामाजिकता की दृष्टि से उन्होंने एक-पत्नीव्रत को सर्वोपरिता दी है। छल-छद्म को बुरा मानते हुए मांस-मदिरा की निन्दा की है। गरीब दास जी के समय हरियाणा में शैव तथा धर्म दासियों का प्रभाव भी लक्षित होता है। 'हांड़ी भरंगी' सम्प्रदाय का एक साधु गरीब दास जी से वाद-विवाद करता हुआ मिलता है। इसी प्रकार एक धर्म दासिया सम्प्रदाय का साधु गरीब दास जी से सिद्धांत पक्ष की हार मानता है।

गरीब पंथ में चिन्तन पक्ष पर बल देते हुए सिद्धांत पक्ष को पुष्ट किया गया है। गरीब पंथ में पर-प्रत्यय-नेय बुद्धि की अपेक्षा प्रत्यक्षानुभव प्रयोग पर ही अधिक बल दिया गया है। इस प्रकार गरीब पंथ में ऐतिह्य और प्रत्यक्ष प्रमाण की ही उपादेयता सिद्ध होती है। कर्म सिद्धांत के आधार पर इस पंथ में निमित्त और उपादान दोनों करणों पर बल दिया गया है। वादों में यह पंथ विवर्तवाद और अवभास वाद का मानने वाला है। ख्यातियों में अनिर्वचनीय और अनात्म ख्याति का मिश्रण है।

डेढ़ राज

ये नांगी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक थे। इनका जन्म धांसरू जिला महेन्द्र गढ़ में सम्वत् 1828 में हुआ। डेढ़ राज के पिता का नाम पूरण था और यह जाति के ब्राह्मण थे। दारिद्र्य के कारण यह घर छोड़ कर आगरा चले

गये और वहां धर्म दास नामक दीवान के यहां जा कर नौकरी कर ली। नांगी सम्प्रदाय के विद्वान राज ने लिखा है कि यह धर्म दास की पत्नी के साथ देशाटन के लिये गये। **ग्लॉसरी ऑफ दी ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ दी पंजाब एंड नार्थ वैस्ट फ्रंटियर प्राविंस** पुस्तक में इन दोनों के स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में सन्देहास्पद दृष्टि से देखा गया है। सन्त ड्रेढ़ राज ने अपने पन्थ का प्रचार प्रौढ़ावस्था में आकर किया। प्रचार के लिये अपनी जन्म भूमि हरियाणा को ही छांटा। इनके आध्यात्मिक विचार प्रायः अन्य साधु-सन्तों की ही भांति थे। परन्तु इनके सामाजिक विचारों का हरियाणा के लिये विशेष महत्व था। इन्होंने जाति-पाति के बन्धन को ढीला करके विवाह करने पर जोर दिया तथा पर्दा प्रथा के विरोध में प्रचार करना आरंम्भ किया। जिसके परिणाम स्वरूप नारनौल के शासक नवाजत अली खां ने इन्हें कारागार में डाल दिया। इनकी वाणिओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये लोक भाषा में थीं, परन्तु आज कल इनका कुछ भी पता नहीं चलता। प्रभाव की दृष्टि से कहा जा सकता है कि जाति-पाति के बन्धन को तोड़ कर विवाह करना तथा पर्दा का रिवाज हटाना एक क्रांतिकारी पग था।

इस प्रकार हरियाणा में पन्थ प्रवर्तक सन्तों की एक अपनी ही विशेषता है, जो अध्यात्मिक धरातल को छूते हुए भी सामाजिक परिवेश में अपने को उत्तरदायी समझते हैं।

हाली—एक अज़ीम शायर, अजीम इन्सान

—एस. वाई. कुरैशी—

पानीपत हिन्दुस्तान की धरती पर लड़े गए तीन बड़े युद्धों की वजह से प्रसिद्ध है। भारत के इतिहास में पानीपत के इस महत्व से तो सभी परिचित हैं। परन्तु यह बात कम लोग जानते हैं कि युद्धों के इस ऐतिहासिक नगर ने देश की साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में भी ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। मुसलिम काल के पूर्वार्द्ध से ही पानीपत सूफ़ी संतों का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र बन गया था। दिल्ली के बहुत समीप होने के कारण पानीपत में पनपी सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों ने पूरे देश पर अपना प्रभाव छोड़ा था।

कुरुक्षेत्र और पानीपत के इस समूचे भू-क्षेत्र में दो संस्कृतियों का समन्वय भी सूफ़ी काल में हुआ। वेदांतियों, दर्शन वेत्ताओं तथा मुसलिम संतों ने एक दूसरे को प्रभावित किया था। सूफी संतों ने तो बहुत कुछ लिया था--हिन्दू दर्शन से। इन सूफी संतों के विचार-बोध की जमीन अब पूरी तरह हिन्दुस्तानी थी। उन्होंने एक गंगा जमनी भाषा को भी विकसित किया था जिस में दिल्ली--पानीपत की जनभाषा का खूबसूरत रंग था।

हजरत बुअली कलन्दर के नाम से कौन परिचित नहीं। उस महान् सूफ़ी विचारक ने जो अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन था, पूरे देश के सांस्कृतिक वातावरण को प्रभावित किया था। उस का साधना क्षेत्र भी तो पानीपत-करनाल रहा और अन्त में वह महान् दार्शनिक इस धरती की माटी में समा गया।

एक सुदृढ़ परम्परा का विकास हुआ। पानीपत ने सदा दिल्ली को प्रभावित किया। मुग़ल काल में तो स्वयं बादशाहों ने पानीपत को एक तीर्थ सरीखा सम्मान दिया। सूफ़ी संतों की यह परम्परा ख़ुद मौलाना अलताफ़ हुसैन हाली तक कायम रही। सुखद संयोग है कि आज भी हजरत बुअली कलन्दर की दरगाह के अहाते में ही देश के उस महान् शायर की कब्र है जिस पर अनेकों बार मैं ने अक़ीदत के फूल चढ़ाए हैं।

तो कहना न होगा कि हाली एक ऐसी माटी में जन्मे थे जिस की एक परम्परा थी; अपनी रंगत थी। हाली पर लिखते हुए उस परम्परा का ज़िक्र जो ऊपर है, जरूरी था।

हाली एक युग-प्रवर्तक

आज जब हम हाली के व्यक्तित्व और उन के अदब का अध्ययन करने बैठते हैं तो एक तथ्य उभर कर हमारे सामने उजागर होता है कि हाली न केवल एक साहित्यकार, अदीब या कवि ही थे बल्कि वे अपने आप में एक युग-प्रवर्तक भी थे। विशेष रूप से पिछड़े हुए भारतीय मुसलिम समाज में उन्होंने नवचेतना का संचार किया था और अपनी लेखनी के बल पर वह कुछ कर दिखाया था जो शायद किसी बड़े से बड़े समाज सुधारक के बूते की बात नहीं।

हाली एक अज़ीम शायर के साथ-साथ एक बेहद पाक इन्सान थे। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसे देखकर सम्मान और श्रद्धा पैदा हो, एक ऐसा इन्सान जिस में पवित्रता और मानवीयता कूट-कूट कर भरी हो। सन् 1891 में अलीगढ़ के एक जलसे में भाषण करते हुए खुद सर सय्यद ने उनके बारे में कहा था--

"हम को खुदा का शुक्र अदा करना चाहिए और फ़क्र करना चाहिए कि हमारी कौम में एक ऐसा इन्सान पैदा हुआ जिसे आइन्दा जमाने में फ़ख़रे-कौम कहा जाएगा।"

हाली का लिखने का दायरा बहुत व्यापक था ? एक अजीम शायर तो वे थे ही, साथ ही वे अपने जमाने के उर्दू के माने हुए गद्यकार भी थे। उर्दू जबान को निखारने-संवारने में उन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। और उसके आधुनिक स्वरूपों को दिशा देने में बुनियाद का काम किया था। चोटी के विद्वान और दार्शनिक होते हुए भी उन्होंने लोगों की अपनी जुबान में भी लिखा। उनकी गंगा जमनी भाषा की रचनाओं में एक खास तरह का आकर्षण देखने को मिलता है। इस तरह की उनकी कविताओं में पानीपत की माटी की चाशनी स्पष्ट झलकती है। हाली ने उर्दू शायरी और उर्दू अदब को नये आयाम दिए थे जिसकी वजह से पुरानी परिपाटी के उर्दू शायरों ने उन की बहुत नुक्ताचीनी भी की। परन्तु उस नुक्ताचीनी का जवाब उन्होंने कभी भी नहीं दिया। सभी आक्षेपों को हंसते-हंसते झेला और अपनी साधना में जुटे रहे। उनके आलोचकों ने यहां तक कह डाला—

अबतर हमारे हमलों से हाली का हाल है
मैदान पानीपत की तरह पायमाल है

एक सज्जन तो इससे भी आगे बढ़ गए और यहां तक कह डाला --

दिल्ली, दिल्ली कैसी दिल्ली, पानीपत की भोगी बिल्ली

मौलाना हाली के समर्थकों ने उनके विरुद्ध होने वाली कटु आलोचनाओं की ओर उनका ध्यान दिलाया और उनसे अनुरोध किया कि वे इन अनुचित आक्षेपों का उत्तर दें। परन्तु हाली मुस्करा दिए और आलोचनाओं का जवाब प्रकाशित करवाने से इन्कार करते हुए इतना ही कहा --

ऐतराजों का जमाने के है हाली पर निचोड़
शायर अब सारी खुदाई में है क्या एक ही शख्स

हाली इस तथ्य से भली-भान्ति परिचित थे कि भारतीय मुस्लिम समाज आधुनिक युग के नये विचार-बोध को अंगीकार करने से कतरा रहा है और उसका तौर-तरीका पुराने और परम्परावादी ढर्रे का है। इसी-लिए तो हाली ने अपनी कलम के बल पर मुस्लिम समाज के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए एक जोरदार अभियान चलाया और एक समाज-सुधारक के रूप में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। एक पक्के मुसलमान होते हुए भी हाली प्रगतिशील थे और वे चाहते थे कि मुस्लिम समाज पुराणपन्थी व परम्परावादी न रह कर प्रगतिशील बनें और आधुनिक संदर्भों में अपने आप को ढालें। इसी लिए तो 'मसद्दसे हाली' से लेकर उन्होंने कितना कुछ लिखा जिसने मुसलमानों को नया उद्‌बोधन दिया, नई चेतना दी।

वैसे तो हाली की शायरी और उनके समूचे अदब पर लिखने को इतना कुछ है कि कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। परन्तु यहां तो केवल उनके व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालना प्रासंगिक है। उनके व्यक्तित्व के साथ एक शेर सदा मंसूब किया जाता रहा है जो सचमुच में ही उन की जात की सही तस्वीर पेश करता है :—

बहुत जी खुश हुआ हाली से मिलकर
अभी कुछ लोग बाकी हैं जहां में

हाली एक राष्ट्रवादी कवि

हाली एक सच्चे और पाक मुसलमान थे परन्तु इस के साथ ही इससे भी कहीं अधिक वे पक्के राष्ट्र-वादी कवि थे। उन्हें अपने हिन्दुस्तान से, उसकी सम्पूर्ण जनता से बेहद प्यार था। हाली की राष्ट्रीय

रचनाओं ने देश में राष्ट्रीय चेतना जगाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने लिखा—

बैठे बेफिक्र क्या हो, हम वतनों
उठो ! अहले वतन के दोस्त बनों ।

बहुत ही सादा और सहज भाषा में वे एक बहुत बड़ी बात कह जाते हैं—

यही है ईबादत, यही है दीनों ईमां
कि काम आए दुनियां में इन्सान के इन्सां ।

सन् 1893 में मौलाना हाली ने अपना दीवान प्रकाशित करवाया । उस दीवान के साथ भूमिका के रूप में मुकद्दमा लिखा जिसमें मौलाना हाली ने उर्दू के हक पसन्द शायरों को नई राहों और नई मंजिलों से परिचित करवाया । उनकी इस भूमिका को लेकर उर्दू के साहित्य जगत में एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ और हाली को कटु आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा, परन्तु वे अपनी राह से डिगे नहीं और सभी नुक्ताचीनियों को मुस्कराते हुए झेला । वास्तव में उर्दू अदीबों के विचार-बोध को वे नये आयाम देना चाहते थे जिसके लिए जरूरी था कि वे अदीबों के मानस को झंझोड़ें । यह सब उन्होंने सोच समझ कर किया था और वे अच्छी तरह जानते थे कि उनके इस क्रांतिकारी पग की व्यापक प्रतिक्रिया होगी । कहना न होगा कि जो रास्ता उन्होंने दिखाया था उसका आरम्भ में तो घोर विरोध हुआ परन्तु आगे चलकर उन द्वारा प्रस्थापित उन नये आयामों का उर्दू साहित्यकारों ने अनुसरण किया और इस तरह उर्दू भाषा ने सामन्त युग की ओढ़नी को फैंक कर आधुनिक शायरी और अदब की झिलमिलाती चूनरी ओढ़ी ।

हाली का व्यक्तित्व—अंतरंग झांकियां

मौलाना हाली में एक अच्छे इन्सान की वे सब खूबियां विद्यमान थीं जिन्हें देखकर हर व्यक्ति सच्चे अर्थों में मानवीयता का प्रतीक उन्हें मानता था । उनके सन्मुख सभी इन्सान बराबर थे । ऊंच-नीच, जाति-पाति और अमीर-गरीब के किसी भी फर्क को वे मानने के लिए कभी तैयार नहीं हुए । कितनी ही ऐसी घटनाएं हैं जिनके अध्ययन से उनके मानवीय मूल्यों का जायजा लिया जा सकता है । हाली के व्यक्तित्व से जुड़ी कुछ ऐसी ही घटनाओं का जिक्र किया जाना यहां प्रासंगिक होगा ।

एक दिन एक अमीर जादे हाली से मिलने उनके घर पर आए । टमटम में सवार थे । कोचवान बेचारा घर की सीढ़ियों के पास गाड़ी नहीं रोक सका तो अमीर जादे ने क्रोधित होकर आठ-दस हंटर उसे जमा दिए । मौलाना ने यह सब देखा । शिष्टाचार के नाते उन साहब को तो कुछ नहीं कहा परन्तु उस दिन वे बहुत बेचैन रहे । न कुछ खाया-पिया और न ही आराम कर सके । वे यही कहते रहे—"हाय ! जालिम ने क्या किया ?" लोगों से वे कह रहे थे, "मालूम होता है—किसी ने मेरी पीठ पर हंटर मारे हैं ।"

छूत-छात से मौलाना को बेहद नफरत थी । एक बार तांगे में गली से गुजर रहे थे । एक जगह लोगों की भीड़ देखी तो रुक गए । देखा कि एक भंगी का बच्चा नाली में पड़ गया है । सभी लोग खड़े-खड़े 'राम' 'राम', कर रहे हैं परन्तु उसे कोई उठा नहीं रहा, नाली से निकाल नहीं रहा । वे तांगे से उतरे, नाली से बच्चे को निकाला, उसके शरीर की गन्दगी साफ की और अपने तांगे में बिठाकर उसे उसके घर छोड़ने के लिए चल दिए । जाते समय उन्होंने लोगों से इतना ही कहा—"जिस राम का नाम आप जप रहे हैं, अगर चाहते तो उस राम का जलवा इस नन्हें बच्चे में नजर आ सकता था ।"

मौलाना हाली एक बेहद संवेदनशील और सहिष्णु व्यक्ति थे । वे अपने नौकरों से बराबरी और भाईचारे का सलूक करते । । उनके आराम का, खाने-पीने का अपने से भी ज्यादा ध्यान रखते । जाड़े में अपने मोटे गर्म कपड़े और नई रजाइयां नौकरों में बांट देते और स्वयं पुराने कपड़ों से काम चला लेते । उनका एक नौकर 'अताउल्ला' बहरा और लंगड़ा था और उसका स्वभाव भी बहुत कड़वा था । वे 'अताउल्ला' की गुस्ताखी, बेईमानी और बदमिजाजी को हंसते-हंसते बरदास्त कर लेते थे । किसी ने एक दिन कहा—'आज अताउल्ला का मिजाज बहुत गर्म है ।" मौलाना फरमाने लगे—'हां कभी वह हमपर बिगड़ लेता है और कभी हम उस पर ।'

मौलाना के एक नाती था जिससे उन्हें बहुत प्यार था। वह बालक अधपगला था और बड़ी बेढंगी और अजीब हरकतें कर दिया करता था। एक बार मौलाना के शिष्यों के सामने उस नाती ने मौलाना को धक्का दे दिया। एक शिष्य इसे बरदाश्त न कर सका और हाली के उस नीम पागल नाती के मुंह पर एक चपत जमा दी। अपने शागिर्द की इस हरकत से हाली को बहुत गहरा आघात पहुंचा। वे बहुत नाराज हुए और कई दिन तक अपने उस शागिर्द से बोले तक नहीं।

एक बार मौलाना जलवायु के परिवर्तन के लिए फरीदाबाद गए। एक नाई प्रतिदिन उनकी हजामत बनाने आया करता था। एक दिन खत बनाते हुए वह नाई कहने लगा--"अजी मौलवी साहब! हमारा एक काम कर दीजिए।" मौलाना ने काम पूछा तो नाई महाशय फरमाने लगे--"हजूर! मेरा एक औरत पर दिल आ गया है। लेकिन उसके भाई-बन्दों ने उसे बहका दिया है, वह शादी नहीं करती। हजूर! कोई ऐसा तावीज लिख दें कि वह अपने आप मेरी खुशामद करती फिरे।" मौलाना को नाई की यह बात सुनकर बड़ी हंसी आयी परन्तु अपनी हंसी पर काबू पाकर उन्होंने नाई से कहा--"घबराओ नहीं मैं तुम्हारे लिये कुछ करूंगा।' और मौलाना ने सचमच ही उस छोटू नाई की शादी करवाने के लिए जी तोड़ कोशिश की। यह दीगर बात रही कि नाई महाशय की शादी फिर भी नहीं हो सकी क्योंकि मुहल्ले के गणमान्य व्यक्तियों ने मौलाना को बताया था कि छोटू नाई पक्का शराबी जुआरी है। उसके साथ शादी किया जाना बेचारी औरत को मुसीबत में फंसाना है।

महिलाओं के प्रति सहानुभूति

मौलाना हाली सम्भवतः उर्दू साहित्य के पहले अग्रणी साहित्यकार थे जिन्होंने मातृशक्ति के प्रति श्रद्धाभाव को उजागर करने और भारतीय महिलाओं की दुर्दशा को दूर करने के लिए बेहद उपयोगी काम किये। औरतों के प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय को वे सहन नहीं कर पाते थे। एक बाल विधवा के मनोभावों का चित्रण उन्होंने इस प्रकार किया है।

घर बरखा और पिया बिदेसी
आयो बरसा कहीं न ऐसी
शर्त से पहले बाजी हारी
ब्याह हुआ और रही कंवारी
खबरे बचपन का है रंडापा
दूर पड़ा है अभी बुढ़ापा
उम्र है मंजिल तक पहुंचानी
काटनी है भरपूर जवानी
शाम के मुर्दे का है रोना
सारी रात नहीं है सोना

एक बार गांधी जी ने उर्दू सीखने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने मौलवी अब्दुल हक से पूछा--"मैं उर्दू सीखने के लिए कौन-सी किताब पढ़ूं।" मौलवी साहब ने गांधी जी को बतलाया कि यदि वे उर्दू सीखना चाहते हैं तो मौलाना हाली की 'मुनाजात-ए-बेवा' पढ़ें। मौलवी साहब ने यह कहते हुए कि हाली की शायरी की जुबान वही जुबान है जो एक दिन हिन्दुस्तान की सांझी भाषा बनेगी। यह कह कर उन्होंने हाली की रचना के कुछ पद सुनाए जो इस तरह थे :—

रेत की सी दीवार है दुनिया
ओछे का सा प्यार है दुनिया
बिजली की सी चमक है इसकी
पल दो पल की झलक है इसकी

साथ सुहाग और सोग है या का
नाव का सा संजोग है या का
हार कभी और जीत कभी है
इस नगरी की रीत यही है

मौलाना हाली साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में सदा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया है। वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान के लोग बिना किसी साम्प्रदायिक भेद-भाव के मैत्री भाव और भाई-चारे से रहें। उनके चन्द शेर देखिए :

जिन्हें मुल्क में अपनी रखनी से वकुअत[1]
जिन्हें सल्तनत की हो मतलूब कुरबत[2]

जिन्हें थामनी[3] हो घराने की इज्जत
जिन्हें दीन को हो न मंजूर जिल्लत[4]

जिन्हें नसलो औलाद हो अपनी प्यारी
उन्हें फर्ज है कौम की गमगुसारी[5]

मौलाना हाली ने गांधी जी द्वारा संचालित स्वदेशी आंदोलन को भरपूर समर्थन दिया। उन दिनों की एक प्रसिद्ध पत्रिका--'जमाना' ने बुद्धिजीवियों और लेखकों से गांधी जी के स्वदेशी आन्दोलन के बारे में कुछ प्रश्न किये थे। उन प्रश्नों का जो उत्तर मौलाना हाली ने दिया था उसका सारांश इस प्रकार है :

"स्वदेशी आंदोलन अब तक के सभी उन आंदोलनों से बेहतर है जो हिन्दुस्तानियों की भलाई के लिए चलाये गये हैं। स्वदेशी आंदोलन से इस मुल्क को सही अर्थों में लाभ पहुंचेगा। जहां तक हिन्दू-मुस्लिम एकता का सवाल है न केवल उसकी जरूरत स्वदेशी आंदोलन की सफलता के लिए ही है बल्कि हर उस ध्येय के लिए है जिससे हिन्दुस्तान की समूची जनता को लाभ पहुंचे।"

तो कहना चाहिये कि मौलाना हाली अपने वक्त के एक ऐसे अजीम इन्सान थे जिन्होंने अपनी साहित्य-साधना और अपने व्यक्तिगत गुणों के बल पर हिन्दुस्तान के लोगों को बहुत गहराई तक प्रभावित किया था। उनका साहित्य केवल मात्र साहित्य न रहकर मानवीयता, बराबरी, देश-प्रेम और प्रगतिवादी विचारधारा का प्रतीक बन गया था। साहित्य जगत में सम्भवतः बहुत थोड़े ऐसे लेखक और कवि संसार में पैदा हुए हैं जिनकी रचनाओं ने एक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया हो। उनमें से हाली एक थे। हाली की रचनाओं ने समाज-सुधार के क्षेत्र में जो भूमिका निभाई उसका ऐतिहासिक महत्व है। यह गौरव का विषय है कि हाली हरियाणा की माटी से जन्मे और पानीपत की जरखेज जमीन ने उन्हें साहित्य की बुलंदियों के लिए प्रेरित किया, कल्पना शक्ति दी--एक ठोस परम्परा दी।

1. प्रतिष्ठा: 2. सामीप्य 3. बनाए रखनी हो 4. अपमान 5. कष्ट दूर करना

हरियाणा की नाट्य-परम्परा

—डॉ० शंकर लाल यादव—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्—धनंजय :—नाटक के विकास का इतिहास बड़ा जिज्ञासामूलक है। भरत मुनि ने इधर एक रोचक कल्पना की है। सुअवसर जानकर एक दिन देवताओं ने ब्रह्मा जी से सर्ववर्णोपयोगी क्रीडनीयक (दृश्य-श्रव्य) के निर्माण की याचना की। क्योंकि स्त्री, शूद्र व वन्य-जातियां वेदाध्ययन से वंचित थीं। ब्रह्मा ने वेदचतुष्टय से कुछ-कुछ तत्व जुटाकर पंचम-वेद-नाट्य वेद की स्थापना की। परन्तु इस प्रसंग को लेकर नाट्य-शास्त्रियों में नाट्य-परम्परा पर पर्याप्त मतभेद है।

दूसरी ओर, प्रो० कीथ, कोनों, लेवी तथा हिलब्रांट आदि पाश्चात्य विद्वानों की मान्यता है कि लोक प्रचलित स्वांगों की सत्ता वैदिक कर्मकाण्डीय रूपकों से तथा संस्कृत नाटकों से पहिले विद्यमान थी। इस मत के पक्ष में आज अनेक विद्वान हैं।

यों तो ये दोनों विचारधाराएं किसी क्षेत्रीय नाट्य-परम्परा की प्रतिष्ठा में बहुत दूर तक सहायक नहीं होतीं। पर यह निश्चित है कि लौकिक स्वांग के किसी धार्मिक रूप को 16वीं शती के मध्य वैष्णव संतों ने अपनाया था। विद्वानों का अनुमान है कि सन् 1531-32 के आस-पास महाप्रभु वल्लभाचार्य ने प्राचीन ग्रंथिकों के कृष्ण-अभिनय को रासलीला के रूप में प्रचारित कर एक गीतिनाट्य (फोक-ओपेरा) की परंपरा चलाई। इसी शैली पर आगे चलकर सैयद आगाहसन अमानत ने 'इन्दर सभा' लिखी।

शहंशाह आलमगीर के समय (सन् 1658—1707) में मौलाना गनीमत ने अपनी मसनवी 'नौरंग-ए-इश्क़' (1685 ई०) में सांग या नक़ल के अभिनय का ब्यौरेवार वर्णन दिया है। स्पष्ट है कि इस समय तक सांग अपने क्षेत्रीय रूप में विकसित हो चुका था और एक शक्तिशाली लोक रंगमंच का काम देने लगा था। आज के दिन दिल्ली के आसपास हरियाणा में इन सांगों का प्रचुर प्रचार पाया जाता है।

हरियाणा की नाट्य-परम्परा पर विचार करते समय हमारा ध्यान ब्रज के स्वांगों पर जाता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि नक़ल की यह शैली हरियाणा के पास-पड़ोस के प्रदेशों में, विशेषकर ब्रजमण्डल में, बहुत दिनों से चली आ रही है।

ब्रज में स्वांग के, गायकी की दृष्टि से, दो स्कूल हैं—एक आगरा का और दूसरा हाथरस का। आगरा की गायकी (तर्ज) और मंच दोनों ही, यद्यपि, हाथरसी शैली से प्राचीन हैं और आकर्षक हैं, तथापि वहां (आगरा में) इसे व्यावसायिक रूप में कदापि ग्रहण नहीं किया गया। हाथरस के नत्थाराम आदि कलाकारों ने स्वांग को अपने ढंग से विकसित किया और नये छंद, नई रंगतें और नया रूप देकर उसे व्यावसायिक बना दिया। इस प्रकार ब्रज में स्वांगों की लोकप्रियता खूब बढ़ी और उनका विकास भी हुआ। परन्तु ब्रज के स्वांगों को हरियाणा की नौटंकी की प्रभूत देन है। कहा जाता है नौटंकी एक संभ्रांत सुन्दरी महिला थी, नौ फूलों से तुलती थी। उसी के जीवन वृत्त पर बना सांग नौटंकी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरी धारणा यह है कि नौटंकी में नौ प्रकार के वाद्य तथा नौ नगाड़े भिन्न-भिन्न उतार-चढ़ाव से बजते थे। स्वांगों में चूंकि नगाड़े और नगाड़ी के काम की प्रधानता होती है अतएव ये नौटंकी कहलाये। तीसरी धारणा के अनुसार ये नाटक प्राचीन नाटकों की तुलना में नये थे अतः नवनाटक > नौनाटक > नौटंक > नौटंकी नाम उन्हें मिला।

नौटंकी की सरसता और सफलता से जनता बहुत प्रभावित हुई। पीछे से इस शैली पर लिखे गये सांग चारों ओर फैल गये। इनमें हीर रांझा, कुंवर निहाल दे, रूप बसंत आदि विशेष ख्याति प्राप्त नाटक थे। परन्तु जिस

नौटंकी के कथानक से स्वांग शैली का विकास माना जाता है वह आज उपलब्ध नहीं है। यदि ऐसा हो जाये तो स्वांग के उद्गम, विकास, भाषा व शैली के अध्ययन की दिशाएं खुल जायें। सन् 1884-1885 में प्रकाशित लोक-वार्ताविद् सर आर० सी० टेम्पल द्वारा संग्रहीत 'दि लेजेंड्स ऑफ पंजाब' (तीन भाग) में अवश्य कुछ किस्से व तमाशे आये हैं, जिन्हें बीच की कड़ी के रूप में माना जा सकता है। बंशीलालकृत गोपीचन्द सांग का प्रसंग इस प्रकार आया है :

किरपा करो जगदीस ! मात मेरी करो कंठ में वासा।
छंद ग्यान सुर करो आन के देखें लोग तमासा ॥

गोपीचन्द के सांग कहन की दिल को लग रही आसा।

... ...
... ...

कहते बंशी लाल मात मेरी, पूरन कीजै आसा ॥

टेम्पल महोदय के अनुसार यह सांग अम्बाला जिले के जगाधरी कस्बे में खेला जाता था और इसे उन्होंने अवदानों में ही सम्मिलित किया है। अतः स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक यह विधा अपना निजी अस्तित्व नहीं प्राप्त कर सकी थी। यह गौरव इसे बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिला। इसी प्रकार के खेल-तमाशे व सांग अलीबख्श के भी थे जिनका प्रचार हरियाणा के पूर्वी एवं दक्षिणी अंचल में बहुत दिनों तक रहा। अलीबख्श के प्रमुख सांगों के नाम हैं—तमाशा राजा नल, तमाशा फिसाना अजायब, तमाशा पद्मावत और तमाशा कृष्णलीला आदि।

आधुनिक हरियाणवी सांग का आरंभिक इतिहास खोजते समय पं० दीपचन्द ऐसे कलाकार मिलते हैं जिन्हें युग प्रवर्तक कहा जा सकता है। इनके द्वारा सांगों में एक नया मोड़ आया, और उसे एक नई दिशा मिली। अतः पं० दीपचन्द को सांग के इतिहास में केन्द्र बिन्दु मानकर सांग के इतिहास को निम्नलिखित तीन खंडों में विभक्त किया जा सकता है :—

क—पूर्व दीपचंद युग।
ख—दीपचंद युग।
ग—उत्तर दीपचंद युग।

विभाजन की एक दिशा यह भी हो सकती है कि समस्त उपलब्ध सांग साहित्य को विविध अवस्थाओं में बांट लिया जाये। इस प्रकार विभाजन की रूप-रेखा होगी :—

क—प्रथमावस्था।
ख—द्वितीयावस्था।
ग—तृतीयावस्था।

हरियाणवी-लोक रंगमंच की परम्परा पर विचार करते समय यह विदित होता है कि मध्ययुग में लोकमंच के दो रूप रहे। पहिला—कीर्तन का रूप और दूसरा—नक़ल या नौटंकी का रूप। कीर्तन आगे चलकर रास लीला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। परन्तु हरियाणा के आधुनिक सांगों के इतिहास पर विचार करते समय स्थानीय भजनीक मंडलियों के स्वरूप को भी देख लेना हितकर होगा। अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि हरियाणा का आधुनिक सांगीत अपने आरंभिक रूप में भजनीक मंडली का ऋणी है।

हरियाणा के आधुनिक सांगों के प्रतिष्ठापक पं० दीपचन्द से पहिले दो सांगी—रामलाल खटीक (सोनीपत) और नेतराम (असमायला) प्रसिद्ध सांगी हुए हैं। वे दोनों आरम्भ में भजनीक थे। पीछे सांगी बने। उनके पास वाद्ययंत्रों में एकतारा, ढोलक और करताल होती थी और खड़े-खड़े गाते थे।

एक बार की बात है कि पं० नेतराम किसी गांव में भगवत्कथा कहा करते थे। अनेक नर-नारियां कथामृत

पान करने आते थे। उन्हीं दिनों उस गांव में एक तमाशा करने वाला किशनलाल (खेड़ी जि० मेरठ) वहां आया। उसने अपने स्वांग का प्रदर्शन किया। स्वांग का ग्रामीण जनता पर ऐसा जादू चढ़ा कि कथा में कतिपय वृद्धभक्तों के अतिरिक्त कोई रुचि न लेता। दक्षिणा तक के लाले पड़ गये। इस घटना से कथावाचक पं० नेतराम जी को बड़ी खिन्नता हुई और वे अत्यन्त निराश हुए। बस, उन्होंने कथा को प्रणाम किया और अपनी सर्जनात्मक शक्ति सांग को समर्पित कर दी। 'सीलांसेठानी' सांग का प्रथम अभिनय हुआ। यह खेल उस समय के अभिनीत खेलों से, जो अंशत: भजन होते थे और अंशत: सांग, अपेक्षता उच्च कोटि का था।

इसके बाद, पं० दीपचंद (जांटी निवासी) का, प्रतिभा-प्रभाकर सांग गगन में प्रादुर्भूत हुआ और उडुगण अस्त हो गये। पं० दीपचन्द के मन्द्र गंभीर स्वर को जिन्होंने सुना है वे आज भी उसकी मधुरिमा शिरसा स्वीकार करते हैं। 'टुकसा नीर पिलादे' रागनी की रोमांचकारी पंक्तियां आज भी आबालवृद्ध जनता की जिह्वा पर थिरकती हैं। प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

टुकसा नीर पिलादे और घाल मेरे बंट्टे में,
अरे तें भले घरां की दीखै तन्नै जनम लिया टोट्टे में,
तें मेरी साथ होल्ले रै, बाह्मण मंढवाद्यूं थोट्टे में,
टुकसा नीर पिलादे और घाल मेरे बंट्टे में।

दीपचंद के सांग प्रथम विश्वयुद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन दिनों वे हरियाणा के प्रमुख गायक थे। उनके कंठ में बैठकर राग अद्भुत प्रभावशाली बन जाता था।

दीपचन्द के गीतों की अचूक प्रभावशालिता को स्वीकार कर भारत सरकार ने उसे भरती (रैकरूटिंग) के लिये चुना। उन दिनों सरकार को हरियाणा प्रदेश के निडर, निर्भीक एवं बहादुर वीरों की युद्ध के लिये आवश्यकता थी। पर उन्हें भरती के लिये किस प्रकार प्रोत्साहित व तैयार किया जाये यह समस्या बनी थी। इस बात का बीड़ा दीपचंद ने उठाया।

दीपचन्द के तर्क-सम्मत व प्रत्यायक कथन की प्रभावोत्पादकता के फलस्वरूप वासी हरियाणवी वीर मंत्रमुग्ध होकर धड़ाधड़ सेना में भरती होने लगे। इस महान् कार्य के लिये दीपचंद को 'राय साहब' की उपाधि मिली और लाखों रुपये पुरस्कार में मिले। भरती के गाने आज भी हरियाणा की जनता को स्मरण हैं :

भरती होल्ले रै थारे बाहर खड़े रंगरूट,
इयां इसा रखते मध्यम बाना,
मिलता फटया पुराना, उहां मिलते हैं फुलबूट।
भरती होल्ले रै थारे बाहर खड़े रंगरूट।

गीत में आगे भारी-भारी प्रलोभनों की बात आई है।

दीपचंद युग में सांग-क्षेत्र की प्रगति के सिंहावलोकन से विदित होता है कि मंच के उपकरणों में कई परिवर्तन हुए हैं। जो सांगी अभी तक खड़े खड़े-काम करते थे इस दौर में एक चौकी और एक मूंढा लेकर बैठने लगे। नायक मूंढा पर बैठता था और शेष सब नीचे बैठते थे। रानी और बांदी दो नाचने वाली होती थीं। साज के क्षेत्र में एकतारे के स्थान पर सारंगी का प्रयोग होने लगा। करताल का प्रयोग ज्यों का त्यों चलता रहा। ढोलक के साथ नक्कारे का प्रयोग भी बढ़ा और स्त्री का अभिनय स्त्री वेश में होने लगा। सांग इस दौर में अपने यथार्थरूप में उपस्थित हुआ।

दीपचंद युग के कतिपय सांगियों के पते इस प्रकार हैं :—

नाम	गांव	जिला
1. हरदेवा स्वामी	गोरड़	रोहतक

2. बाजे भगत	सराणा	रोहतक
3. भरतू	भैसरू-ब्राह्मणान	रोहतक
4. हुकमचंद	किसमिनाना	करनाल
5. लखमीचंद	जांटी	सूबा दिल्ली

यों तो उपर्युक्त सभी सांगी हरियाणा के प्रमुख सांगियों में से हैं, परन्तु पं० लखमीचंद अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न गायक थे। कहा जाता है महात्मा कबीरदास की भांति वे भी, 'मसि कागद छुवो नहि, कलम गही नहीं हाथ' कोटि के थे, परन्तु उनकी सर्जनात्मक शक्ति बड़ी विलक्षण थी। शारदा का ध्यान धर कर जब वे दत्तावधान अवस्था में बैठते थे तब उनकी कल्पना को पर लगते थे और प्रतिभा का स्फुरण होता था। वे आशु कवि, ज्ञानी और वेदान्ती पंडित थे। उनकी अध्यात्मपरक रागनियां दर्शन के उत्कृष्ट नमूने हैं।

पं० लखमी चंद ने सांग को एक नूतन दिशा प्रदान की। जो सांग अभी तक पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों पर आधारित था उसे अब मुक्तक्षेत्र मिला। जीवन के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित हो गया और जीवन की समस्याएं उसका विवेच्य बनीं। ग्रामीण जीवन के दो प्रमुख तत्व हैं–प्रेम और यौवन। उन दोनों का मणिकांचन योग सांग में देखने को मिला।

रागनी हरियाणा की अपनी विभूति है। उसका उद्गम अज्ञात है। पर इसके वर्तमान रूप का अधिकांश श्रेय पं० लखमीचन्द को है। बहुतों की मान्यता है कि पं० लखमी का दिव्य-कण्ठ ही इस राग का जन्मदाता है। इतना तो निर्भ्रांत है कि रागनी के नाम के साथ ही पं० लखमीचंद की स्मृति अवश्य हो आती है।

पं० लखमीचन्द ने जहां रागनी को संवारा, उसमें वैशिष्ट्य भरा वहां वे उसे अलंकृत करने से भी नहीं चूके। 'भूषन बिन न बिराजहिं कविता वनिता मित्त' उनका भी मूलमंत्र था। बड़े सटीक अलंकार उनकी वाणी से समुद्भूत हुए हैं। उपमा के क्षेत्र में लखमी को हरियाणा का कालिदास कहा जाता है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत के पूर्ण व निराले सादृश्य के लिये उनकी उपमाएं प्रसिद्ध हैं।

पं० लखमीचंद के सांगों में ग्रामीण वातावरण चित्रात्मक शैली में उभर कर आया है। उनकी शब्द योजना इतनी सुन्दर, कल्पना इतनी मार्मिक, काव्य-प्रवाह ऐसा अजस्र एवं चित्रण ऐसा आकर्षक है कि सहसा मुख से वाह! वाह!! निकल पड़ता है। वे मानवी कवि नहीं, दैवी कवि प्रतीत होते हैं। दर्शक उन के साथ कभी वात्सल्य में, कभी शृंगार में, कभी करुण में और कभी अद्भुत रस में अवगाहन करता है। इनके सांगों में सांगीत सौष्ठव के साथ साहित्य सौष्ठव का अभूतपूर्व समन्वय पाया जाता है।

उत्तर दीपचन्द युग (लखमीचन्द युग के) कई सांगों में ऐसी प्रवृत्ति मिलती है जो सूफी कहानियों से टक्कर लेती है। स्वप्न दर्शन, चित्रदर्शन तथा गुणश्रवण से प्रेमोद्भूति इन कथाओं का आधार रहा है। नायक-नायिका का संयोग के लिये प्रयत्न, नाना कष्ट और अंत में सच्चे प्रेम की पूर्ति की सुखद अवतारणा इनका विषय है। दुलीचंद वणजाराकृत 'सच्चा माशूक' इस ओर एक अच्छा उदाहरण है। इसमें एक सुन्दर प्रेमकथा आई है। कमलीपुर के राजा धर्मजीत का पुत्र राजकुमार बलबीर सिंह एक रात्रि में श्यामनगर के राजा मुकुट-राज की राजकुमारी चन्दकौर के अप्रतिम रूप-लावण्य पर विमोहित हो जाता है और प्रात: काल होने पर घर-बार छोड़कर जोगी हो जाता है। योगी राज लखीनाथ का शिष्य होता है और चंदकौर के महल में अलख जमाता है :—

जोबण की भीख घालदे और कुछ लोड़ नहीं सै धनकी।

हरियाणा के इन सांगीतों में लोकवार्ता की कई कथानक रूढ़ियां मिलती हैं: यथा–अदभुत देवी शक्ति की उपस्थिति, साधु का धूना तथा प्रेमियों की आयुस् का विनिमय आदि। यथा-सांगीत सच्चा माशूक में शिव उपस्थित होकर बलबीर सिंह की आधी आयु चंदकौर को देते हैं और वह जीवित हो जाती है :

ले लोट्टा जल का हाथ में लड़की नै दिया पिला ।
आधी उमर बलवीर की दी चंदकौर में मिला ।।
.. ..
.. ..
बिछड़ा जोड़ा फेर मिला खुश होगे आसमान धरती ।
चंदकौर नै देख्या आसिक चरणों में धरती सुरती ।।

यहां सांगीतकार ने शिव की अवतारणा से कथा को प्रसादान्त बनाने में विलक्षणता से काम लिया है ।

लखमीचन्द दौर के सांगियों की सूची इस प्रकार है :

	नाम	गांव	जिला
1.	मांगेराम	पुरपाणची	रोहतक
2.	सुलतान	रोहद	रोहतक
3.	चंदन	बजीणा	रोहतक
4.	जमुआ मीर	सुनारी	रोहतक
5.	धनपत	निदाणा	रोहतक
6.	रामकिशन व्यास	नारनौद	हिसार
7.	आसाराम	कंवरिया	हिसार
8.	रामानंद आजाद	गोरिया	रोहतक
9.	चन्दर लाल भाट उर्फ वादी	दादरी (अब दत्तनगर)	जींद
10.	रामसिंह नाई	खेकड़ा	मेरठ
11.	हुस्यारे	बुढाणा	मुजफ्फर नगर

इस दौर में मंचीय विधान में जो परिवर्तन आया है वह इस प्रकार है : वाद्य यंत्रों में हारमोनियम सम्मिलित हो गया। मंच में छः तखत होने लगे, शामियाना लगाया जाने लगा। तख्तों पर जाजम और उस पर चांदनी (सफेद चादर) बिछाई जाती है। नायक के बैठने के लिये कुर्सी होती है। नाचने वालों की संख्या बढ़कर छः हो गई है।

यहां पर उन सांगों के नाम देना अप्रासंगिक न होगा जो जनता का अनुमोदन प्राप्त कर चुके हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

	नाम सांगीत	लेखक	गांव
1.	सीलां सेठानी	नेतराम	असमापला
2.	सोरठ	दीपचन्द	सेरीखांडा
3.	वनपर्व	सरूपचन्द	दिसोर खेड़ी
4.	चीर पर्व	सरूपचन्द	दिसोर खेड़ी
5.	विराट पर्व	सरूपचन्द	दिसोर खेड़ी

6.	उत्तानपाद	सरूपचन्द	दिसोर खेड़ी
7.	राजा हरिश्चन्द्र	सरूप चन्द	दिसोर खेड़ी
8.	नल दमयन्ती	लखमीचंद	जांटी
9.	मीराबाई	लखमीचंद	जांटी
10.	सत्यवान सावित्री	लखमी चंद	जांटी
11.	पुरंजन और पुरंजनी	लखमीचंद	जांटी
12.	सेठ ताराचन्द	लखमीचंद	जांटी
13.	पूरन भगत	लखमीचंद	जांटी
14.	शाही लकड़हारा	लखमीचंद	जांटी
15.	रूप बसन्त	मांगेराम	पुरपाणची
16.	हकीकतराय	मांगेराम	पुरपाणची
17.	नर सुलतान	चितरु मिस्तरी	सांपलागढ़ी
18.	अंजना	माईचंद	बबैल
19.	मोहनादेवी	रामानंद आजाद	गोरिया
20.	मीराबाई	रामानंद आजाद	गोरिया
21.	राजा नल	प्रहलाद शर्मा गौड़	बसई
22.	लाखावणजारा	कुन्दनलाल गौड़	जौणायचा
23.	श्याम कौर हत्यारी	पूरन चंद आजाद	उकलाना मंडी
24.	बीजा सोरठ	चंदरलाल भाट उर्फ बादी	दस्तनगर
25.	ताकूतोड़ बाल्टी फोड़	नत्थू राम	घोघा
26.	रूपकला जादूगरनी	न्यादर सिंह 'बेचैन'	झज्जर
27.	सेठ ताराचंद	किशोरीलाल वेखटक	बबारावत

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित सांग भी हरियाणा में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं :—

1. राजारिसालू
2. कंवर निहाल दे
3. अमर सिंह राठौर
4. हीर रांझा
5. सरवरनीर
6. हरपूल जाट जुलानीवाला
7. नरसी का भात

8. उषा अनिरुद्
9. भारत की दुखिया
10. पद्मावत

हरियाणवी नाट्य का रूप विधान

नाट्य की दृष्टि से हरियाणा की भूमि बड़ी उर्वरा रही है। यद्यपि यहां के लोक नाट्यों में आज वह रंगीनी व कलात्मकता नहीं रही है जो अब से 30-35 वर्ष पूर्व देखने को मिलती थी। कई नाट्य तो सदैव के लिए लुप्त हो गए हैं। कुछ ने अपना कलेवर बदल दिया है तथा कुछ की दशा और भी शोचनीय है।

हरियाणवी सांग रूपक का वह प्रकार है जिसमें पद्य की प्रधानता होती है। यह गीति-नाट्य का एक भेद है। इन रचनाओं को नाटक की अपेक्षा नाटकीय काव्य (ड्रामाटिक पोइट्री) कहा जाए तो असंगत न होगा। इनमें कथोपकथन पद्य में होता है, बीच-बीच में गद्य की थेकलियां लगाई जाती हैं। इन गद्यांशों को 'वार्ता' नाम से अभिहित किया जाता है। ये वार्ताएं बड़े महत्व की होती हैं। इनसे कई लाभ होते हैं :—

(क) कथा को मोड़ देने में ये विशेष सहायक होती हैं।

(ख) चरित्र नायक के प्रच्छन्न गुण जो गीत की पकड़ के बाहर होते हैं, वार्ता द्वारा सामान्य दर्शक के लिए सुलभ हो जाते हैं।

(ग) कथा में रोचकता बनी रहती है।

ये वार्ताएं कथा श्रवण की लालसा को जागृत करती रहती हैं। सांग में गीत, राग और रागिणी हृदय की बात कहती हैं तो गद्य-वार्ताएं इतिवृत्त की कड़ियों को जोड़ती चलती हैं। यथा-रूपचन्दकृत 'सांगीत ढोलामारू' में ढोला पिंगलगढ़ चलने को तैयार होता है। वह ऊँटों से सहायता मांगता है :

जवाब ढोला का

मनै पिंगलगढ़ पहुंचा दो दरस करा दो प्यारी का।
जाकै दरसन कर लूंगा। घूंट सबर कैसी भर लूंगा।
मैं बण के मिरग चर लूंगा। मजा ल्यूं केसर का।

वार्ता

"हे भाइयो जो बड़े मोटे ताजे करीया (ऊँट) थे सो सब इंकार कर गए मगर एक बोदा सा करीया पड़ा रहे था वो राजा से क्या कहता है जरा सुणों" :—

जवाब करला का

धीरज मन में धरिये मत कर सोच विचार।
पिंगल से भी मैं परै पहुंचा दूंगा यार॥

सांग के विधान को हृदयंगम करने के लिए नाटकीय तत्वों पर भी ध्यान जाता है। सांग में नाटक की एक दो वस्तुएँ जीवित हैं शेष सांग की सादगी में दब गई है। 'नान्दी' के रूप में यहाँ ईश-प्रार्थना, शारदा-वंदन तथा शिव-स्तुति बची है। गुरु परंपरा का वर्णन तो सभी सांगी निश्चित रूप से करते हैं। फिर वार्ता द्वारा वस्तु का प्रतिष्ठापन कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'सांगीत मस्ताना पलटणिया" (फौजी) में चौ० चंदन सिंह का प्रारंभिक कथन :—

वे सुमर लिए भगवान्।
लखमीं चन्द सतगुरु मिले मैंने जिनते पालिया ज्ञान॥
थारी भवानी वास कर मिरे घट के पर्दे खोल।
रसना पर वासा करो माई सुद्ध सबद मुख बोल॥

किसी-किसी संगीत में 'भरतवाक्य' की भांति आशीः या उपदेश गर्भित वाक्य भी होते हैं। शिष्टनाटक की दूसरी भूलभुलैयां यथा—अंक, अंकावतार, स्वगत-भाषण व विष्कम्भक आदि इनमें देखने को नहीं मिलतीं।

हरियाणवी नाट्य का शिल्प-विधान

हरियाणवी लोक नाट्य-सांगीत यद्यपि ग्रामीण वातावरण में अंकुरित, विकसित और प्रचरित होते हैं, सरल एवं आडम्बरहीन होते है तथापि शिल्प, तंत्र या टेकनीक की दृष्टि से होते पूर्ण हैं। परन्तु जब हम इनके शिल्प पर विचार करें तो यह नहीं भूल जाना चाहिए कि ये लोक नाट्य हैं, शिष्ट शास्त्रीयनाट्य नहीं हैं। ये जन-साधारण के मनोरंजन के लिए हैं और जनसाधारण के द्वारा अभिनीत भी होते हैं। अतः रंगमंच व्यवस्था, दर्शक व्यवस्था, अभिनयशैली एवं वातावरण की दृष्टि से इनमें अनेक ऐसी परंपराएं उभर कर ऊपर आई हैं जो इनका तंत्र ही बन गई हैं। ये परंपराएं स्थानीय जनता की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और इन सांगों को लोकप्रिय बनाये रहती हैं।

रंगमंच-व्यवस्था

हरियाणवी सांग को जमाने के लिए साज-सज्जा युक्त रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। गाँव के खुले चौराहे पर, किसी घर के चौड़े आंगन में अथवा देवालय के विस्तृत चबूतरे पर तख्त बिछाकर बिना किसी दुराव-छिपाव के अपेक्षित पात्रों द्वारा ये खेल खेले जाते हैं। यदा-कदा कोई सांग मण्डली यवनिका आदि का भी प्रबन्ध कर लेती है, परन्तु हरियाणवी लोकनाट्य के लिए इसकी अनिवार्यता नहीं है। छोटे से मंच पर ही सब प्रदर्शक बैठे रहते हैं। प्रवेश, प्रस्थान, संवाद, गाना और नाचना आदि सब कुछ रंगमंच पर दर्शकों के सामने खुले मैदान में होता रहता है। जिसकी बारी आती है, वही उठकर अपना अभिनय प्रस्तुत कर देता है। नारी का अभिनय नारी वेष में पुरुष ही निष्पन्न करते हैं। नारी को यह अवसर कभी प्राप्त नहीं होता। नौटंकियों में नारी अभिनय नारी सुलभ है भी नहीं। स्त्रियों में प्रकृतितः यह सामर्थ्य नहीं कि वे संध्या से लेकर प्रातः काल तक रंगमंच के कष्टसाध्य व पुरुषोचित कार्यों का निर्वाह कर सकें। गायन में उनकी आवाजें पुरुषों की भांति फैल नहीं सकतीं। एक बात और है कि स्त्री-पात्र न सच्चरित्रा नारियों की और न कुचरित्रा नारियों की भूमिका को प्रस्तुत कर सकते हैं क्योंकि नारी सुलभ सहज लज्जा उन्हें ऐसा नहीं करने देती। सज्जाकक्ष (ग्रीन-रूम) के अभाव में वेशविन्यास के परिवर्तन की सुविधा भी नहीं होती है। अतः नौटंकी का वातावरण नारी मानमर्यादा के अनुकूल नहीं है। इन नाटकों में स्त्रियों का प्रयोग असफल ही रहा है।

हरियाणवी नौटंकियों में एक दो बार प्रवीण वारनर्तकियों को रंगमंच पर लाने के प्रयास अवश्य हुए हैं, परन्तु जनता को उनका रंगमंचीय अभिनय पसंद नहीं आया। स्थिति ऐसे अवसरों पर नियंत्रण से बाहर हो जाती है, जब भ्रष्ट एवं चरित्रहीन नारियाँ सती स्त्रियों अथवा सन्नारियों का अभिनय करती हैं। कारण कि दुश्चरित्र नारी पात्रों के हाथों साध्वी नारियों का उद्धार कदापि नहीं हो सकता। वास्तव में, नौटंकियों की सफलता तथा प्रभा-वोत्पदकता के लिए स्त्रियों का काम पुरुष ही करें तो प्रभाव जमता है।

हरियाणवी सांगीतों में रंगमंच ऊंचा रखा जाता है और इस बात की सावधानी बर्ती जाती है कि चारों ओर बैठी जनता नाट्यरस पान कर सके। अभिनय प्रक्रिया इस प्रकार की होती है कि प्रदर्शक की पीठ स्थायी रूप से किसी एक दिशा को नहीं रहती। साजिन्दों व सुरतियों के बैठने के लिए इर्द-गिर्द दूसरे रंगमंच होते हैं जिससे वे भी दर्शकों के लिए व्यवधान न बनें।

इन नाट्यों में प्रकाश-व्यवस्था मशाल से की जाती है और मशालें अभिनेता के साथ-साथ घूमती जाती हैं। आजकल गैस के हंडों (पेट्रोमेक्स) की व्यवस्था भी होने लगी है।

दर्शक-व्यवस्था

हरियाणवी नाट्यों में दर्शक और अभिनेता के बीच एक अद्वितीय समन्वय रहता है। प्रदर्शक दर्शकों के साथ ही घुला-मिला रहता है। उसकी दुनिया अलग नहीं होती और न वह दर्शकों के लिए आश्चर्य की वस्तु ही होता है।

गीति-नाट्य होने के कारण हरियाणवी सांगीत में कभी-कभी सारे के सारे दर्शक गाने में साझी हो जाते हैं और अभिनेता के साथ टेर लगाने लगते हैं। यह प्रक्रिया भी दर्शक और अभिनेता के बीच के अन्तर को कम कर

देती है। दोनों के मध्य स्नेह, सहानुभूति और समझौते की सुखद धारा प्रवाहित हो जाती है। इस प्रकार अभिनेताओं के गुण-दोष दर्शकों के स्वयं के हो जाते हैं।

अभिनय-शैली

अभिनय का आरोपण हरियाणवी लोकनाट्य की अपनी विशेषता है। वनस्थली प्रदर्शन के लिए वृक्ष की एक डाल लेकर खड़े हो जाना ही अलं है। रंगमंच के आर-पार किसी नीले रंग के साफे को हिला देने मात्र से बहती बलखाती सरिता का भान करा दिया जाता है। मंच पर पात्रों द्वारा दस बीस चक्कर लगा देने से अभिशप्त राजकुमार का वनगमन दिखा दिया जाता है। किसी पात्र की छोटी-मोटी छलांग ही रामलीला में मारुति द्वारा समुद्रोल्लंघन समझ ली जाती है। राजा महाराजा के अभिनय के लिए सिर पर चमकदार पगड़ी पहन लेना ही पर्याप्त है। इसी प्रकार स्थल, स्थान और समय के संबंध में पात्रों के कथन मात्र से कार्य निर्वाह हो जाता है। दृश्य परिवर्तन में भी प्रतीक-प्रयोग सहायक होता है।

लोकानुरंजन

हरियाणवी सांगों की गीत-नृत्य-विधि में एक अपूर्व आकर्षण होता है। इनके अपने साजिन्दे होते हैं जो बाजों को अत्यधिक चमत्कारक ढंग से बजाते हैं और कलाकारों के कौशल में चार चाँद लगा देते हैं। नगाड़े की चोब पर नर्तकों के पैर थिरकते हैं। इस प्रकार नाट्य की प्रदर्शन विधि पुष्ट एवं नयनाभिराम हो उठती है।

हरियाणा के ये सांग रात-रात भर चलते हैं, क्योंकि मीलों चलकर दूर-दूर के गाँवों से आने वाले दर्शक अपनी सारी रात इन्हीं प्रदर्शनों में व्यतीत करना चाहते हैं, जिससे रात्रि के अवशेष भाग में विश्राम के लिए उन्हें कोई स्थान न ढूंढना पड़े और सवेरा होते ही वे सीधे अपने गाँव लौट जाएं। दर्शकों की इस मनोवृत्ति के कारण प्रदर्शकों को विवश होकर नाटक के कलेवर को विस्तार देना पड़ता है। अतः अनेक प्रासंगिक कथाएं आधिकारिक कथानक के साथ सम्पृक्त हो जाती हैं।

हरियाणवी लोक-नाट्यों में कल्पना प्रसूत कथानक के लिए कोई स्थान नहीं है। वे ही चरित्र मान्य एवं स्वीकार्य होते हैं, जिनका परिचय दर्शकों को पहिले से होता है तथा जो उनके जीवन के साथ किसी न किसी प्रकार जुड़े होते हैं। इनमें अधिकांश ऐसे पात्र होते हैं जो जीवनादर्श के रूप में उन्हें प्रेरणा देते हैं और उनका चित्तानुरंजन करते हैं।

दूसरी ओर, विषय की दृष्टि से यदि 'सांगीत' पर विचार करें तो इनमें धार्मिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों से लेकर तिलस्मी-ऐयारी तथा सस्ते घृणित छिछले रसाभासमूलक प्रेमव्यापारों तक का वर्णन देखने को मिलता है। एक ओर, पुण्य श्लोक राजा नल के लोकोत्तर पावन चरित्र तथा गोपीचंद भरथरी की अनन्य त्याग-वृत्ति के दर्शन होते हैं, तो दूसरी ओर, 'ताकूतोड़ और बाल्टी फोड़', 'लीलोचमन', 'आँख का जादू' और 'जवानी का नशा' आदि के नग्न, अशिष्ट, जघन्य एवं अश्लील प्रेमालापों का चित्रण है। ऐसे प्रसंगों में समाज का मनचला वर्ग विशेष रुचि लेता है और असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देता है। ऐसे सांगों में कुलटा सती से, लुटेरा ईमानदार पात्र से, और इश्कमिजाज नौजवान, सच्चरित्र युवक से बाजी ले जाता है। परिणीता पतिव्रता से छुप-छुप कर प्रेमचर्या करने वाली पुंश्चली (छिनाल) दर्शकों को अधिक पसंद आती है। परन्तु यहाँ इतना और देख लेना चाहिए कि सांग की परंपरा के आदि में उनकी यह दशा न थी। यह तो आज की नई रोशनी का परिणाम है और इस हीन मनोवृत्ति के परितोष के लिए सांगियों की प्रतिभा अवांछनीय दिशा में पदार्पण करने लगी है। आशिक-माशूकों के बेढंगे वर्णन और विलासप्रियता की भौंडी भावना ने खेल के कलित कलेवर को कलुषित कर दिया है। सांगों की इस विलासितामय रसिकता का ही कुपरिणाम है कि कई स्थानों पर नवयुवतियाँ प्रदर्शकों की बाँकी अदा पर फिदा होकर घर बार त्याग गई हैं। यह एक चित्य लक्षण है। आज सांग में उसी प्राचीन सौष्ठव के समन्वय की आवश्यकता है।

हरियाणा के दक्षिणपूर्वी भाग में जो ब्रज से मिला है रासलीला भी जब तब होती रहती है। रास ने भागवत से मूल प्रेरणा, अष्टछाप से गान, नृत्यकारों से नृत्य तथा अभिनेताओं से अभिनय और नटनागर कृष्ण के रसपूर्ण जीवन से रस लेकर रंगमंच पर अधिकार किया है। आरंभ में रासलीला किसी मंदिर अथवा धार्मिक स्थान में अभिनीत होती थी। गीतों का गायन निर्देशक द्वारा होता था और अभिनेता विविध भूमिकाओं में उनका

अभिनय करते थे। रासलीला नृत्य और संगीत प्रधान नाट्य है।

हरियाणवी (लोक) नाट्य की विशेषताएं

हरियाणवी नाट्य की अपनी निजी विशेषताएँ हैं जो दूर से चमकती हैं :—

1. हरियाणवी सांग सामाजिक धरोहर हैं। इनमें व्यक्ति विशेष की कल्पनाओं, मान्यताओं तथा भावनाओं की अनुभूति नहीं होती। पं० लखमी चन्द के हरियाणवी सांग व्यक्ति प्रतिभा की उपज नहीं हैं। इनमें तो उस लखमी चन्द की अनुभूतियों का चित्रण है जो हरियाणवी जनता का प्रतिनिधि है और उसकी मूक एवं प्रसुप्त भावनाओं को मुखरित व निनादित करता है।

2. इनमें संगीत, नृत्य, संवाद और अभिनय चारों की अनिवार्यता है। इनके सम्मिश्रण से अद्भुत सौन्दर्य बोध होता है।

3. इनमें क्षेत्र की प्रमुख भाषा बांगडू का प्रयोग हुआ है, पर लगभग सभी में संभली, सुधरी, साहित्यिक हिन्दी भाषा का विचित्र योग दर्शनीय है। प्रेक्षक को एक साथ ही परंपरागत साहित्यिकता और स्वच्छंदता का सुखद अनुभव होता है।

4. इन नाटकों में रंगमंच का कोई आडंबर नहीं है। इनका प्रदर्शन खुले में होता है। या तो तख्त डाल दिए जाते हैं अथवा जमीन पर नाट्य होता है। इनमें यवनिका आदि का विधान नहीं होता है। प्रवेश व प्रस्थान सब प्रेक्षकों के समक्ष होते हैं।

5. इन खेलों में निदेशक या सूत्रधार मात्र आरंभ में ही नहीं अपितु किसी न किसी रूप में बराबर उपस्थित रहता है। यह दर्शकों एवं कथा के मध्य कड़ी का काम करता है। सूत्रधार के साथ-साथ विदूषक भी किसी न किसी नाम से वातावरण को रंगीनी प्रदान करता है।

6. हरियाणवी सांगों की एक विशेषता यह है कि इनमें अभिनय रूढ़िगत होता है। संकेतों एवं मुद्राओं के प्रयोग से कथन में स्पष्टता आती है।

7. इन सांगों का कथानक प्रायः ढीला-ढाला होता है। पूर्वार्द्ध में कथा शिथिल होती है। उत्तरार्द्ध तक पहुचते-पहुँचते उसमें द्रुतगति आ जाती है। परन्तु इससे रसिकों के मनोरंजन में कोई व्याघात नहीं पहुंचता क्योंकि पूरा कथानक जाना पहचाना होता है।

वर्तमान स्थिति और सुरक्षा के उपाय

हरियाणवी नाट्य आज अवनत अवस्था में है। इसके कारणों की खोज करें तो विदित होगा :—

1. द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत की मंहगाई और बेकारी की समस्या ने जनता के उल्लासपूर्ण जीवन पर करारी चोट की है। कष्ट व कटुता के अनुभव ने उनका ध्यान पुनीत परंपराओं से विमुख कर दिया है और इस प्रकार खेल-तमाशों में भी उनका मन नहीं रमता। पर ऐसी स्थिति सभी देशों में हुई है। अतः हमें प्रसन्नता बनाये रखने की आवश्यकता है।

2. यद्यपि हरियाणवी नाटकों में पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक व सामाजिक कथानकों का रोचक प्रदर्शन होता रहा है, तथापि उनके लिए नए-नए कथानकों की आवश्यकता है। ये कथानक हो सकते हैं, महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय, चौ० छोटूराम, सरदार पटेल, जवाहर लाल नेहरू, रानी लक्ष्मीबाई व स्वतंत्रता संग्राम आदि।

3. चलचित्र के प्रति बढ़ती रुचि ने इन खेलों को बहुत हानि पहुंचाई है। यह एक गंभीर समस्या है। इस पर विचार होना चाहिए।

4. आज के भौतिकवादी दृष्टिकोण ने हमें नाट्यादि लोक-कलाओं के प्रति उदासीन कर दिया है। परन्तु यह स्थिति हमारे लिए आत्मघातक है। हमें अपनी कलाओं में रुचि लेनी चाहिए। उनके प्रति गर्व होना चाहिए।

उन्हें उचित महत्व मिलना चाहिए। इस प्रकार समृद्ध होकर ये लोक-जीवन की सहज अभिव्यक्ति का माध्यम बनेंगी और समाज की सांस्कृतिक चेतना का विकास करेंगी।

5. हरियाणवी सांग रात-रात भर होते रहते हैं, पर यह प्रवृत्ति आज के युग के अनुकूल नहीं है। अतः नौटंकियों को ऐसा रूप देना चाहिए कि वे 3-4 घण्टे में समाप्त हो सकें।

6. इनके अतिरिक्त लोक रंगमंच का संघटन होना चाहिए। इसके लिए कालेजों के छात्रसंघ व अन्य सांस्कृतिक संस्थाएं बड़ा उपयोगी कार्य कर सकती हैं। सरकार अनुदान देकर लोकमंचों का उद्धार कर सकती है। अच्छे कलाकारों को प्रशिक्षण दिया जाए। यह कार्य लोक सम्पर्क विभाग द्वारा सरलता से किया जा सकता है।

हरियाणवी लोक रंगमंच के लिए वांछित उपकरणों की तालिका :—

वाद्य यंत्र

1. नगाड़ा/नगड़िया
2. हारमोनियम
3. ढोलक
4. झाँझ
5. मजीरा
6. मृदंग
7. शहनाई
8. चिमटा
9. खंजरी
10. सारंगी
11. करताल
12. चिकारा
13. ढपली
14. फरोदी
15. डमरू
16. इकतारा
17. बाँसुरी
18. बेला
19. मटका
20. हुड्डक

आभरण

1. मुखौटे (कई प्रकार के)
2. पगड़ी/मुकुट
3. अंगरखा
4. तलवार
5. त्रिशूल
6. तीर कमान
7. फरसा
8. चँवर
9. मोरछल
10. कंठा/हँसली
11. कुंडल
12. कड़ा
13. बाजूबंद
14. पहुँची
15. कोड़ा
16. गदा
17. चोगा
18. धोती
19. डाढ़ी/मूंछ
20. खड़ाऊं